ॐ

वेदान्त भजनावली

श्री भगवान भवन
हृषीकेश ।

॥ ॐ ॥

अगुण अखण्ड अनन्त अनादि जेहि चिन्तहिं परमार्थ वादी
नेति नेति जेहि वेद निरूपा निजानन्द निरुपाधि अनूपा

वेदान्त भजनावली

[सर्वोत्तम जीवन चरित्र व दिव्य उपदेश]

जिसको

परम पूज्य श्री १०८ स्वामी गोविन्द हरि जी महाराज की

आज्ञा से

परम पूज्य श्री १०८ स्वामी चेतन हरि जी महाराज की

परम शिष्या

श्रीमती नारायण जी (श्रीमती भगवती देवी) ने

संगत के आग्रह से

अधिकारियों के लाभार्थ प्रकाशित किया

प्रथम बार
२०००

सं० २०२७ विक्रम

मुल्य ३ रु० ७५ पैसे
डाक व्यय पृथक

प्रकाशक :
श्रीमती नारायणजी (श्रीमती भगवती देवी)
गिरीडीह (हजारीबाग)

* पुस्तक मिलने का पता *

१—श्री भगवान भवन, रेलवे रोड, हृषीकेश,
जिला देहरादून (यू० पी०)

२—श्री महिला सत्संग शान्ति भवन,
गिरीडीह, जिला हजारीबाग (बिहार)

३—श्री बनारसीलालजी राजगढ़िया,
(नामोपारा) पो० पुरुलिया, जि० मानभूम (प० बंगाल)

४—चेतन कुटी सत्संग भवन,
हरमू रोड, राँची (बिहार)

५—बेदान्त सत्संग भवन
चुनहारी टोली, भागलपुर-२ (बिहार)

मुद्रक :
श्री राधा रमण प्रेस
मेन रोड, राँची
पु०/१६/७०

परमानन्द स्वरूप

श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मस्वरूप श्रीमान श्री १०८
स्वामी गोविन्द हरि जी महाराज

[illegible] ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मस्वरूप श्री १०८
स्वामी [illegible] हरि जी महाराज

* परम शिष्य *

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मस्वरूप श्री १०८
स्वामी गोविन्द हरि जी महाराज

परमानन्द स्वरूप

श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मस्वरूप श्रीमान श्री १०८.
स्वामी गोविन्द हरि जी महाराज
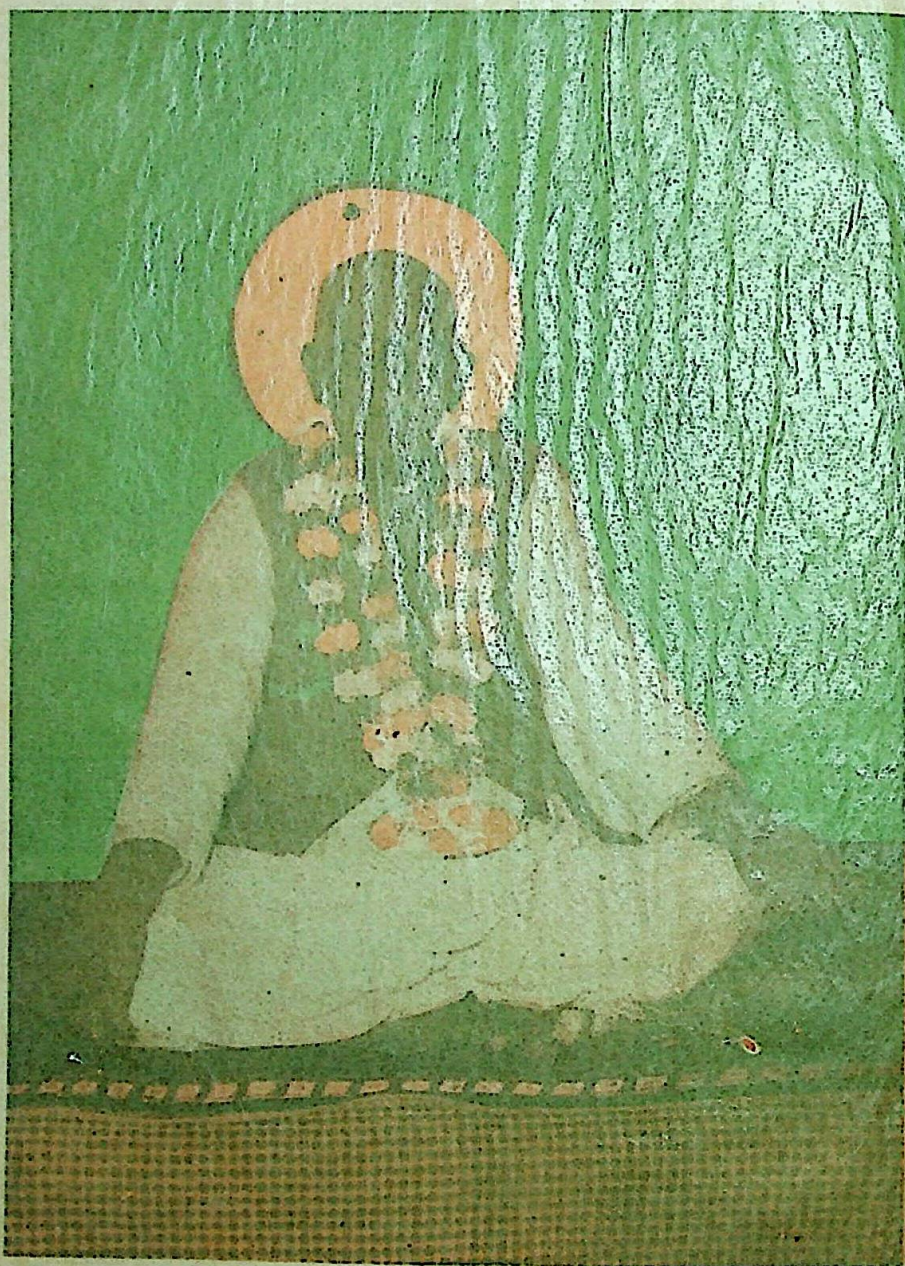
श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मस्वरूप श्री १०८
स्वामी चेतन हरि जी महाराज

* परम शिष्य *
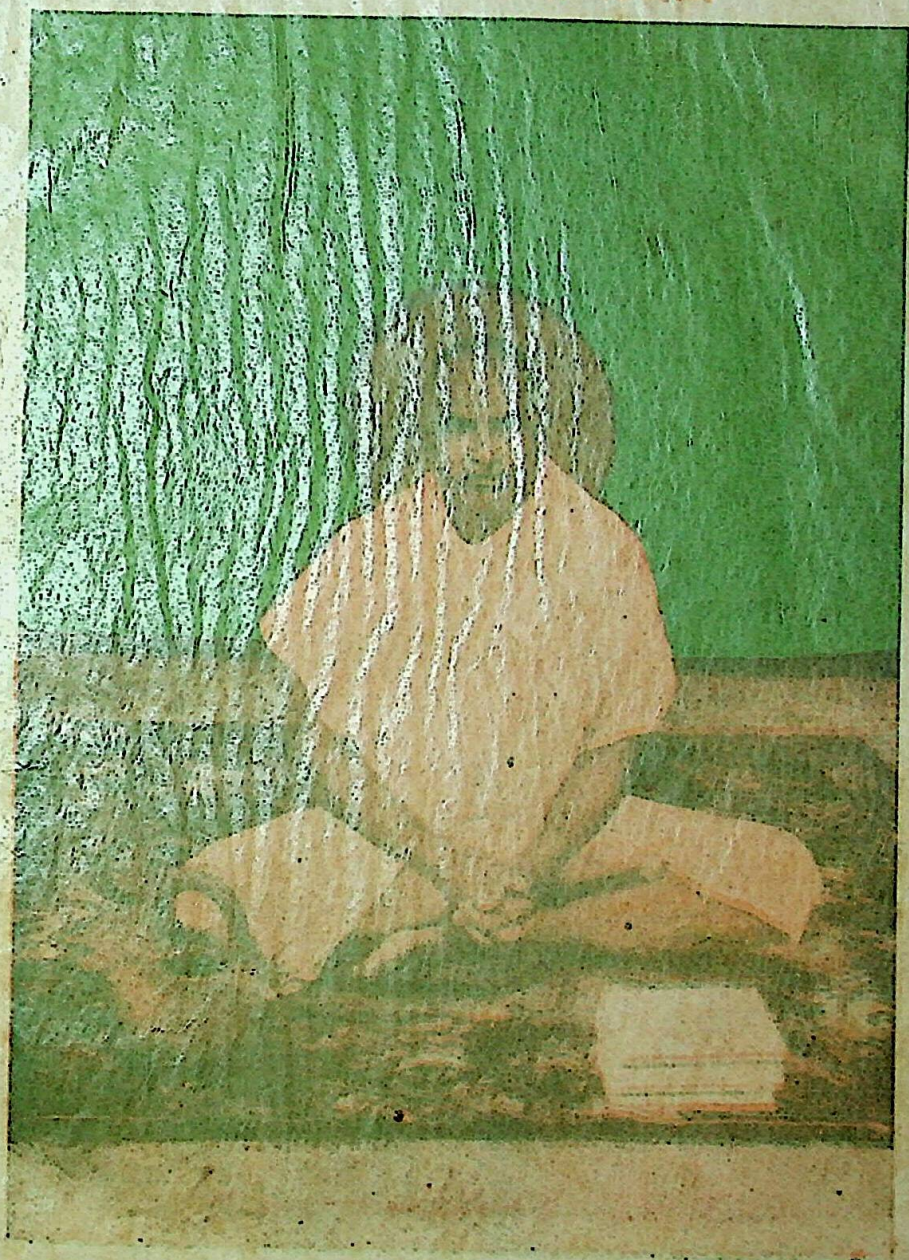
श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मस्वरूप श्री १०८
स्वामी गोविन्द हरि जी महाराज

परमानन्द स्वरूप

श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मस्वरूप श्रीमान् श्री १०८
स्वामी गोविन्द हरि जी महाराज

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मस्वरूप श्री १०८
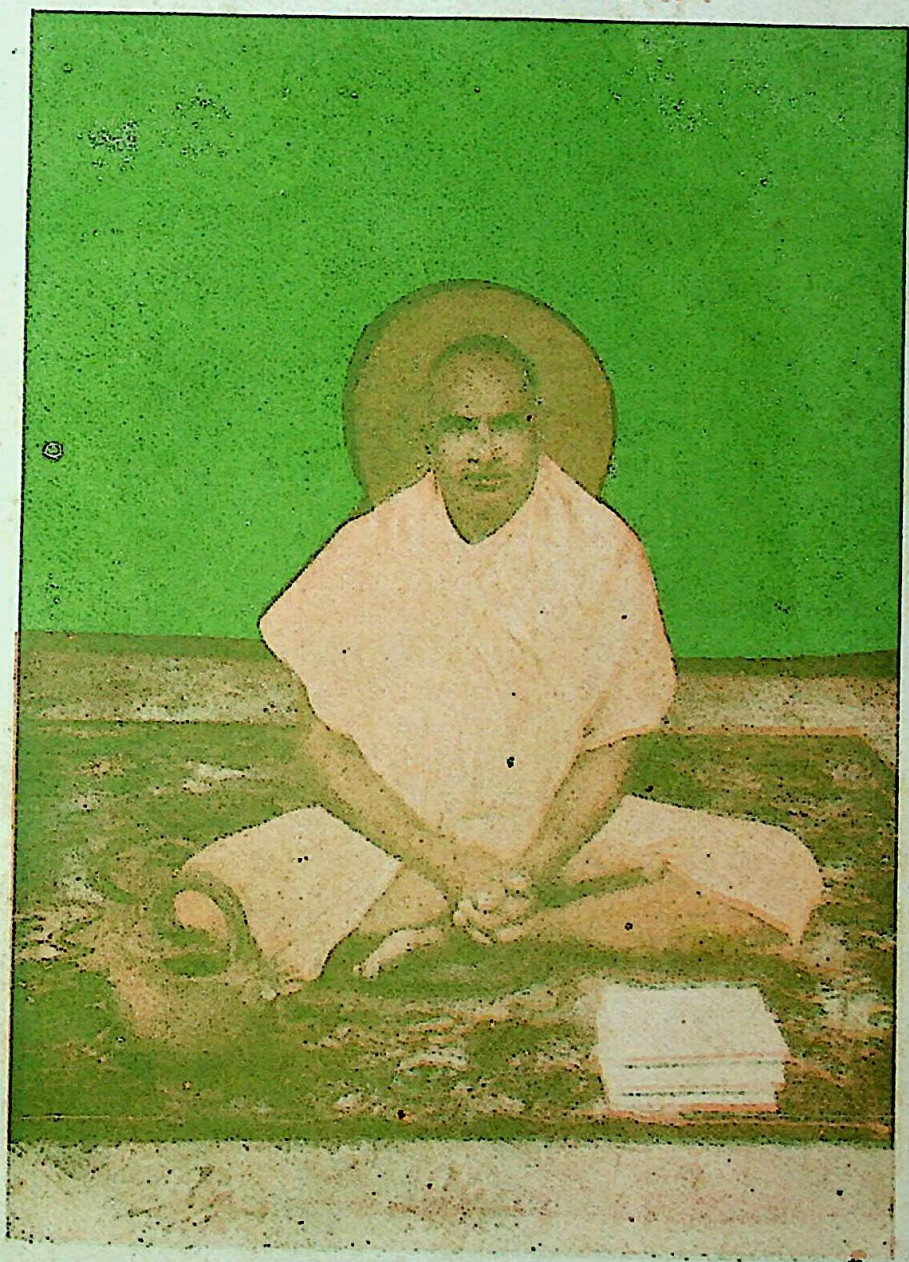
स्वामी चेतन हरि जी महाराज

✻ परम शिष्य ✻

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मस्वरूप श्री १०८

स्वामी गोविन्द हरि जी महाराज

भूमिका

प्रस्तुत ग्रन्थ में पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित प्रातःस्मरणीय सद्गुरु "स्वामी चेतन हरि" जी महाराज के श्री चरण कमलों में बैठकर भारतीय अध्यात्म विद्या का सार भूत विज्ञान अद्वैत वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करके साधना काल के अनुभवों व हृदयोद्गारों का सरलतम संक्षिप्त रूप में पद्यात्मक व गद्यात्मक भाषा में संकलन किया गया है।

श्री सतगुरु देव जी करुणा के अथाह सागर थे, त्याग और वैराग्य उनमें कूट-कूट कर भरा था। "आत्मवत् सर्व भूतेषु" का सिद्धान्त उनके जीवन में पूरी तरह क्रियाशील था, सरलता के एवं उदारता के तो अवतार ही थे। जिन्होंने अद्वैत वाद के गूढ़तम सिद्धान्त को सीधी सरल भाषा में स्थूल बुद्धि वाले मुमुक्षुओं के हृदय में बैठा दिया। यद्यपि भारत दार्शनिकों का देश है, एवं आध्यात्मिक तत्वज्ञान का एक प्रधान केन्द्र है। आध्यात्मिक विचार यहाँ ऐसे सहज स्वाभाविक है। जैसे, जल में शीतलता, मधुरता, द्रवता सहज ही स्वाभाविक है। जैसे अग्नि में दाहकता, उष्णता, प्रकाशता सहज स्वाभाविक है, और जब धार्मिक शृंखला लोप होती है तथा चारों ओर अशान्ति और दुःख की घनघोर घटा छा जाती है, तब ही संत महात्मा जन भूतल पर अवतार लेकर अध्यात्म विद्या का विकास करते हैं। तथापि वर्तमान समय में विशेष रूप से नारी-समाज का उद्धार करने अर्थ परम पूज्य पथ प्रदर्शक "श्री गुरुदेव" जी ही अवतरित हुये। उनका संक्षिप्त रूप से "जीवन चरित्र" एवं दिव्य उपदेश भी प्रस्तुत ग्रन्थ में दिये गये हैं।

आशा है "वेदान्त भजनावली" श्रद्धालु प्रेमी जनों के हृदय स्थल में भक्ति ज्ञान वैराग्य को उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होगी। यद्यपि भाषा साधारण ही है, पुनरुक्तियां भी काफी पायी जायेंगी, तद्यपि प्रेमी जन असार को त्याग कर सार को ग्रहण करें। छपाई में जहाँ अशुद्धियां रह गई हों, कृपया सज्जन वृन्द सुधार कर पढ़ें।

विनीता

श्रीमती नारायण जी (श्रीमती भगवती देवी)

विषय सूची

भजन नं०	विषय			पृष्ठ

भजन नं०	विषय			पृष्ठ
३७	प्रभु प्यारे अनुपम दयालु	....	....	३१
३८	क्षमावान मेरे सतगुरु ने	....	...	३२
३९	सारा ही विश्व उबार	....	...	३३
४०	तेरी महिमा अगम	....	....	३३
४१	यह सतगुरु मेरे	....	....	३४
४२	तूं तो परम पियारो	....	....	३५
४३	पट ज्योति प्रकाशक	....	....	३५
४४	सतगुरु तेरी ही महिमा भारी	....	..	३६
४५	ओ भक्तन के रखवारे	....	....	३७
४६	सतगुरु की महिमा है भारी	....	....	३८
४७	हैं सतगुरु देव निराले	....	...	३८
४८	प्यारे प्रभु के श्रीमुख से	....	....	३९
४९	श्री सतगुरु के चरणों में	....	....	४०
५०	सतगुरु आप बड़े सुखदाई	....	....	४०
५१	हटाई फांसी मिले सतगुरु	....	....	४१
५२	परम निराले कोमल प्रभुजी	....	....	४२
५३	गुरुबाणी चिन्ता विनशावे	....	....	४२
५४	सतगुरु-क-शरण तूं छुट जासी	....	....	४३
५५	गुरु महिमा मधुर महान	....	....	४३
५६	जब ज्ञान सिन्धु गुरुदेव मिले	....	....	४४
५७	मैं पायो अमर सुहाग	....	....	४५
५८	सरल गुरुदेव ने हमको	....	....	४६
५९	गुरुजी जग से निराले	....	....	४६

भजन नं०	विषय			पृष्ठ

भजन नं०	विषय			पृष्ठ

भजन न०	विषय			पृष्ठ

भजन न०	विषय			पृष्ठ

भजन न०	विषय			पृष्ठ

[नौ

* नव रत्न *

१ तत्ववेत्ता गुरू की शरण में जाकर निज स्वरूप आत्मा को जानो।

२ आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए विषयों से वैराग्य एवं गुरु कृपा संपादन करो।

३ देह अभिमान को काम क्रोधादि विकारों की जड़ जान कर काटो।

४ नश्वर संसार को प्राप्त करके मत फूलो।

५ समता, मुदिता, प्रसन्नता, स्वच्छंदता को देनेवाला आत्मरस का आस्वादन करके देखो।

६ मन को नियंत्रित करने के लिए मन के साक्षी बन जावो।

७ ऐ प्यारे तू किसी कार्य के करने से परमेश्वर नहीं बनेगा 'तत्वमसि' कि वह तू ही है।

८ ज्ञान प्राप्त करके वर्तमान जीवन में ही शांति का अनुभव करो।

९ हर प्राणी में हरि के दर्शन करो।

चौ० नव उपदेश मनन करिजै।
चित्त को चेतनमय करि लीजै॥

—:o:—

॥ मंगलाचरण ॥

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवा वशिष्यते ॥

चैतन्यं शाश्वतं शांतं व्योमातीतं निरंजनम्।
नाद बिन्दु कलातीतं तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

सर्वश्रुति शिरोरत्न विराजित पदाम्बुजम्।
वेदान्ताम्बुज मार्तण्डं तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात्परंब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

ध्यान मूलं गुरौमूर्तिः पूजा मूलं गुरोः पदम्।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं मोक्ष मूलं गुरोः कृपा ॥

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

अखण्डानन्द बोधाय शिष्य संताप हारिणे।
सच्चिदानन्द रूपाय रामाय गुरुवे नमः ॥

—:०:—

॥ आरती श्री गुरुदेव जी की ॥

ॐ जय गुरु सुखकारी, स्वामी जय गुरु सुखकारी ॥ टेक ॥
दीनन हित प्रगटे तुम, अविचल अवतारी ॥ ॐ जय ॥

अगम अगोचर, अनुपम, महिमा अति भारी, स्वामी० ।
गावत वेद थके सब, ऋषियन मति हारी ॥ ॐ जय ॥

कोमल मृदुल दयामय, मुखछवि अति प्यारी, स्वामी० ।
दर्शन कर अघनासे, मिटे तपत सारी ॥ ॐ जय० ॥

"शब्द" सुनाय मिटायो, संशय भ्रम भारी, स्वामी० ।
भवसिन्धु में डूबत, तारे नर नारी ॥ ॐ जय० ॥

सच्चिदानन्द प्रभु तुम अविगत अविकारी, स्वामी० ।
आत्मरूप प्रकाशक दिव्य ज्योति न्यारी ॥ ॐ जय० ॥

"स्वामी चेतन" सतगुरु मम, बाल ब्रह्मचारी, स्वामी० ।
"नारायण" यश गावे, चरणन बलिहारी ॥ ॐ जय ॥

* प्रार्थना *

(१)

सतमार्ग चलूं प्रभु शक्ति दे।
अटल अमल दृढ़ भक्ति दे॥
दुःखियों प्रति सेवा भाव बने।
गुरुदेव दया कर दीन जने॥

(२)

मन मंदिर मम सुन्दर कर दे।
सत्य प्रेम त्याग अन्दर भर दे॥
मेरे ताप हरो दयावान घने।
गुरुदेव दया कर दीन जने॥

(३)

संतोष दया समता धन दे।
कल्याण रिपु ममता हन दे॥
मोह शोक मिटे मम कौन दिने।
गुरुदेव दया कर दीन जने॥

(४)

निर्दोष अभय शुद्ध जीवन दे।
विनय करूं आश्वासन दे॥
तव ध्यान धरूं विशुद्ध मने।
गुरुदेव दया कर दीन जने॥

(५)

त्रिगुणातीत समाधि दें।
आनन्द मुझे निरुपाधि दे॥
मन हंस सार मोती ही चुने।
गुरुदेव दया कर दीन जने॥

(६)

अनुकूलता से मन को उदासी दे।
प्रभु प्रेम तेरा अविनाशी दे॥
शनैः-शनैः मन नम्र बने।
गुरुदेव दया कर दीन जने॥

(७)

देह भाव वृति को हनन कर दे।
प्रज्ञा बीच आत्म मनन भर दे॥
मम हृदय ज्ञान वैराग्य जने।
गुरुदेव दया कर दीन जने।

(८)

विनय विवेक सुश्रद्धा दे।
कल्याण प्रदेनी विद्या दे॥
मन आत्म बीच तद्रूपवने।
गुरुदेव दया कर दीन जने॥

(९)

सात्विक भाव निरन्तर दे।
मम अन्तर्मुख वृति कर दे॥
जग स्वाद लगे दुःख रोग सने।
गुरुदेव दया कर दीन जने॥

(१०)

"श्री नारायण" को सच्चा धन दे।
लवलीन रहूं तुमको मन दे॥
निष्काम अचल चितवृति बने।
गुरुदेव दया कर दीन जने॥

—:०:—

॥ प्रार्थना ॥

—:०:—

(१)

प्रतिपालक मोह विदारण हो।
हिय वेदन छेदन कारण हो॥
अनुप अनामय वेद ररे।
करुणा कर श्री गुरुदेव हरे॥

(२)

वैराग्य विवेक प्रदाता हो।
नवनीत दीन जनत्राता हो॥
पंचदोष अतीतं बुद्धि परे।
करुणा कर श्री गुरुदेव हरे॥

(३)

हिय कोमल मृदुल दयामय हो।
सब देवन देव निरामय हो॥
भ्रम भेद छेद प्रकाश करे।
करुणा कर श्री गुरुदेव हरे॥

(४)

रिपुदल नाशक सुखप्रद हो।
मदन प्रभाव विमर्दक हो॥
तव चरण पर्श नर नारि तरे।
करुणा कर श्री गुरुदेव हरे॥

(५)

दुःखभंजन जन्म सुधारण हो।
सब विश्व पति भवतारण हो॥
भक्तों के संशय क्लेश हरे।
करुणा कर श्री गुरुदेव हरे॥

(६)

डूबत के आश्रय केवट हो।
हर लेते यम के संकट हो॥
तव देख तेज माया भी डरे।
करुणा कर श्री गुरुदेव हरे॥

(७)

अज व्यापक ब्रह्म सनातन हो।
चित्त रूप सदा आनन्द घन हो॥
सगुण निर्गुण दोऊ रूप तेरे।
करुणा कर श्री गुरुदेव हरे॥

(८)

अजपा जाप जपावत हो।
त्रिय ताप शोक विनशावत हो॥
तव युगल चरण सब स्वाद भरे।
करुणा कर श्री गुरुदेव हरे॥

(९)

विष्णु शिव जगदीश्वर हो।
तुम राम कृष्ण परमेश्वर हो॥
नेति-नेति श्रुति संत ररे।
करुणा कर श्री गुरुदेव हरे॥

(१०)

"श्री सतगुरु" मम अविनाशी हो।
मेरे रोम-रोम प्रकाशी हो॥
"श्री नारायण" तोहे नमन करे।
करुणा कर श्री गुरुदेव हरे॥

—:०:—

॥ प्रार्थना ॥

—:०—

जय जय मेरे सतगुरु देव, नहीं जानूं मैं तेरा भेव।
तुम ही राम और तुम घनश्याम, तव चरणन में मम प्रणाम ॥ १ ॥

भूमंडल शृंगार तुहीं, जग से तारन हार तुम्हीं।
भक्तों के सब पूरे काम, तव चरणन में मम प्रणाम ॥ २ ॥

अघनाशक त्रय ताप हरो, क्लेशादिक सब दूर करो।
तुम्हीं करो निर्भय निष्काम, तव चरणन में मम प्रणाम ॥ ३ ॥

तुम्हारी महिमा अगम अपार, गावत वेद न पाया पार।
ऋषि मुनि हारे लिख पल याम, तव चरणन में मम प्रणाम ॥ ४ ॥

तुम सम सतगुरु और नहीं, ग्रन्थि तोड़न हार तूं ही।
चंचल मन को देते थाम, तव चरणन में मम प्रणाम ॥ ५ ॥

ज्ञान सिंधु निर्मल गतमान, नाश किया भव मूल अज्ञान।
तुम ही पिलाया अनुपम जाम, तव चरणन में मम प्रणाम ॥ ६ ॥

शीतल चंदन सम तुम दाता, मेटी तप्त हृदय की ताता।
दर्शायो आत्म सुख धाम, तव चरणन में मम प्रणाम ॥ ७ ॥

निर्विकार निर्द्वन्द मति, शांत रूप सम सरल अति।
सबमें रह सबसे उपराम, तव चरणन में मम प्रणाम ॥ ८ ॥

स्वामी चेतन सतगुरु कृपा से, भय अरु भेद भ्रम सब नाशे।
"नारायण" पायो विश्राम, तव चरणन में मम प्रणाम ॥ ९ ॥

—:०:—

विनय पर

भजन

"दयामय" सुनलो अबकी बार, दयामय सुनलो अबकी बार ।
हे समष्टि उपकारी प्रभुजी, हे त्रिभुवन उजियार ॥ टेक ॥

भक्ति प्रेम श्रद्धा और सेवा हो मेरा आधार ॥ १ ॥
निराशा के सागर में पड़ी हूँ बाँह पकड़ करतार ॥ २ ॥

विनय विवेक विपिन में कोकिल, होकर करूं विहार ॥ ३ ॥
नव जीवन पाकर नव युग में, भर लूं नवल विचार ॥ ४ ॥

बीच भँवर में नैया अटकी, सम्भाल ले पतवार ॥ ५ ॥
रीति नीति की गली सांकरी, से प्रभु वेग उबार ॥ ६ ॥

अति दुस्तर संशय सागर में, तूं ही एक आधार ॥ ७ ॥
"चेतन" हो "नारायण" प्रगटे, ली भल सुध हमार ॥ ८ ॥

—:○:—

भजन-२

तर्ज—तेरो माया ने ज्ञान भुलाय दिया .... ।

तेरे द्वार पै अधम भिखारी खड़ा ।
कर दो कर दो दया प्रभु दया माँग रहा ॥ टेर ॥

तुम तो दाता विश्व भर के, शाहनशाह गुरुराज हो,
दुःखियों के हो आधार, बस जीवन तुम्हारे हाथ हो,
यह पतित महा तव शरण पड़ा ॥ १ ॥ टे० ।

मंझधार नैया डोलती औ पवन वेगों से चला,
निहार कर खेवैया को, विनती मन में कर रहा,
प्रभु पार करो मेरा बजरा ॥ २ ॥ टे० ।

भव में भटकने से थका, मेरी थकावट को हरो,
वैराग्य पक्का रंग चढ़ा, मेरा मन गिरि सम दृढ़ करो,
मुझमें भर दो, प्रेम, विचार नया ॥ ३ ॥ टे० ॥

मुझ दास की तू मात हो, अरू पिता तुम्हीं रखवार हो,
सुख के सदन करुणा कदन, भव सिन्धु तारनहार हो,
भ्रम भेद क्लेश हरो मेरा ॥ ४ ॥

नहीं द्वैत का आधार पकड़ूँ, पाऊं तेरी रोशनी,
श्रुति भगवती यूँ टेरती, वाणी तेरी भव मोचनी,
नारायण नाम रटूँ प्यारा ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन-३

तर्ज—जीवन का भार उतार दिया .... ।

भरदो-भरदो तव स्नेही दया, गुरुदेव दीन की झोली में ।
ले चल-ले चल अब करके मया गुरुदेव आपकी टोली में ॥ टे० ॥

पर दुःख देख द्रवित होते, प्रभु आर्त जनों के सुखदायी हो।
निज चरणन का अनुराग भरो, गुरुदेव दीन की झोली में ॥ १ ॥

कब जग से निराशी होकर के, तव चरण बंदगी पायेंगे।
निज वाणी से विश्वास भरो, गुरुदेव दीन मति झोली में ॥ २ ॥

ये मन दुश्मन है बहु भारी, इस मन की बाग को थामो जी।
कुछ करके दया मन रंग डालो, गुरुदेव प्रेम की होली में ॥ ३ ॥

ओ शक्ति पुंज कर शक्ति पात, भ्रम भेद क्लेश हरो मेरे।
सब जग को आत्म मय लख कर, विचरुँ निर्भय हो अकेली मैं ॥ ४ ॥

कहे "नारायण" हे स्वामी चेतन, बस छोटी-सी एक विनती है।
बुद्धि ऋतम्भरा हो मेरी, सोऽहं को लखूं अलबेली मैं ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन–8

तर्ज—मेरे देवता मुझको .... ।

दयालु प्रभुवर टुक दया कर दो,
भीख मांग रही मैं आँचल भर दो ॥ टेर ॥

कौन फूल प्रभु मैं तुझ पै चढ़ाऊँ, तेरे चरणों में आँसू बहाऊँ,
ज्ञान दीप से मेरा मोह तम हर-दो ॥ १ ॥ टे० ॥

तेरी अनुपम वाणी सबको लुभावै, सुनावो प्रभु तुम बहुत दिन से आये,
प्यासे मनों की प्यास बुझा दो ॥ २ ॥ टे० ॥

बड़ा ही गरीब मैं अनाधिकारी, राग अरु द्वेष की बढ़ी बिमारी,
ज्ञानामृत की औषध पिला दो ॥ ३ ॥ टे० ॥

भव दुःख की चोटें खायीं बहुत ही, मिला नहीं कुछ भी खोया अमित ही,
चंचल मन में थिर साधन दो ॥ ४ ॥ टे० ॥

तेरे द्वार से खाली फिरा ना कोई, फिर मुझपै क्यों निठुरता होई,
"नारायण" चेतन दर्शादो ॥ ५ ॥ टे० ॥

भजन-५

तर्ज–सतगुरु जी बड़े दातार निकले.............................।

प्रभु अर्ज करूँ तेरे चरण पड़ूँ।
इस दास की पैज पुगा देवो ॥ टेक ॥
भव डोलत जीवन नैया को।
निज कर कमलों से उठा देवो ॥ १ ॥
गुरु आप दयानिधि कल्पतरु।
मुझे अव्यय अविनाशी धन दो ॥ २ ॥
तुम बिन कोई नहीं मेरा प्रभु।
मुझे दीन जान अपना लेवो ॥ ३ ॥
रो-रो आया मैं द्वार तेरे।
मुझ दास को निज पद रज देवो ॥ ४ ॥
साधन की नहिं कोई फिकर मुझे।
तेरी अनुकम्पा ही देवो ॥ ५ ॥
तेरे चरणों पै कुरबान जाऊँ।
जन्मों का झगड़ा मिटा देवो ॥ ६ ॥
कहे "नारायण" स्वामी चेतन।
सोऽहँ विस्तार लखा देवो ॥ ७ ॥

—:०:—

भजन-६

गुरुजी तुम हो दयालु, मेरी एक अर्ज सुन लेना।
तेरे चरणों में मस्तक है, मुझे अपना बना लेना ॥ टे० ॥
कोमल हृदय है आपका, तुम अन्तर्यामी हो।
निज आत्म यश कहने की, मुझे कहनी सिखा देना ॥ १ ॥

पावन परम पतित उधारण, चरण तुम्हारे हैं।
तेरे चरणों में रहने को, मुझे रहनी सिखा देना ॥ २ ॥
सत पथ के अवलम्बन में, दुनियां देती ताने हैं।
भूमिवत उन बचनों को, मुझे सहना सिखा देना ॥ ३ ॥
भला बुरा खोटा खरा, मैं तेरा अंश हूं।
हे "नारायण" इस बुद्धि को, चैतन्यमय करना ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन-७

तर्ज—नाम नारायण का सांचा.................................।

गुरुजी थारा चरणां में अर्जी ॥ २ बार ॥
हम पड़े आपके द्वार नाथ अब थारी ही मरजी ॥ टेर ॥

पावन परम पवित्र युगल तव नीके हैं चरणा, गुरुजी थारे प्यारे हैं चरणा,
भानुवत प्रकाशक सद्गुरु करते तुम हरणा, मनों को थामी दे डाटी ॥ २ बार ॥
छूटे जगत की प्रीत छूटे म्हारी मोह कड़ी टाटी ॥ १ ॥

कई एक श्रद्धालु दास थारी परीक्षा में तगड़े, नाथ थारी परीक्षा में तगड़े,
सर्व ओर असमर्थ दास के मेटो न झगड़े, तुम्हीं एक मेरे आधारा ॥ २ बार ॥
डगमग-डगमग नाव करे प्रभु आप करो पारा ॥ २ ॥

मैं अवगुण भरपूर कुटिल म्हारा मन में संसारा,
बालकपन की जात गुरुजी मैं खोट करूं भारा, मेंट दो चंचलता मनकी ॥ २ बार ॥
"नारायण" सर्वत्र दिखलाओ ज्योति चेतन की ॥ ३ ॥

—:०:—

भजन—८

तर्ज—कर्म कर पीर कामिल ………… …… ………… ।

प्रभु यह प्रेम की घाटी, निवाहों तो गुजारा है ।
कठिन मार्ग विकट चलना नहीं तकवा हमारा है ॥ टे० ॥
द्रवित हृदय तुम्हारा है, पिघलता देख दुःखियों को ।
करो अब दीन पर दृष्टि, तूं ही मेरा सहारा है ॥ १ ॥
मार्ग में विघ्न है भारी, छाई है रात अंधियारी ।
लगी दिल में लगन भारी, दुःखी सेवक तुम्हारा है ॥ २ ॥
अवगुण भरा, हृदय मेरा, प्रभु तुम चित्त नहीं धरना ।
तुम्हारी वाणी सुनने को, तरसता मन हमारा है ॥ ३ ॥
तेरी महिमा अगोचर है, नहीं कोई भेद पा सकता ।
ओ "नारायण" किया चेतन, तुम्हीं ने चित्त हमारा है ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—९

तर्ज—मेरी छोटी-सी है नाव ……………………………… ।

मेरा तुच्छ-सा है प्रेम, तेरी प्रेमी धन नाम ।
नहीं जानूं भगवान, कैसे रिझाऊं तुझे प्रेम से ॥ टे० ॥
गुरु अमृत-सी वाणी, सुनावे, मीठी युक्ति से राह पर लावे ।
हैं बड़े हितकार, करते दुःखियों का उद्धार ॥ १ ॥ टे० ॥
करुणा सागर है नाम तिहारा, हां करते हो जीव सुखारा ।
मेरे जागे पूर्व भाग, मन करो अनुराग ॥ २ ॥
जो पार उतरना चाहो, गुरु चरणों से प्रीत लगावो ।
मिले बड़े ही दयाल, इनका हृदय विशाल ॥ ३ ॥

प्रभु थारी तो महिमा भारी, हां अद्भुत दिव्य औतारी ।
किया बड़ा उपकार, तारा सारा संसार ॥ ४ ॥

कहे "नारायण" कर जोड़ी, दयादृष्टि करो मैं चेरी ।
स्वामी चेतन भगवान, अपना लो अपना मान ॥ ५

—:०:—

भजन—१०

प्रभुजी मेरे अवगुण दूर करो ॥ १ ॥
प्रबल पवन से मन को डांटो, चंचलताई हरो ॥ २ ॥
प्रेम विहीन हृदय है मेरा, अपनी करुणा करो ॥ ३ ॥
तुम हो दाता दीनों के स्वामी, बंधन वेग हरो ॥ ४ ॥
शुद्ध श्रद्धा को मुखड़ों देखूं, ऐसो दिवस करो ॥ ५ ॥
तेरी झलक दिन रैन निहारूँ, ऐसी वृत्ति करो ॥ ६ ॥
द्वंद्वातीत दयालु स्वामी, त्रिगुणातीत करो ॥ ७ ॥
निर्विकल्प पद में वृति को, हे प्रभु स्थिर करो ॥ ८ ॥
"नारायण" चेतन तुम व्यापक, विश्व विमोह हरो ॥ ९ ॥

—:०:—

भजन—११

तर्ज—बचपन की.................. ।

श्री धीर गुरो मुझको, चरणों में जगह देना ।
घबरा गयी भरमन से, मुझे अपनी शरण में लेना ॥ टे० ॥
फँस गई बीच भंवर में, सिर पर गठरी है भारी ।
मँझधार पड़ी नैया तुम पार लगा देना ॥ १ ॥

ले नाम तुम्हारा ही, पापो भी पार गये।
समदृष्टि प्रभु तुम हो, मुझपै भी दया करना ॥ २ ॥

लेकर के उम्मीदों को, आये हैं तेरे दर पै।
नवनीत गुरो विनती मेरी बिगड़ी बना देना ॥ ३ ॥

देवो भक्ति ऐसी, संसार बिसर जावे।
रहूं हरदम छकी-छकी, ऐसा अमृत देना ॥ ४ ॥

"स्वामी चेतन" सतगुरुजी, भवतारण नाम तेरा।
कहे "नारायण" मुझको, अविनाशी धन देना ॥ ५ ॥

—:o—

भजन—११

तर्ज—रंग दे तमाशे सारे ....।

सदगुरु तेरे चरणी पड़ते, दया भीख डाल दे ॥ टे० ॥
गुरुवर आप दयासागर, कंगालों की भरते गागर।
अद्भुत् धन वर्षावते ॥ १ ॥
तेरे शरणी हम सब चाकर, फाड़ अहं मम की चादर।
होमैं रोग मिटाय दे ॥ २ ॥
चहुँ दिश छाया घोर अंधेरा, हो अधीर तुम्हीं को टेरा।
अँधे को उबार दे ॥ ३ ॥
सदगुरु आप करुणायामी, निर्बल के तुम्हीं हो स्वामी।
रो रो तुम्हें पुकार दें ॥ ४ ॥
चंचल मन यह अवगुण भरियाँ, कृपा मांगन द्वार पै अड़ि।
दास पर दया पसार दे ॥ ५ ॥

"स्वामी चेतन" सतगुरु आपत कामी, कहे "नारायण" तुम अन्तर्यामी।
चिद्जड़ ग्रन्थि निवार दे ॥ ६ ॥

—:०:—

भजन—१३

तर्ज—सखी री मेरो नैना वाण पड़ी.... .... ।

ओ जी गुरु सुनलो मेरी पुकार ॥ टेर ॥
तुम लग ही मेरी दौड़ है स्वामी। नैया कर दो पार ॥ १ ॥
तुम बिन जग में कोई न मेरा। देख्यो खूब विचार ॥ २ ॥
सांची लगन प्रभु सांची तड़प देवो। नैन गिरे जलधार ॥ ३ ॥
मोह राजा हस्ती चढ़ आयो। दे दो विवेक हथियार ॥ ४ ॥
गहरे रंग में मन रंग डारो। हे मेरे प्राणाधार ॥ ५ ॥
तव चरणन की अटल भक्ति दो। दे दोवै राग्य विचार ॥ ६ ॥
कहे 'नारायण' हे मेरे प्रभुवर। रखना मेरी संभार ॥ ७ ॥

—:०—

भजन—१४

तर्ज—हे री मैं तो दर्द दीवानी........ .. .. ।

हे री मैया दासी शरण आयी, शरणागत तूं ही ॥ टे० ॥
ना जानूं मैं आरती बंदन, ना पूजा की रीत।
दासी तेरी है अनजानी, बिन भाव भरी प्रीत ॥
जैसी भी हूं शरण में लेना होगा, क्योंकि शरणागत तूं ही ॥१॥
जन्मों की भटकी आयी शरण में, तूझे दयालु देखकर।
राहत मिलती है मन को प्रभु, तेरी दया देखकरे ॥
दयालु तू है दया वर्षा दे री मैया, शरणागत तूं ही ॥ २ ॥

तेरी शरण में जो कोई आये, जन्मों के दुःख बिसराये।
जन्म मरण के फंदे से छूटे, मोक्ष निधि को पाय ॥
ऐसा बता दे री रास्ता कि जन्मूं नाहिं फिर कभी शरणागत तूं ही ॥३॥
दास "सुशील" चरण रज तेरी, तूं ही मेरा मीत।
हे "नारायण" सतगुरु मेरा, निभा दे मेरे प्रीत ॥
शरणागत तूं ही ॥४॥

—:०:—

भजन—१५

तर्ज—लोकी आँख देने श्याम.......

ओ मेरा रोना श्याम काम आवंदा नहीं।
तैनूं नेम लिया धार, दया लावंदा नहीं ॥ टेर ॥
पिला नशा ऐसा नित तेरी याद का।
ओ बालकों की माता, मैं पुकारंदा यही ॥ १ ॥
बेला बीती गुरुराज, कब दया करोगे।
मर्जी तेरी नाथ क्या, मैं जानंदा नहीं ॥ २ ॥
ओ गहरी प्रीत ना जानूं, जो तुझको बांध लेवूं।
ओ छोटी-मोटी प्रीतियों से, बंधदा नहीं ॥ ३ ॥
अजामिल गणिका से, तूने तारे हैं।
मैं तां उनका भी सरदार, तो भी तारियो तूंहीं ॥ ४ ॥
तुझे मेरा जानूं मैं, पर तूं निर्लेप है।
कृपासिन्धु तेरा भेव लख्या जावंदा नहीं ॥ ५ ॥
तुम देखो प्रभुजी, टुक मेरी ओर भी।
मुझे तेरा ही सहारा, क्या तूं जानंदा नहीं ॥ ६ ॥

क्या मैं दास नाहिं सां, गये गुजरे जान लो।
कृपा हाथ राखियो, बिसारियो नहीं ॥ ७ ॥
गावां "नारायण-नारायण" "चेतन" सदा।
यह दास करे विनती, क्यों सुनंदा नहीं ॥ ८ ॥

—:०:—

भजन—१६

कोई मत करियो रे निर्मोही से प्रीत ॥
ये निर्मोही किसी के नहीं है, केवल मेरे मीत ॥ १ ॥ कोई...
प्रभु के प्रेम में सहना पड़ता, बनना पड़ता भीत ॥ २ ॥
मान अपमान दूर कर सारा, गा ले प्रभु के गीत ॥ ३ ॥
"नारायण" चेतन का प्यारा, जिन मन लीन्हों जीत ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१७

तर्ज—पिला सतगुरु नशा ऐसा.................।

बता सतगुरु मुझे रास्ता, तोहे कैसे मैं पा जाऊँ।
साँकल तोड़ दो मेरी, कि जल्दी पास आ जाऊँ ॥ टेर ॥
देख दुनियाँ का परिवर्तन, थकित मन हो गया भारी।
करो ना देर सतगुरु जी, बुलालो दर पै आ जाऊँ ॥ १ ॥
न जानूं प्रेम की गलियाँ, विरह का ना पता मुझको।
कमी है कौन-सी स्वामी, जरा भी मैं न लख पाऊँ ॥ २ ॥

दिखा वह दिवस मुझको भी, कि गद-गद हो तुम्हें टेरूं।
बाँध लूं प्रेम डाली में, पकड़ प्यारे तेरे पाँवू ॥ ३ ॥
बढ़ा दो गम की गर्मी अब, कि वर्षा वेग हो जाये।
सभी के टूटते बंधन, प्रभु मैं देख ललचाऊँ ॥ ४ ॥
दयालु नाम तेरा है, दया अब क्यों नहीं करते।
भरो इस दास की झोली, तरस कर मैं तो कहराऊँ ॥ ५ ॥
दास कहते हे "नारायण", करो "चेतन" मेरे मन को।
कि जड़ता त्याग कर स्वामी, तेरे संकेत लख पाऊँ ॥ ६ ॥

—:०:—

भजन—१८

तर्ज—प्रेमी बहु तेरे ....।

नैया बहु तेरी खेनेवाला, मेरा तूं ही तूं ही ॥ टेर ॥
जग के सम्बन्धी सारे, सब हैं निठुर भारे।
मुझको तो देख, द्रवित होनेवाला तूं ही तूं ही ॥ १ ॥
क्या तो मुझको ही ले लो, या निज दर्शन दे दो।
मेरा तो सच्चा हितकर, एक सतगुरु तूं ही तूं ही ॥ २ ॥
जग से निराश बैठी, वाणी सुना दो मीठी।
धीरज की पूड़त बँधाने वाला, मेरा तूं ही तूं ही ॥ ३ ॥
निज के लवलीन गुरु जी, प्रेमी के प्यारे गुरुजी।
अर्जी करो जी स्वीकार, मेरा तूं ही तूं ही ॥ ४ ॥
कौन करेगा दया, आप बिना गुरु मैया।
दया की नजरों हेरन वाला, मेरा तूं ही तूं ही ॥ ५ ॥

"स्वामी चेतन" सतगुरु मेरे, हम द्वार पड़े हैं तेरे।
कहे "नारायण" मेरी सुनने वाला, तूं ही तूं ही ॥ ६ ॥

—:०:—

भजन—१९

तर्ज—ना तन ही रहा.........................."।

चाहे अपना बना, चाहे तरसाना।
यह भोला दास तुम्हारा हो गया ॥ टेर ॥
हे मेरे गुरुवर मैं तुमको ही मांगू।
दुनियां की मांगों से दिल खो गया ॥ १ ॥
यही वेला गुरुजी, तुम्हारी सेवा का।
ओ हो इसी समय में तन को बंधन लग गया ॥ २ ॥
जो कि तेरी दया है, गरीबन पर।
देख देख मन तो विह्वल हो गया ॥ ३ ॥
बड़ी मुश्किल से मिलते, गुमान ना करो।
क्यों तीखे तीखे बोलते, छिपा के दया ॥ ४ ॥
मैं अंश तुम्हारी सेवा का कण दो।
हे "नारायण" तेरा मैं तो तेरा हो गया ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—२०

प्रभु ऐसा पिलादे नशा प्यारा।
तेरे चरणों में मन रम जावे ॥ टेर ॥

अपनी कृपा प्रेरो ऐसी। मन भक्ति रंग में रंग जावे ॥ टे० ॥
अति कोमल मधुर हृदय तेरा। पग पग पर तूं रक्षक मेरा ॥
अब करुणा कर दो ऐसी प्रभु। तेरे चरणों का संग मिल जावे ॥ १ ॥
जीवन का तूं ही किनारा है। घट घट की जानन हारा है ॥
अब ये ही वर देवो स्वामी। दिल देह दुनी से उठ जावे ॥ २ ॥
दुःखप्रद चंचल मन को मारो। मेरे काम क्रोध मद मोह जारो ॥
मन सांचे रंग में, रंग डारो। नहीं जग का नशा दिल को भावे ॥ ३ ॥
मेरे रोम रोम से यही निकले "स्वामी चेतनहरि" "स्वामी चेतनहरि"।
कहे "नारायण" तेरे ही लिये, ये जीवन सारा बिक जावे ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—२१

जरा ख्याल करो जी मुझ दासी का, गुरु अपनी दया अब बर्षावो ॥ टेर ॥
तुम दुर्लभ हो गुरु अति भारी, मुझ प्रेम विहिन के आधारी।
मैं दीन हीन अवला नारी, अब करके कृपा मोहे अपनावो ॥ १ ॥
तुम पर दुःख देख द्रवित होते, निज नजरों से संकट खोते।
तव चरणन में प्रभु हम रोते, मेरी देख दशा जिय पिघलावो ॥ २ ॥
यह चंचल मन पापी भारी, करता है दीन दुःखी भारी।
मोहे अपनी सुनावो वाणी प्यारी, मत प्रेम विहिन को तरसावो ॥ ३ ॥
तुम दाता भिक्षुक के स्वामी, नवनीत हृदय अन्तर्यामी।
समदृष्टि हे करुणायामी, निज निठुरपना प्रभु बिसरावो ॥ ४ ॥
कहे "नारायण" मेरी अर्जी, तुम सुनलो "चेतन" सतगुरुजी।
मेरी झोली में दया भर दो जी, मत देर करो मैं घबरायो ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन-१२

तर्ज—मन रे उधो कि...... .... ।

हो गुरुजी मेरी भी टेक निभावो, हो गुरुजी मेरी भी टेक निभावो ॥ टेर ॥
ये सब मुझको संगल लगाते, तुम ही आय छुड़ावो ॥ १ ॥
दुःखां की अग्नि सही ना जाती, हे प्रभु वेग बचाओ ॥ २ ॥
करुणा करो ये ऊसर भूमि, अमृत वाणी सुनावो ॥ ३ ॥
पराधीन में तेरे बालक रोवे, आँचल दे अपनावो ॥ ४ ॥
ना कोई मार्ग ना कोई रास्ता, अंधे को राह दिखावो ॥ ५ ॥
कब निज चरणों का चाकर रखो, करके दया बतलावो ॥ ६ ॥
तुममें शक्ति अनन्त भरी है, थोड़ी-सी शक्ति लगावो ॥ ७ ॥
सब जिह्वा पर बैठ के स्वामी, बंधन से मुक्त करावो ॥ ८ ॥
तुम निर्मोही, फिर भी दयालु, आप द्रवित हो जावो ॥ ९ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु करके दया, मुझे "नारायण" दिखलावो ॥ १० ॥

—:०:—

भजन-१३

तज—ढप की........................... ।

ज्ञान निज को सुनावो जी, गुरुजी प्यारे ॥ टेर ॥
थारो ज्ञान सुनके म्हारो, देह अभिमान भाग। सुत्यो मोह चिमक जाग ॥१॥
जन्म-जन्म की दुविधा भाग। काम क्रोध भी जाव साग ॥ २ ॥
शान्ति सुमति हृदय में आवे। तो मान अपमान दोनों जाव ॥ ३ ॥
समता को महान चिर उढ़ावो। सम दम की बिंदली लावो ॥ ४ ॥

उपरामता को अमर चूड़ो देवो। विधवायने को भय लेवो ॥ ५ ॥
श्री "नारायण" प्रभु है सुखरासी। तो 'चेतन' के चरणों का वासी ॥ ६ ॥

—:o—

भजन—२४

तर्ज—सतगुरुजी मैं तो शरण .... ।

सतगुरु की महिमा, शब्दों से वर्णनी न जाई ॥ टे० ॥
सतगुरु मेरे बड़े उपकारी, दीन दयाल दया औतारी।
भवसिंधु से डूबत तारी, अंधे को आँख लगाई ॥ १ ॥
रामायण भी यही पुकारी, गुरु नख शोभा मणीक्त भारी।
बार-बार सतगुरु बलिहारी, दुःखों की गठरी गिराई ॥ २ ॥
पूर्ण ब्रह्म रूप दरशावें, जन्म मरण से मुक्ति करावें।
अमर महारस प्याला प्यावें, प्राप्ति की प्राप्ति कराई ॥ ३ ॥
"स्वामीचेतन" मम गुरु अवतारी, कहे "नारायण" महिमा भारी।
तीन ताप की अगन निवारी, ज्ञान की गंगा बहाई ॥ ४ ॥

—:o—

भजन—२५

तर्ज—मेरा सत्त चित आनन्द रूप .... ।

सतगुरु की महिमा अपार, कोई-कोई जाने रे ॥ टेक ॥
सतगुरु दीनन के हितकारी, काम क्रोध की विपताटारी, धन देते हैं अपार ॥ १ ॥
गुरु सन्मुख आनंद बहु छावे, सतगुरु अमृतजल बर्षावे, जीवन के हितकार ॥ २ ॥

सतगुरु निस्वार्थ निष्कामी, मृदुल दयालु अन्तर्यामी। शांत स्वरूप उदार ॥ ३ ॥
सतगुरु दे अद्भुत उपदेशा, दुखित जनों को हो संतोषा। करते भव से पार ॥ ४ ॥
तन के कष्ट पर ध्यान न देते, सर्दी गर्मी सब हैं सहते। ऐसे करुणागार ॥ ५ ॥
ऐसे सतगुरु हमने पाये, मोह में सोवत जीव जगाये। जग में सतगुरु सार ॥ ६ ॥
कहे "नारायण" बंधन तोरे, "स्वामी चेतन" श्री सतगुरु मोरे।
चरण कमल बलिहार ॥ ७ ॥

—:०:—

भजन—१६

तर्ज—सतगुरुजी बड़े दातार .... ।

सतगुरुजी बड़े नवनीत निकले, जो दुःखियों का उद्धार किया ॥ टे० ॥
उपकारी श्री सतगुरु जैसा, नहीं चारों युग में कोई हुआ।
ओ निःस्वार्थ कैसे स्वामी, परहित में तन को बिसार दिया।
तेरी हँसमुख कांति सरल मति, किसी विरले ने जानी है हे प्रभो।
मैं अधम गँवार क्या जान सकूं, तू ने सब का हितकार किया।
ओ गहरी प्रीत सिखा ऐसी, जिससे हृदय में बैठाऊँ तुझे।
गद-गद हो तेरे गुणगान करूँ, प्रभु ऐसी दशा जल्दी ही दिखा ॥
"स्वामी चेतन" तेरी महिमा को, ब्रह्मा विष्णु शिव गाते हैं।
कहे "नारायण" है कृष्ण तूं ही, तूं ने ही गीता ज्ञान दिया ॥

—०:—

भजन—१७

तर्ज—तेरे प्यार का आसरा .... ।

निराली ओ गुरुवर महिमा तुम्हारी, मानस में ज्योति जगी जा रही है ॥ टेक ॥

पवन-सा प्रबल और सूरज जैसा चंचल। हुआ मन स्थिर मेरा गुरुजी ॥
यही अचलता मेरे मन को सुहाती। आत्म ज्योति जगी जा रही है। १॥ टे० ॥

सद्गुरु ने मुझको ज्ञान बताया। पाकर के ज्ञान परम सुख पाया ॥
जीवन नैया भव सिंधु से। किनारे किनारे लगी जा रही है ॥ २ ॥ टे० ॥

मोह माया से मैं घेरा पड़ा था। गुरु ने हटाया विषयों का डेरा ॥
सच्चिदानंद बताया रूप मेरा। ममता की फांसी कटी जा रही है ॥ ३ ॥

"श्री नारायण" पिया ज्ञान प्याला। आत्मरस में हुआ मतवाला ॥
धन, "स्वामी चेतन" धन उनकी लीला। भारत में महिमा बढ़ी जा रही है ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—२८

तर्ज—ये प्रेम पंथ ऐसी हो है...... ..... ।

मम गुरुवर परम दयालु हैं, दुःखियों को राह लगाते हैं।
निज अनुभव सुन्दर किरणों से, जीवों का तम विनशाते हैं ॥
निज लीला अनुपम दिखलाते, गुरु भक्तन के वश हो जाते।
हैं, नवनीत सभी गाते, प्रभु मोह निद्रा से जगाते हैं ॥ १ ॥
प्रभु आप दया के निकेतन हैं, शांति सुख से परिपूर्ण हैं।
सब देवों के भी देवन हैं, रोतों को हृदय से लगाते हैं ॥ २ ॥
प्रभु कोमल मृदुल दयालु हैं, निःस्वार्थ परम कृपालु हैं।
द्रवित हृदय के सरल घने, दासन हित कष्ट उठाते हैं ॥ ३ ॥
ऐसे प्रभु को जो लख लेता, उसे दुनियां का रंग ना भाता।
गुरु सेवा में मन रम जाता, निर्भय पथ को अपनाते हैं ॥ ४ ॥

अगम प्रभु के गुण सागर, दिल नहीं भरता गुण गा गाकर।
मैं देख-देख गद-गद जाऊँ, ब्रह्मादिक शीश झुकाते हैं ॥ ५ ॥
"स्वामी चेतन" की हुई कृपाधनी, "नारायण" को दी आत्ममणी।
गद-गद हो सब भाई बहन, अब चेतन-चेतन गाते हैं ॥ ६ ॥

—:०—

भजन—१९

तर्ज—आओ-आओ मेरे प्यारे भाई ....।

प्यारे प्यारे श्री सतगुरु मेरे, अनुभव इनका रंग।
न्यारे न्यारे, श्री सतगुरु मेरे, अनुभव इनका रंग ॥ टे० ॥
जन्म-जन्म की आशा तोड़ने, सतगुरु हुये सहाई।
हितकर इनकी वाणी सुनकर करो आश का भंग ॥ १ ॥
सतगुरु जी से बढ़ कर कोई, देव नहीं जगमांहि।
ऐसे देव का पूजन कर लो, होकर अति निःशंक ॥ २ ॥
गुप्त धनी करुणा के सिंधु, नवनीत प्रभु को देखो।
सबसे ज्यादा कोमल प्रभु को, पेखो खूब उमंग ॥ ३ ॥
दासन दास कहे किम मुख से, महिमा अगम अनूठी।
कोटि-कोटि जिज्ञासु जनों का, किया मोह तम भंग ॥ ४ ॥
तत्व ज्ञान दिया सतगुरु ने, दुविधा सभी मिटाई।
"नारायण" सर्वत्र निहारूं, "चेतन" अमल असंग ॥ ५ ॥

भजन–३०

तर्ज– वाह-वाह रे मौज.............................।

वाह वाह रे सतगुरु दाता की। न बरनी जाय गति इनकी ॥ टेर ॥
सकल दिव्य सदगुण के सागर। गागर भरे गरीबों की ॥ २ ॥
राजा रंक पर एक नजर है। प्यारी समदृष्टि इनकी ॥ २ ॥
परम सुधारस अनुपम सुन्दर। वाणी कहे भव तारन की ॥ ३ ॥
दास गरीब कहे किस मुख से। महिमा अगम गुरु चरणन की ॥ ४ ॥
कहे "नारायण" गुरु कृपा से। मिट गई चंचलता मन की ॥ ५ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु पै क्या वारू'। तपत बुझाई हृदय की ॥ ६ ॥

—:०:—

भजन–३१

तर्ज--प्रेम नदियां की.............................।

मैं तो जाना निज भेव -२ बार। भूले हुये रूप को जनाया गुरुदेव ॥ टे० ॥
पुण्य रेख खिली गुरु केशरी मिले। अज्ञान गया भाग द्वार हृदय के खुले ॥
सार सतगुरु सेव ॥ १ ॥
संसार कारागार में मैं भूलो निज गैल। हँस बोले गुरुदेव तेरो घट ही में छैल ॥
निज भूल को बिसार ॥ २ ॥ टे० ॥
अहो परमानन्द निज सुख पाय आज। सुख में गोते खाय रहा करता आत्म राज।
सर्व गुरु का प्रताप ॥ ३ ॥
करुणास्वामी, करुणासागर, करुणारत्न। सबसे प्यारे जग के न्यारे, गुरु के वचन ॥
खिला ज्ञान का चमन ॥ ४ ॥

हृदय विशाल नवनीत प्रभु नाम। कृतांत भय दूर किया पल में पायो राम।
गूँजे निज की झनकार ॥ ५ ॥
कहे "नारायण" "स्वामी चेतन" सतगुरु दया कर दी अपार।
जन्म-जन्म की दुविधा मिट गई छूट गयो संसार ॥
पायो आतम विचार ॥ ६ ॥

—:०—

भजन—३२

तर्ज— संतों में बैठी मीरा.... .... ।

संतों की चाल निराली, बिरला ही जान पाया।
बिरला ही जान पावे, कोई कोई जान पावे ॥ टे० ॥
जीवों को तारने को, अवतार भू में लिन्हा।
भूमा का देके ज्ञान, दुःखियों को पार लगाया । १ ॥
शिष्यों के झुंड में बैठे, शिष्यों से लिपटे दिखाते।
किन्तु हैं निर्लेपी राम, पल में ही छोड़ दिखाया ॥ २ ॥
समदर्शी हैं भगवान, कण-कण से प्रेम करते।
लीला जानी न जाय, अनोखा दृश्य दिखाया ॥ ३ ॥
हर हाल में निज मस्ती, लवलीन निज में रहते।
सब देवन के सिरमौर, सबने ही शीश झुकाया ॥ ४ ॥
संतों के आसरे से, त्रिलौकी शोभा पावे।
जो भूमण्डल श्रृंगार, हर एक को लुभाया ॥ ५ ॥
कहे "नारायण" सिरमौर, "स्वामी चेतन" रक्षक हैं।
जिनके पावन चरणों में, दासों ने शीश झुकाया ॥ ६ ॥

—:०:—

भजन—३३

तर्ज—ढप की.................. .... ।

सतगुरु का मिलना नहीं हाँसी ॥ टे० ॥

जन्म-जन्म का पुण्य जब प्रगटे। तब सतगुरु को संग होसी ॥ १ ॥
सतगुरु के वचनामृत पीकर। सब कोई का मन रम जासी ॥ २ ॥
प्रभु चरणों का बन जा प्यारा। बार-बार समय नहीं आसी ॥ ३ ॥
सब तीरथ गुरू चरणों माँहि। क्यों जावे मथुरा काशी ॥ ४ ॥
परम दयालु अमानी प्रभुजी। अजर अमर हैं अविनाशी ॥ ५ ॥
चेतन - चेतन - चेतन गावो। ज्योति में ज्योति समा जासी ॥ ६ ॥
"स्वामी चेतन" गुरू हैं जग तारन। "नारायण" क्या महिमा गासी ॥ ७ ॥

—:०:—

भजन—३४

तज—आज आनन्द अपार..... .... - .... ।

प्रभु दुःखियों के आधार -२ बार।
जन-जन टेक निभानेवाले, कोमल करुणागार ॥ टे० ॥
प्यारी-प्यारी सूरत प्रभु, प्रेम के रसाल।
मीठे-मीठे बैन गाये, अमृत को ताल ॥
दिव्य ज्ञान के भंडार ॥ १ ॥
तन मन की सुध ना लेते, गुरु भक्तों के ही काज ॥ -२ ॥
अमृत वर्षा करते प्यारी सतसंग में विराज ॥
सतगुरु सांचे हितकार ॥ २ ॥
निःस्वार्थ निःस्कींचन तोड़ी इच्छा की दीवार ॥ -२ ॥

सबकी मांगें पूरी करते, इतने हैं दातार ॥
सतगुरु जीवन के रखवार ॥ ३ ॥

सुनलो सतगुरु दीनबन्धु मेरी भी पुकार ।
तव चरणों का प्रेम देवो, साँचे हितकार ॥
यही माँगू बारम्बार ॥ ४ ॥

"श्री नारायण" गावें किस विध, तेरा उपकार ।
तन मन सब "कुरबान" कर दूं, तो भी है आभार ॥
"चेतन" गुरु ज्ञान के भंडार ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन–३९

तज—तूं तो परम पियारो .... ।

साँचे सतगुरु विन रखवार - बिना करतार जगत बिच कोई नहीं ॥ टेर ॥
सतगुरु बिन जीव यूं लगे, ज्यूं बिन नम्बर का नोट ।
विना बुद्धि के मानव जैसे, दर-दर खावे चोट ॥ १ ॥
सतगुरु बिन जीव यूं लगे, ज्यों बिन प्राण की देह ।
विना नीमक के भोजन में ज्यों, कोई न करता नेह ॥ २ ॥
बिन केवट की नाव जैसे, डूब जाय मँझधार ।
त्यों सतगुरु बिन मानव देही, बह जाती संसार ॥ ३ ॥
बिन नैनों की देह जैसे, बिन पलकों के नैन ।
त्यों समर्थ सतगुरु बिन हिय में, कबहूं न आवे चैन ॥ ४ ॥
सब साधन भरपूर होवे, जाने वेद विचार ।
सफल नहीं सतगुरु बिन विद्या काहे करत हंकार ॥ ५ ॥

काहू के मन ना भाती जी, बिन चंदा की रात।
त्यों सतगुरु बिन शोभे नाहीं, सुंदर मानव गात ॥ ६ ॥
"श्री नारायण" कहे गुरु ही, जीवन के करतार।
धन्य-धन्य "स्वामी चेतन" को, कर दिया भव से पार ॥

—:०:—

भजन—३६

तर्ज—इस मन की बांगा मोड़े, ऐसा कोई संत मिले ....।

मेरे मोह के बंधन तोड़े, ऐसे गुरुदेव मिले।
मुझे डूबती देख के दौड़े, ऐसे गुरुदेव मिले ॥ टे० ॥
कामादि दुःख द्वन्द निवारे, जन्म-जन्म की ताप उतारे।
मन में एक ना अवगुण छोड़े, ऐसे गुरुदेव मिले ॥ १ ॥
लय विक्षेप वासना खोवे, रागादि का कचरा धोवे।
अति चंचल मन को मोड़े, ऐसे गुरुदेव मिले ॥ २ ॥
जीव ब्रह्म को एक लखावे, सोंह-सोंह पाठ पकावे।
मार्ग के हटाये रोड़े, ऐसे गुरुदेव मिले ॥ ३ ॥
आनन्दमय निज रूप तुम्हारा, कहे "नारायण" जान पियारा।
"स्वामी चेतन" सम गुरु थोड़े, ऐसे गुरुदेव मिले ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—३७

तर्ज—प्रभु मेरे दिल में सदा याद आना.... ......।

प्रभु प्यारे अनुपम दयालु है भारी। दिखाते हैं घट में ही, कृष्ण मुरारी ॥ टे० ॥

हो माखन से कोमल, हो मीसरी से मीठे। तुम्हें देख दुःखियों, की होती जीवारी ॥ १ ॥
हृदय देव मेरे, हटाते तिमिर तम। है नैनों की ज्योति, हैं आनन्द कारी ॥ २ ॥
पिलादे-पिलादे, नशा प्रभु ऐसा। मिटे मन की दुःखदाई, द्वैत बिमारी ॥ ३ ॥
सुना ब्रह्मवाणी जगाते हैं हरदम। मिटाते हैं ममता की, दुःखप्रद बिमारी ॥ ४ ॥
हटाते हैं यमराज, धर्मराज का भय। मिटाते हैं मन की, भटकना जो सारी ॥ ५ ॥
"स्वामीचेतन" गुरु की महिमा है भारी। "नारायण" करे हैं, ये वन्दना तुम्हारी ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—३८

क्षमावान मेरे सतगुरु ने, सहने का पाठ सिखाया है।
क्षमावान मेरे सतगुरु ने, झुकने का पाठ सिखाया है ॥ टेर ॥

क्षमा ज्ञान का भूषण है, यदि क्षमा न आई ज्ञान कहाँ।
ज्ञान तभी सुन्दर लगता, जब धीरज को अपनाया है ॥ १ ॥

सहन किया ध्रुव, भक्त प्रह्लाद ने, सहन किया मीराबाई ने।
सहनेवालों ने ही बहनों, ऊँचा दर्जा पाया है ॥ २ ॥

द्वैत मान उर दुःख होता है, द्वैत मान कर रंग आता।
है वही सुखी बस इस जग में, जिन द्वैत का दाग मिटाया है ॥ ३ ॥

दुनियां के सारे द्वन्द्वों को, एक संत जनों ने सहन किया।
कहे "नारायण" "स्वामी चेतन" गुरु ने, प्रकट ये पाठ दिखाया है ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन-३९

तर्ज—जीवन का भार उतार दिया ...."।

सारा ही विश्व उबार दिया, गुरुदेव आपकी नज़रों ने।
जीवों का रोना टार दिया, गुरुदेव आपकी नजरों ने ॥ टे० ॥
निर्मोही प्रभु निष्कींचन हो, समदृष्टि दयालु रूप तेरा।
अनुपम ही घना उपकार किया, गुरुदेव आपकी नजरों ने ॥ १ ॥
तुम शांत स्वरूप नवनीत बने, त्यागी रुअमानी चित्त तेरा।
परहित में तन को बिसार दिया, गुरुदेव आपकी नजरों ने ॥ २ ॥
तुम रक्षक हो, प्रतिपालक हो, भवबन्ध हरो जी गरीबों के।
मुझको तो बस आराम मिला, गुरुदेव आपके चरणों में ॥ ३ ॥
तेरी अटपट है महिमा भारी, झटपट ना कोई जान सके।
जल्दी ही अब विस्तार दया, गुरुदेव आपकी नजरों में ॥ ४ ॥
"स्वामी चेतन" के चरणों में निराला प्यार भरा अद्भुत रस है।
"श्री नारायण" ने पान किया, गुरुदेव आपकी नजरों ने ॥ ५ ॥

—:o:—

भजन-४०

तेरी महिमा अगम प्रभुजी, किसी ने भेद नहीं जाना।
हार कर वेद थक बैठे, जिन्होंने नेति कर गाना ॥ टे० ॥
दयामय हो दयासागर, दयालु नाम तेरा है।
तेरी इक दृष्टि ने तारे, अधम जो जीव थे नाना ॥ २ ॥
मस्त रहते निजानंद में, निराला रंग अनुभव का।
सुनाते प्यारी वाणी है, हुआ सब लोक दीवाना ॥ २ ॥

न जानूं प्रेम भक्ति में, करूं किस भाव से अर्जी।
पतितपावन प्रभु तुम हो, जान कर दीन अपनाना ॥ ३ ॥
अहो बड़े भाग्य थे मेरे, ज्ञान दाता गुरु पाये।
करो मन सांची भक्ति को, समय है चूक मत जाना ॥ ४ ॥
पुकारे दास "नारायण", करो "चेतन" मेरी ज्योति।
कुशल उनकी सदा ही है, जिन्होंने आपको जाना ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—४१

तर्ज—यह जन्म निछावर हो जावे.... .... ।

यह सतगुरु मेरे ऐसे हैं, जिनकी महिमा कोई लख न सके।
इनके कोमल हृदय के आगे, मोम भी जल्दी पिघल न सके ॥ टे० ॥
गुरु कुछ नहीं चाहते जग में, हां चलते निःस्वार्थ मग में।
निर्लिप्त असंगी ऐसे हैं, रह जल में भी वह कमल न सके ॥ १ ॥
ऐसे गुरु पर सब वारी हैं, जो इतने करुणाधारी हैं।
प्रभु कारणवश है कठोर बने, पर दया हृदय से निकल न सके ॥ २ ॥
ऐसे गुरु के संग में रहते, जो आपा सारा खो देते।
मुझ प्रेम विहीन का प्रेम शिथिल, जो प्रभु के हिय को छल न सके ॥ ३ ॥
इनकी वाणी अति ही प्यारी, हर रूप से मेरी हितकारी।
गुरु दाता मेरे अति भारी, पर प्रेम विहीन की चल न सके ॥ ४ ॥
गुरु मर्जी पर जीवन मेरा, कहे "नारायण" मैं दास तेरा।
तेरे ही चरणों में डेरा, "स्वामी चेतन" ही इस मन में बसे ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन–४२

तर्ज—थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर नाजिर कद की.......................।

तू तो परम पियारो दीननाथ -२, सूरत म्हारी तुमसे लगी ॥ टे० ॥
जन्म-जन्म का मैल मिटाते, वर्षा अमृत धार।
मोह नींद से जगाते सबको, खोले हिय के किंवार ॥ १ ॥
तुम सम कोमल कोई नहीं, प्रभु देखा नैन पसार।
भक्त जनों की प्राण निधि तुम, हे साँचे हितकार ॥ २ ॥
हे निर्मम वैरागी भगवान, हे मेरे हितकर।
विवेक वैराग देवो मेरे दाता, बावलो करत पुकार ॥ ३ ॥
हे "नारायण" परम प्रभु तुम, जग को तारन हार।
"चेतन" रूप दिखा के हमको, कर दो भव से पार ॥ ४ ॥

भजन–४३

तर्ज—तारों में चन्द्र समान..........................।

षट ज्योति प्रकाशक भानू हो तुम।
गुरुदेव तुम्हारी जय होवे ॥
सब होवे सुलभ पर दुर्लभ हो तुम।
गुरुदेव तुम्हारी जय होवे ॥ टेर ॥
मेरे मात पिता अरु बन्धु तुम्हीं।
ओ जीवन रक्षक दाता तुम्हीं ॥
मम हृदय हितैषी की जय होवे ॥ १ ॥

आज पुण्य पूखले सारे खिले।
बांटूं भाव बधाई गुरुजी मिले॥
हे परोपकारी तेरी जय होवे॥ २॥

तुम परम दयालु कृपालु अति।
शरणागत पाते हैं नीकी गति॥
हे शांति निकेतन तेरी जय होवे॥ ३॥

कहे "नारायण" अति कोमल हो तुम।
तेरी ही शरण में आये हैं हम॥
"स्वामी चेतन" प्रभु तेरी जय होवे॥ ४॥

—:०:—

भजन—४४

तर्ज—रंग दे तमाशे सारे कुड़े .... ।

सतगुरु तेरी ही महिमा भारी, हम नहीं जानते।
गुरुवर तेरी अनुभव वाणी कोई-कोई जानते॥ टे॰
हृदय भरियां अनुभव सागर, कंगालों की भरते गागर।
अनुकम्पा विस्तारते॥ १
मुझको सतगुरु तेरी आशा, जो मिल जावे दया दिलासा।
बिन साधन तर जावते॥ २
तेरे द्वार पै जो भी आवे, कदे ना फिर कर वापिस जावे।
तुम सब की पैज पुगावते॥ ३
"नारायण" गुण गावो विमूढ़ मन, कुशल इसी में सब हो "चेतन"।
सब ही वेद पुकारते॥ ४

—— ——

भजन—४५

तर्ज—ओ दुनिया के रखवाले········ ·········· ।

ओ भक्तन के रखवारे, सुन दास तेरा ये पुकारे।
सुन दास तेरा ये पुकारे ॥ टेर ॥
तेरी महिमा अगम है प्रभुजी, भेद कोई ना पा सकता।
नहीं जग में कोई वस्तु ऐसी, जिससे तेरी तुलना करता ॥
तुझ सम एक तूं ही है।
मेरी क्या विसात है प्रभुजी, जब वेद भी गा-गा हारे ॥ १ ॥
जीवन नैया बीच में अटकी, कभी डूबे कभी उतराये।
चारों ओर निहार के देखे, पर निराश ही आये ॥
बस तूं ही एक सहारा तूं ही एक प्रभु, तूं ही लगादे किनारे ॥ २ ॥
तुम ही जब ठुकराओगे प्रभु, तुम बिन कौन आसरा।
तेरे सिवा ना जग में कोई, प्रभु मेरा सहारा ॥
जीवन नैया तुझको सौंपी, यह तो तेरी मर्जी पर निर्भर,
डूबो दे या पार करे ॥ ३ ॥
दीनबन्धु करुणारत्न, तुम दया के सागर हो ॥
खाली न लौटे कोई द्वार से, भरते सबकी गागर हो ॥
तूं दया का अतुल भंडार है, तेरा दिल असीम दया से भरा है,
पर अभागा ना पाये ॥ ४ ॥
न जानूं कुछ सेवा भक्ति, न जानूं कुछ युक्ति।
साँची लगन साँची ही तड़प दो, साँचा प्रेम और युक्ति ॥
हे "नारायण" तुमसे मांगूं, सुनलो दास की विनती प्रभुजी
कब से खड़ा ये पुकारे ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—४६

तर्ज—जरा प्रेम भरो जी .... ।

सतगुरु की महिमा है भारी, कोई भेव नहीं लख पाये है।
आध्यात्मिक विद्या के दाता, अद्भुत ही धन बरसावे है॥ टे०॥
कभी विष्णु रूप से नेह करते, कभी सूर्य रूप से तम हरते।
कभी गंगावत निर्मल रहते, मन पेख-पेख हुलसावे है॥ १॥
परहित कारण है तन धरते, गुरुवर की क्रिया दुष्कर जग ते।
कभी धूप कभी सर्दी सहते, यह देख-देख हिया रोवे है॥ २॥
कहे "नारायण" मेरे स्वामी "चेतन" गुरु सर्व ओर छाये।
वही राम वही व्यापक विष्णु, गुरु ज्योति बीच दरसाये है॥ ३॥

--:०:—

भजन—४७

तर्ज—ओ चेतन जीव विचार .... ।

है सतगुरु देव निराले बने, ज्ञान की ज्योति जगावत है।
ओ शीतल शांत की शोभा घनी, चंदा सूरज शरमावत है॥ टेर॥
अनुपम सुन्दर कांति तेरी, चित निर्मल सरल दयाल अति।
हैं परम विवेकी कैसे कहुँ, यह तुच्छ वाणी जो लजावत है॥ १॥
कर कोमल पद पावन तेरे, जग तारण हो हितकारी प्रभु।
हैं नवतीत सुहृद साँचे, जन-जन के दुखड़े मिटावत हैं॥ २॥
मेरे मात पिता बन्धु तुम ही, एक तुम ही बसो हृदयस्वामी।
मुझ अंधे की लाठी तू ही, प्रभो तुम बिन ठौर न दीखत है॥ ३॥

प्रभु "नारायण" तुम दया करो, "चेतन" हो नित चित में बिहरो।
मैं दास बखान करूँ कैसे, ब्रह्मादिक भी सकुचावत है ॥ ६ ॥

—:०—

भजन--४८

प्यारे प्रभु के श्रीमुख से दुर्लभ वचनामृत हैं झरे।
रोना ना पड़ता उसको, जो प्रेम से इसका पान करे ॥ टे० ॥

ऐसे प्रभु के दर्शन पाना, भी अति ही दुर्लभ है।
फिर इनकी दया नजरें पाना, वो सबसे ही दुर्लभ है ॥
पा सके कोई वो नजरें, तो सब हो जाता सुलभ है ॥ १ ॥

सुनकर भी इनसे मुखरित, अनुपम से उद्गार।
इन्सा नहीं-नहीं टकराते, गर जिसके मर्म के तार ॥
बालक सम विश्वास करे जो, उसका बेड़ा होता पार ॥ २ ॥

उनके लिये मिट जाते हम, जिनमें भरी है मक्कारी।
पाकर के तुच्छ चीजें उनसे, हो जाते हैं आभारी ॥
अमूल्य वस्तु पाकर प्रभु से, क्या किया हमने कुछ करो विचारो ॥ ३ ॥

सोचो क्या कर सकते हैं हम, आज प्रभु के लिये बलिदान।
भूलो मत ऐ नादां प्राणी, जग की सारी झूठी शान ॥
जो अपना आपा दे देता, उसका हो जाता कल्याण ॥ ४ ॥

प्रभु के सम कोई और नहीं, ढूंढ लिया मैं सारा जहां।
दे सके कुछ प्रभु को हम, ऐसी वस्तु जग में कहाँ ॥
युगों तक भी न चुका सकते हम, इनका ऋण जो हम पै महा ॥ ५ ॥

अपना लेता जो इनकी, प्यार भरी वाणी का सार।

संशय नहीं उसके जीवन का, हो जाता है सहज सुधार ।।
कहे "नारायण" सुख चाहे वो, स्वामी "चेतन" के चरण परे ।। ६ ।।

—:०:—

भजन—४९

श्री सतगुरु जी के चरणों में, श्रद्धा और प्रेम बढ़ा मनवां ।
जिससे जीवन हो सफल तेरा, और चौरासी में नहीं जावां ।। टे० ।।
श्रद्धा की बेल बढ़े जबहिं, तबहिं निश्चयात्मक ज्ञान हढ़े ।
इससे हृदय को शुद्ध करके, सतगुरु के चरणों में जा मनवां ।। १ ।।
इस स्वार्थ की दुनियां में भला, सुख शांति का है वास कहाँ ।
सुख शांति का घर सत्संग है, नित उससे प्रेम बढ़ा मनवां ।। २ ।।
भौतिक उन्नति के पीछे, हीरा-सा जन्म विताय दिया ।
उससे क्या कारज सिद्ध हुआ, रोना ही रोना मिला मनवां ।। ३ ।।
अब इस कलियुग में भागों से, ब्रह्मवेत्ता सतगुरु पाये हैं ।
अब उत्तम सत्संग तीर्थ में, नित डुबकी मार नहा मनवां ।। ४ ।।
कहे "नारायण" प्रभु कृपा से, स्वामी "चेतन" सतगुरु पाये हैं ।
जब गति शांत होगी तेरी, तब दुःख दूर सब हो मनवां ।। ५ ।।

—०:—

भजन—५०

तर्ज—मन रे उँधों........ ....।

सद्गुरु आप बड़े सुखदाई ।। टे० ।।
दासन हित बहु कष्ट उठाते । तन मन सुध बिसराई ।। १ ।।

त्यागी वैरागी स्वरूप तेरा। प्रभु मोह से देत जगाई ॥ २ ॥
अमृत वाणी सुनकर तुम्हारी। अजर अमर गति पाई ॥ ३ ॥
कहे "नारायण" "स्वामी चेतन" की। महिमा वर्णनी न जाई ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन–७१

तर्ज—बतादे जोशी........................ .. ।

हटाई फांसी, सतगुरु मिले सुखरासी, हटाई फांसी ॥ टे० ॥
काम बिसारयो म्हारो क्रोध बिसारयो प्रभुजी -२ ।
ममता बन गई दासी, हटाई फांसी ॥ १ ॥
दुविधा सारी दूर भगाई प्रभुजी -२ ।
मिट गई मन की उदासी, हटाई फांसी ॥ २ ॥
क्लेश भ्रम सब द्वन्द मिटाये प्रभुजी -२ ।
चिंता पराई नाशी, हटाई फांसी ॥ ३ ॥
हँसनो सिखायो सतगुरु जी म्हान।
अब कूण आँसू बहासी, हटाई फांसी ॥ ४ ॥
गुरु चरणों में तीर्थ न्हाया सारा।
कुन जाव मथुरा काशी, हटाई फांसी ॥ ५ ॥
ज्ञान को सूर्य घट में उगायो प्रभुजी।
अब कुन दीप जलासी, हटाई फांसी ॥ ६ ॥
मौज निराली घर बैठयां देई प्रभुजी ।
भटकन अब कुण जासी, हटाई फांसी ॥ ७ ॥
कहे "नारायण" "स्वामी चेतन" से।
वर पायो अविनाशी, हटाई फांसी ॥ ८ ॥

—:०:—

भजन–५२

तर्ज—दुनियां वाले आँखें .... ।

परम निराले कोमल प्रभुजी, अमृत वर्षा करते हैं।
जन्म-जन्म का मैल मिटाते, सबके ही मन हरते हैं ।। टे० ।।
गंगावत निर्मल गुरु हृदय, सब पर दया बहाते हैं।
जन्म-जन्म के पुण्य खिलें, तब पूर्ण सतगुरु पाते हैं ।। १ ।।
निज प्यारी वाणी से सतगुरुजी, मोह निद्रा से जगाते हैं।
ज्ञानामृत की घूंट पिला, हृदय का भेद मिटाते हैं ।। २ ।।
कोमल सरल मधुर हिय गुरु का, निःस्वार्थ उपकारी हैं।
भक्त जनों के प्राणनिधि गुरु, "अद्भुत" आनन्दकारी हैं ।। ३ ।।
कहे "नारायण" "स्वामी चेतन", "सतगुरु" निर्भय गर्जन करते हैं।
तत्वमसी एक शब्द सुना, जीवों को अमर बनाते हैं ।। ४ ।।

—:०:—

गुरु वचन पर

भजन–५३

तर्ज चौपाई की......................... .... ।

गुरुवाणी चिंता विनशावे। गुरुवाणी आनन्द प्रगटावे ।। १ ।।
गुरुवाणी भव बंधन हारी। गुरुवाणी हृदय को प्यारी ।। २ ।।
गुरुवाणी ही अमर बनावे। गुरुवाणी दुविधा विनशावे ।। ३ ।।
गुरुवाणी रोते को हँसावे। गुरुवाणी ही धीर बँधावे ।। ४ ।।
गुरुवाणी अमृत बरसावे। ज्ञानसिंधु गुरुवाणी डुबावे ।। ५ ।।
गुरुवाणी चौरासी काटे। गुरुवाणी चंचल मन डाटे ।। ६ ।।

गुरुवाणी भय मुक्त करावे। गुरुवाणी भक्ति सिखलावे ॥ ७ ॥
"स्वामी चेतन" वाणी सुख खानी। कहे "नारायण" सब रस दानी ॥ ८ ॥

—:o:—

भजन—५४

तर्ज—सतगुरु वचन मैं तूं डट ....।

सतगुरु-क-शरण म तूं डट जासी। फेर तन राम भाया मिल जासी ॥ टेर ॥
गुरु भक्ति तूं मन में बसा ले। सेवा कर के सतगुरु को रिझा ले ॥
मन निर्मल जद हो जासी ॥ १ ॥
गुरु सन्मुख मत कर चतुराई। छोड़ दे कपट मन की कुटिलाई ॥
विषयों को रस जद भूल जासी ॥ २ ॥
माता पिता सुत कोई न तुम्हारा। जान जगत बिच हरी को पियारा ॥
ममता की डोरी कट जासी ॥ ३ ॥
गुरु बिन मुक्ति कोई न पावे। चाहे नाना तीर्थों में नहावे ॥
गुरु मिल्यां सौदों पट जासी ॥ ४ ॥
कहे "नारायण" प्रिय वचनों में। "स्वामी चेतन" के श्री चरणों में ॥
सब तीर्थ मथुरा काशी ॥ ५ ॥

—:o:—

भजन—५५

तर्ज—गुरु द्वारा मेरा मधुर ....।

गुरु महिमा मधुर महान सजनी। सब गावें वेद पुरान सजनी ॥ टेर ॥

गुरु अमृत बरसा करते हैं, जीवों को अमर बनाते हैं।
गुरु देते आत्मज्ञान सजनी ॥ १ ॥
गुरु कोमल निर्मल गंगावत, गुरु तेज प्रकाशक भानुवत।
मेरा सतगुरु रत्नों की खान सजनी ॥ २ ॥
गुरु यम का खाता चुकाते हैं, जन्मों का झगड़ा मिटाते हैं।
गुरु देते परम आराम सजनी ॥ ३ ॥
गुरु भेद भाव मिटाते हैं, तूं कौन है ये बतलाते हैं।
ममता का कराते दान सजनी ॥ ४ ॥
श्री "नारायण" ने गाया यही, "स्वामी चेतन" सम कोई पाया नहीं।
मैं ढूँढा सारा जहान सजनी ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—२६

जब ज्ञान सिन्धु गुरुदेव मिले, फिर शेष रहा अब पाना क्या।
जब आत्मपुर में पहुँच चुके, फिर ठंढे मुलकों में जाना क्या ॥ १ ॥
जब आत्म अनुपम तीर्थ में, रुच-रुच करके स्नान किया।
फिर काशी मथुरा हरिद्वार, तीर्थन पर भटकन जाना क्या ॥ २ ॥
देवों का देव स्वयम होकर, बालाजी आओ कहना क्या।
जब आत्म भाव दृढ़ा मन में, फिर माँ बन करके पिटना क्या ॥ ३ ॥
जब निज जीवन को सुधार लिया, फिर शेष रहा कर्त्तव्य नहीं।
जब अपने आपको जान लिया, फिर स्याना बनकर करना क्या ॥ ४ ॥
जब देह की पोथी पढ़ करके, देही देह का विवेक किया।
फिर और पोथियां पढ़ करके, विद्वान कहाकर करना क्या ॥ ५ ॥

कहे "नारायण" सब रूप मेरे, "स्वामी चेतन" से जब जान लिया।
फिर नाम रूप के झगड़ों में, स्थित मन को अटकाना क्या ॥ ६ ॥
जब ज्ञान यज्ञ गुरु से करके, हंगता ममता को जला डाला।
फिर तीरथ होम व्रतादिक में, बेमतलब समय गँवाना क्या ॥ ७ ॥

—:o—

भजन–५७

मैं पायो अमर सुहाग सतगुरु कृपा से।
मेरे खुल गये पिछले भाग सतगुरु कृपा से ॥ टे० ॥
अमर चूड़ा ऐसा पहनाया, टूटन का सब भय बिसराया,
लगे न विधवा दाग, सतगुरु कृपा से ॥ १ ॥
तन पर सुन्दर साज सजाया, समदम का गहना पहनाया,
नाक में बेसर नाम, सतगुरु कृपा से ॥ २ ॥
प्रेम की पाजिब, भाव की विछिया, हार विवेक का
गलबिच सजिया, चुनड़ है वैराग ॥ ३ ॥
इस सुहाग की चाह करी जब, दुनियां सारी टूट पड़ी तब।
अब माया गई भाग, सतगुरु कृपा से ॥ ४ ॥
ये सुहाग अति दुर्लभ भाई, बिन सतगुरु कोई पावे नाहीं।
कागा बन गया हंस, सतगुरु कृपा से ॥ ५ ॥
सच्चा सुख सतगुरु दर्शावे, मैं तूं का सब भेद मिटावे।
दुविधा गई सब भाग, सतगुरु कृपा से ॥ ६ ॥
सतगुरु बिना सब कँवारे फिरते, सच्ची शादी सतगुरु करते।
छोड़ जगत का संग, सतगुरु कृपा से ॥ ७ ॥
कहे "नारायण" प्रिय वचनों में, सुख है "स्वामी चेतन" चरणों में
जाग सके तो जाग, सतगुरु कृपा से ॥ ८ ॥

—:o:—

भजन—५८

सरल गुरुदेव ने हमको सरलता ही दिखाई है। ॥ टे० ॥
नशा धन का था अति भारी, नहीं कुछ सुझ पड़ता था।
कृपा करके गुरुवर ने, ये माया तुच्छ दर्शाई है ॥ १ ॥
पड़ा था मोह निद्रा में, हृदय अभिमान था भारी।
सुनाकर ब्रह्मवाणी सब, खुदी मन की मिटाई है ॥ २ ॥
सरल भिलनी की कुटिया में, प्रभु सबसे प्रथम आये।
कपट प्रभु प्रेम में पड़दा, बात वेदों ने गाई है ॥ ३ ॥
क्षणिक जीवन को पाकर के, करे अभिमान किस गुण पर।
कृपा करके गुरुवर ने, अकड़ मन की मिटाई है ॥ ४ ॥
"नारायण" बोलते भाई, हुआ जग में सफल जीवन।
"स्वामी चेतन" के चरणों में अचल निर्भयता पाई है ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—५९

तर्ज—बच्चे मन के सच्चे.......................।

गुरुजी जग से निराले, सोये को खूब जगाते।
काले अंधियारे को प्रभुजी, उगता उजाला बनाते ॥ टे० ॥
इनको किसी से बैर नहीं, इनके लिये कोई गैर नहीं।
मोह की इनसे खैर नहीं, दुश्मन के जमते पैर नहीं।
इनके चरणों में जो जाता, दुर्गुण पड़ते पैर नहीं।
तूं-तूं मैं-मैं हटाके प्रभुजी, समता भाव सिखाते।
गुरुजी जग से ... ... ॥ १ ॥

इनके सम कोई जग में कहां, अद्भुत मिलता रत्न यहां।
आओ कोई पहचान करें, सच्चा जीवन अरमान करें।
झूठे अरमानों को छोड़ो, मकड़ी के जालें तोड़ो।
सतगुरु ही हैं जो जालों की तोड़न विधी बताते ॥ २ ॥
इनके चरणों में आने से, अमृतमय इनके वचनों से।
पाप सभी भग जाते हैं, स्वर्ग नरक मिट जाते हैं।
मंजिल की दरकार नहीं, बाकी कोई तकरार नहीं।
यम के भय को हटा के प्रभुजी, सच्ची राह दिखाते हैं ॥ ३ ॥
"गुरु चेतन" परम उदारी है "श्री नारायण" बलिहारी है।
तब कौशल की बिसात कहां, गीता करे नित अरदास यहां।
सर को कटाता जो कोई सतगुरु प्यारा सोई।
सब वेदों का सार प्रभुजी, एक ही पल में बतादे गुरुजी ॥ ४ ॥

—:—

भजन—६०

आलीरी मेरा सतगुरु परम गंभीर।
सखीरी मेरा सतगुरु परम गंभीर ॥ टे० ॥
किस धुन में जगते अरु सोते दर्शाते ना धीर ॥ १ ॥
प्यारी-प्यारी वाणी सुना के, डारी प्रेम जंजीर ॥ २ ॥
आत्मरत गुरु ज्योति अनुठी, अनुपम सेठ अमीर ॥ ३ ॥
आनन्द डबल मनाते प्रभुजी, भक्तों की हटती जब भीर ॥ ४ ॥
"नारायण" चरणन बलिहारी सतगुरु निर्मल नीर ॥ ५ ॥

(स्वागत) पर

भजन—६१

तर्ज—रे मन मुसाफिर........ .. .. ।

मेरे प्रभु दया कर दी निराली। गिरे हुये मनों में छाई है लाली ॥ टे० ॥
करके कृपा प्रभु दर्शन दीन्हे।
मुरछायो मन आनंदित कीन्हे, प्रेमरुपी दीपक की आई दिवाली ॥ १ ॥
कोमल हृदय के पर उपकारी, परहित में अति कष्ट सहारी।
भक्तों के हित प्रभु सहते हैं गाली ॥ २ ॥
जन्मों का रोना पल में छूटाते, भूला हुवा निज रूप दिखाते।
अज्ञान भारी ताले की रखते हैं ताली ॥ ३ ॥
ऐसे प्रभु के चरण पखारूँ, धन मेरे दाता क्या मैं वारूँ।
प्रेम भक्ति से दास तेरे हैं खाली ॥ ४ ॥
मुझको हे गुरुवर आस तुम्हारी, तव चरणन का दास पुजारी।
अपने बगीचे का रख लो जी माली ॥ ५ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु महिमा तुम्हारी, कहे "नारायण" जग से है न्यारी।
भक्तों के जीवन हो रखवाली ॥ ६ ॥

—:०:—

चौपाई

भजन—६१

तर्ज—चौपाई की .... ।

बड़े भाग्य सतगुरु घर आये, दर्शन पाकर हिय हुलसावे ॥ टे० ॥
धन्य-धन्य सतगुरु नवनीता, तव दर्शन है परम पुनीता ॥ १ ॥
धन्य घड़ी धन्य भाग हमारा, सतगुरु आये किये दास सुखारा ॥ २ ॥

घर-घर आनंद मंगल छाये, देखन हूं के मन ललचाये ॥ ३ ॥
भानु रूप गुरु रूप अनुपा, हृदय कोमल वेद निरूपा ॥ ४ ॥
तुम्हारी दया पै क्या मैं वारूँ, नाबूँ माथ अरु चरण पखारूँ ॥ ५ ॥
अहो हम प्रेम भक्ति से हीने, श्रद्धा भाव से हृदय विहीने ॥ ६ ॥
उजर देश पै दया विस्तारी, करुणा कर आये हितकारी ॥ ७ ॥
रात दिवस करां याद तिहारी, आशिष देवहू' हितकारी ॥ ८ ॥
"नारायण" सदा दया तुम्हारी, "चेतन" छवि दिखलाई प्यारी ॥ ६ ॥

—— ——

भजन—६३

दास तेरे चरणों में आये।
बहुत करी तेरी आश दास के हृदय घबराये ॥ टे० ॥
तुम प्रेमी मंडल में आके, बन गये वैरागी।
हमरी सुध तुम क्यों लेते प्रभु, त्यागी के त्यागी ॥
तुम्हें कोई बोलन हार नहीं, अपनी करते मनमानी।
तुम पर कोई जोर नहीं ॥ १ ॥
हार गये सेवक तेरे, तुम अब तो अपनावो।
अब तो शीघ्र चलो मेरे दाता, देर नहीं लावो ॥
दास तेरी आशा कर रहे जी, तेरे दर्शन खातिर नैना
आँसू भर रहे जी ॥ २ ॥
ऐसी क्या चूक हुई मुझसे, तुम बोलो गुरुराई।
हृदय की झीनी प्रीति, तुमने क्यों बिसराई ॥
हे कोमल प्रभु मेरे, शरण पड़े की लज्जा राखो द्वार पड़े तेरे ॥ ३॥

परम असीम दया के सागर, तुम कब से बिछुड़े थे।
कुछ तो ख्याल करो हे दाता, कब छोड़ के आये थे ॥
प्रभु तुम कुछ तो ख्याल करो।
छोटे बालक जान प्रभु तुम दिल में दया भरो ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—६४

तर्ज—जीवन का भार उतार दिया.................. ।

दासों को हर्ष अपार हुआ, गुरुदेव हमारे आये हैं।
परम प्रवीण प्यारे प्रभुजी, दासों के मन अति भाये हैं ॥ टे० ॥
तव शोभा आगे मम प्रभुजी, चन्दा सूरज शरमावत है।
आनंद से घर गुंजार उठा, गुरुदेव हमारे आये हैं ॥ १ ॥
करुणा मैत्री मुदिता धारी, समदृष्टि प्रभु दयाधारी।
दुःखियों का दुःख हरने के लिये, गुरुदेव हमारे आये हैं ॥ २ ॥
ब्रह्म विचार कुमार लिये, पुत्री निर्वैरता साथ लिये।
जग में अनुपम परिवार लिये, गुरुदेव हमारे आये हैं ॥ ३ ॥
साँचे गुरु करुणायामी हैं, व्यापक सत "चेतन" स्वामी हैं।
कहे "नारायण" कुरबान सभी सबके दुखड़े बिनशाये हैं ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—६५

तर्ज—मैं तो उन संतों का हूं.............................. ।

म्हारे जागे पूरवले भाग, संतों के दर्शन पा लिये ॥ टेर ॥

गुरु कृपा से द्वार में आया, देखी अजब बहार।
सभा लगी है कैसी सुन्दर, हो रही जै जैकार ॥ १ ॥
बड़ भागी सब धो रहे, हैं मन की मैल अपार।
प्रेमी -२- रल मिल बैठे, पड़ रही प्रेम फुँहार ॥ २ ॥
ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मनेष्ठी, सतगुरु बैठे हैं घनश्याम।
निज की चर्चा कर रहे, ये मुक्ति का धाम ॥ ३ ॥
गुरुवर महिमा गायी न जाये बुद्धि मंद महान।
दास अधम तव चरणों में आया, देवो दया का दान ॥ ४ ॥
जय-जय-जय गुरुदेव तुम्हारी, मूढ़ लिये अपनाय।
"नारायण" "चेतन" हुई संगत, निज आत्म को पाय ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन–६६

तर्ज—कठिन चोट वैराग की .... ।

कठिन सैन गुरुराज की हेली, जाने कोई विरला संत।
हेली, कठिन सैन गुरुराज की ॥ टेर ॥
भूप अनुपम गुरु आये री, हुआ है आनन्द महान। हेली की सैन गुरुराज की ॥ १ ॥
नैन नीर पग धोऊँ, हे, कांधे बैठाऊँ भगवान। हेली, कठिन सैन गुरुराज की ॥ २ ॥
सतगुरु दिल दरिया बड़ी, हे सभी कहें दयावान। हेली, कठिन सैन गुरुराज की ॥ ३ ॥
गुरु महिमा भारी बड़ी है, कैसे करू' जी बखान। हेली, कठिन सैन गुरुराज की ॥ ४ ॥
पांव पड़ी लघु बालियाँ हे, दो आत्म का ज्ञान। हेली, कठिन सैन गुरुराज की ॥ ५ ॥
"नारायण" "चेतन" करो हे, पाये कुशल विज्ञान।
हेली, कठिन सैन गुरुराज की ॥ ६ ॥

—:०:—

भजन–६७

दर्शन दुर्लभ दीन्हे दयालु भगवान ने।
आनन्द वर्षा कीन्हीं दयालु भगवान ने॥ टेर॥
जग की आँधी ऐसी, आँखों में घुल जाती।
पलक बन छाये, गुरुजी मेरे सामने॥ १॥
ये जग की माया ऐसी, मनों को रंग लेती।
वैराग्य दे उबारे, दयालु भगवान ने॥ २॥
भव रोग लाग्या भारी, न वैद्य मिलता था।
प्रभु वैद्य बन के आये, अवतारी इस जहान में॥ ३॥
लूटो लूटो जी वहिनों आनन्द छाया है।
सब देवता तरसे, लुभावन होकर सामने॥ ४॥
नन्हें बाल रोते छोड़े थे दीनानाथ ने।
फिर आँसू पोछन आये, दयालु म्हारे आँगने॥ ५॥
तेरी कृपा अनूठी, नहीं पार कोई पाया।
संताप हरने आए, इस दीन के मकान में॥ ६॥
"स्वामी चेतन" तुम्हीं हो, जन-जन की आत्मा में।
सब में ही एक दिखाया, "नारायण" भगवान ने॥ ८॥

– :o:—

भजन–६८

आये प्रभु हमारे आनन्द छा रहा है॥
दयालु प्रभु हैं मेरे दुःखियों का दुःख हरते।
तेरे मधुर वचन में अमृत बरस रहा है॥ १॥

करुणा के तुम खजाने, महिमा न वेद जाने।
अन्धों की आँख तूं ही मार्ग दिखा रहा है॥ २॥
पापी भी तूं ने तारे, धर्मी भी तूं ने तारे।
कल युग में ज्ञान की तूं गंगा बहा रहा है॥ ३॥
"चेतन" प्रभु हैं मेरे, "चेतन" किया जगत को।
"नारायण" सभी में, तेरा प्रकाश छा रहा है॥ ४॥

भजन—६९

तर्ज—कौन पावे वाको पार........................।

आज आनंद अपार -२- घर आये गुरुदेव सतसंग की बहार।
घर आये गुरुदेव, करूँ जय - जय - जय कार॥ टेर॥
देवता भी तरसें, कब पावें संत दयाल। वे ही गुरु अमानी, आये तन मन जाऊँ बार॥
लिया कलियुग में अवतार -२-। १॥
करुणा के निधान, कृपा कर दी अपार। तुम्हीं एक शरणागत, सुनते पुकार॥
ली दासों की संभार - ली दासों की संभार॥ २॥
सुनो री सुनाऊं, एक बात अनमोल। अलौकिक सेठ गुरु धन दें दिल खोल॥
कोई ले लो लेवन हार -२-॥ ३॥
धन्य प्रभु तुम्हें, तेरी महिमा है अपार। देकर के उपदेश, करते दुःखियों का उद्धार॥
दास जाए बलिहार -२-॥ ४॥
भक्तन के शिरमौर, नवनीत तेरा नाम। तेरे ही चरणों का करूँ, ध्यान सुबह शाम॥
मेरे बंधन निवार -२-॥ ५॥
मर्यादा वान राम तुम ही, कृष्ण घनश्याम।
"स्वामी चेतन" सब में, व्यापक सत चित्त आनन्द धाम॥
तुम ही "नारायण" करतार॥ ६॥

—:०:—

भजन—७०

तर्ज—गुरुदेव मेरे आया द्वार तेरे...................।

गुरुदेव मेरे, पैयां लागूं तेरे हे मुरारी।
आज कितनी दया विस्तारी॥ टे०॥
आज आनन्द की घड़िया छाई। मौनी गुरु ने दया बर्षाई॥
पुण्य सारे खिले, प्यारे गुरुदेव मिले उपकारी॥ १॥
मेरे गुरु पर मैं क्या वारूँ। तन मन वारूँ तो भी हारूँ॥
तुच्छ प्रेम को हार, प्रभु करो स्वीकार, हितकारी॥ २॥
प्रभु इतनी देर क्यों लगाई। तरसा तरसा दया बर्षाई॥
यह पराधीन तन क्यों ख्याल न कीन्ह गुरुराई॥ ३॥
प्रभु धन्य-धन्य महिमा तुम्हारी। मेरी बिगड़ी दशा है सुधारी॥
दया दृष्टि करो मेरी विपदा हरो दयाधारी॥ ४॥
प्रभु ज्ञान की ज्योति जगाओ। रामायण का मर्म लखाओ॥
बुझूँ सोऽहँ सार, करो माया से पार, हो सुखारी॥ ५॥
सोधन तत्वमसि का करावो प्रभु। द्वैत का पड़दा हटावो॥
करता "नारायण" पुकार, "स्वामी चेतन" दयाल हितकारी॥ ६॥

—:०:—

भजन—७१

तर्ज—मेरा सत चित आनंद............ ... ।

गुरु आये परम अनूप, आनन्द बरसे रे।
ये गुरुवर हंस स्वरूप, अमृत बरसे रे॥ टे०॥

परम अलौकिक वैभव संपन्न, दीनन के प्रतिपालक भगवान।
गुरुवर रूप अनूप ॥ १ ॥ आनंद बरसे रे ये गुरुवर ॥
गुप्त रहस्य के हैं ये भेदी, भव रोगी के पक्के वैदी।
जग से निराले भूप ॥ २ ॥ आनंद बरसे रे, ये गुरुवर० ॥
भक्तन के रक्षक गुरुदेवा, कामादिक का करते छेवा।
जग दर्शी ब्रह्मरूप ॥ ३ ॥ ये गुरुवर ॥
निजानंद रस के अनुरागी, सहित सितम्बर पक्के त्यागी ॥
दर्शावे निजरूप, आनंद बरसे रे ॥ ४ ॥ ये गुरुवर० ॥
"स्वामी चेतन" की महिमा भारी, "नारायण" उनका आभारी।
गुरु साक्षी ब्रह्मरूप, आनंद बरसे रे ॥ ५ ॥
ये गुरुदेव हंस ... ... आनंद बरसे रे।

—:०—

भजन-७२

तर्ज—कहे सुकरात सुन.................।

परम हितकर मेरे गुरुवर, कृपा कर दर्श दिये हैं।
बड़ो शोभा अधिक भारी, दास को संग लिये हैं ॥ टेर ॥
सार आनंद गुरु दर्शन, और आनन्द सब फीके।
तिमिर संशय हटाने को, सूर्य गुरुदेव आये हैं ॥ १ ॥
विराग के चन्द्रमा तुम हो, ज्ञान के केशरी तुम हो।
गुप्त अनुभव के स्वामी हो, दया करके पधारे हैं ॥ २ ॥
करूं स्वागत मैं कवन भांति, प्रभु लायक मैं कुछ नाहीं।
तेरी है मोहनी मूर्ति, दास तन मन बिछाये हैं ॥ ३ ॥

लूट लो जिसकी हिम्मत हो, परम पावन प्रभु वाणी।
जगत आस्था मिटाने को, प्रभु दयालु ये आये हैं॥ ५॥
आज इस घोर जंगल में, प्रभु दुर्लभ पधारे हैं।
दया की भीख दो दाता, दास माँगन को आये हैं॥ ५॥
आत्मरस के हैं अनुरागी, तेरी महिमा अनूठी है।
कहे हैं दास "नारायण", गुरु "चेतन" हमारे हैं॥ ६॥

—:o:—

भजन—७३

तर्ज—ढूंढो ढूंढो रे........................ ...।

लूटो-लूटो री बहनों - लूटो री बहनों।
आया अमृत लुटाने वाला॥ टे०॥
अमृत लुटाने वाला ये ज्ञानी निराला रे।
है मन का निर्मोही -२- पर मोहने वाला॥ १॥
मोहने वाला, ये दयालु निराला रे।
जो परहित में तन का -२- न ख्याल रखने वाला॥ २॥
है सब का उजाला, घट-घट की जानन हारा रे।
दे दो प्यारी-प्यारी शिक्षा -२- तूं है टेर सुनने वाला॥ ३॥
टेर सुनने वाला, गरीबों का प्यारा रे।
करदो उजली-उजली कृपा -२- हम तेरे वाला॥ ४॥
आत्म धन वाला, तू ने किया माला माला रे।
"स्वामी चेतन" सतगुरु मेरे -२- "नारायण" कहने वाला॥ ५॥

—:o:—

भजन—७४

तर्ज—मैंने लाखों के बोल ....।

अब हुवा है आनद अपार, सतगुरु दर्श दिये।
भक्ति भाव कुछ नहिं जानूं, कैसे करूं सतकार ॥ टे० ॥
धन-धन हे मेरे सतगुरु प्यारे, दिल की सुनी पुकार ॥ १ ॥
घर-घर आनंद मंगल छाये, हो रही प्रेम बौछार ॥ २ ॥
पावन पाँव टिके मम प्रभु के, पावन आंगना हमार ॥ ३ ॥
हे प्यारे गुरु तव चरणों में, सद्-सद् है वलिहार ॥ ४ ॥
"नारायण" प्रभु अविनाशी तुम, हो चेतन साकार ॥ ५ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु हरो माया मल, तुम हो करुणागार ॥ ६ ॥

—:०:—

भजन—७५

तर्ज—मेरी छोटी-सी है नाव..................................।

प्रभु दया के निधान, तेरी महिमा महान।
देवो करुणा का दान, पाँव पड़ूँ कर जोड़ के ॥ टेर ॥

आज दास हुआ बड़ भागी, पाके दर्शन मना अनुरागी।
मन अति हर्षाय, हृदय फूला न समाय पाँव पड़ूँ कर० ॥ १ ॥

तव कोमल चित्त नवनीता तुम, शांत घने हो पुनीता।
धन ऐसे गुरुदेव कैसे जानूँ तेरा भेव, पाँव पड़ूँ कर जोर के ॥ २ ॥

प्रभु आत्म धनी करुणासागर, भर दो निज सेवा की गागर।
तुम बड़े ही दयाल, हम तेरे छोटे बाल, पांव पड़ुँ कर जोड़ के ॥ ३ ॥
मैं विनती करूं दाता पाकर, रखलो निज चरणों का चाकर।
मुझे भव से उबार, पाऊँ जीवन का मैं सार, पाँव पड़ूँ कर जोड़ के ॥ ४ ॥
"स्वामी चेतन" मिले सुखरासी, कट गई जन्म मरन की फांसी।
कहे "नारायण" धन आज पाया, निज आत्मा के राज पाँव पड़ूं०॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—७६

गरीबों की इस कुटिया में, प्रभु आये हैं समर्थ मेरे।
मानो खोई निधि पाई है, दासों के मन मुदिता से भरे ॥ टे० ॥
किन प्रेमी के महलों में, रहते थे तुम निश फीकरी होकर।
कभी याद किया क्या बोलो स्वामी, कुछ और भी हैं बालक मेरे। १ ॥
हम तो यों ही रुलते फिरते, प्रभु तव चरणों का विछोह पाकर।
हमको कोई नहीं झेल सके, क्योंकि खोटे बालक तेरे ॥ २ ॥
तेरे बिना मेरा रेहना ऐसा, जैसे गरीब अनाथों का।
तुम ख्याल करो विश्वास भरो, कब राखोगे अपने नेरे ॥ ३ ॥
तुम तो प्रभु जब भी आते हो, जाना ही संग में लाते हो।
आखिर हम खुशी मना न सके, दुःख ही रहता हरदम घेरे ॥ ४ ॥
हम खोटे खरे चाहे जैसे, तुमको ही प्रभु रखना होगा।
हमसे पीछा ना छुड़ाय सको, चाहे बास करो प्रेमी डेरे ॥ ५ ॥
हमरे व्याकुल नेत्रों को प्रभु, झांकी दिखलाने आय गये।
आनन्द इसी से हो रहा, सुखे बाग बने हैं हरे ॥ ६ ॥

हे "नारायण" तुम दया करो, "चेतन" हो इस चित्त में विहरो।
हम बालक तुम्हें पुकार रहे, गुरुदेव मेरे गुरुदेव मेरे ॥ ७ ॥

—:o:—

भजन—७७

तर्ज—मै हूँ जन-जन में.............. ....।

प्रभु दयाधारी, मेरे हितकारी, आज आये हमारे अंगना में ॥ टे० ॥
हुए दर्शन तुम्हारे मग्न मन सारे,
भाव दूध डारूं, प्यारे पांव पखारूँ ॥ १ ॥
गरीबन के सब दुःख निबारे, प्यारे प्रभु त्रिभुवन उजियारे।
संगत कुल के भानूं, शोभा क्या बखानूं ॥ २ ॥
समदृष्टि प्रभु परम वैरागी, देखत तन मन की सुधभागी।
कहे "नारायण" "स्वामी चेतन" अन्तर्यामी ॥ ३ ॥

—:o: -

भजन—७८

तर्ज—हरिश्चन्द्र के बारहमासे की.............. ... .।

सखीरी मेरे आये गुरु राई -२-।
दर्शन करके प्यासे मन की, कलियां बिगसाई ॥ टे० ॥
प्यारे प्रभु मैं क्या गाऊँ, तुम हो सुखकारी -२-।
करते कुछ प्रभु कह कुछ जाओ, लीला है न्यारी ॥

शोभा नगरी की आई -२- ।
तन का चीर उतार बिछाऊँ बैठो गुरुराई ॥ १ ॥
कोमल-कोमल हिय प्यारे पद, दूधों से धोऊं ।
भर मेवा फल थाल आरता, कर गद्गद जाऊं ॥
आज मैं सर्व निधि पाई -२- ।
धन्य प्रभु धन्य तेरी कृपा, वर्णनी न जाई ॥ २ ॥
करुणाशील निधान प्रभु, थारी महिमा है भारी ।
किस विध गाऊं गाई न जावे, मलिन वृति हमारी ॥
"चेतन" गुरु पूरी कर दे आसा -२- ।
"नारायण" प्रभु पाने की, हमको है जिज्ञासा ॥ ३ ॥

—:०—

भजन--७९

प्यारे-प्यारे सतगुरु आये, करके दया नजरीया ।
सुन लो-सुन लो सतगुरु मेरे, छोटी-सी अरजीया ॥ टे० ॥
इतने दिन से फुरसत पायी, तुमको प्रभु यहां आने की ।
मन भर-भर के घूम लिये, अब बात न करना जाने की ।
भूल गये होंगे प्रभु हमको, पाके नई नगरीया ॥ १ ॥
आनंद ही आनंद है छाया, मन भर-भर कर आवे जी ।
प्यारे प्रभु के दर्श पर्श से, रोम-रोम हर्षावे जी ॥
भीज रहा है मेरा तन मन, झूम रही नजरीया ॥ २ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु दाता हो तुम, दान दया का करते जी ।
कहे "नारायण" प्रभु से मिला दो, काहे देर करते जी ॥
पलक उघारो दास खड़े हैं, देखो टूक साँवरिया ॥ ३ ॥

—:०:—

भजन–८०

तर्ज—मैं हे दिवानी राम .... ।

मेरे आ गये सच्चे देव, मन आनन्द छायो रे।
आनन्द छायो रे प्रभु मुश्किल से आयो रे॥ टेर॥
पेख-पेख वैरागी प्रभु को मैं विगसाऊं रे।
तन का चीर उतार बिछाऊं, प्रभु को बिठाऊं रे॥ १॥
पलक बिछाये बैठे थे हम, पर तूं देर लगाई रे।
पर दर्शन तेरे पाकर, भूली सब प्रेम लड़ाई रे॥ २॥
यहां पर तो तुम कभी न कहते, मैं कैसे जाऊं रे।
पर जा परदेश हमें लिख भेजो, कैसे आऊं रे॥ ३॥
देख-देख तेरी महिमा प्रभु, मैं तो हारी रे।
तूं ही मेरा दाता है प्रभु, मैं तो भिखारी रे॥ ४॥
"नारायण" के दर्श कराने, सतगुरु "चेतन" आयो रे।
अगम अपार तेरी महिमा, दासी क्या गावे रे॥ ५॥

—:०:—

भजन–८१

आये हैं दीनों के दयाल, ओ मेरी प्यारी बहनों।
आये हैं साँचे करतार, ओ मेरी प्यारी बहनों॥ टे०॥
आनंद की बँटे बधाई, घर आये गुरुराई।
देखो शोभा अपरम्पार॥ १॥ टे०॥
तन का चीर बिछाऊं, श्रद्धा के फूल चढ़ाऊं।
आये साँचे सिरजन हार॥ २॥

सत्संग के दीपक आये, दुःखियों के दुःख मिटाये।
लूटो-लूटो लाभ अपार ॥ ३ ॥ टे० ॥
दाता के चरण चढ़ाऊं, ऐसी क्या वस्तु लाऊं।
कैसे करूं जी मनुहार ॥ ४ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु मेरे, आशा की काटे फांसी।
कहते "नारायण" पुकार ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—८२

सतगुरु तव प्यारे चरणों में, ये दर्श भिखारी आया है।
प्रभु दर्शन भिक्षा पाने को, दो नयन कटोरे लाया है ॥ टे० ॥
तव दर्शन पाकर के प्रभुजी, मुरझाया मन गुलजार हुआ।
तेरी प्यारी अनुकम्पा से, ये बालक दौड़ा आया है ॥ १ ॥
मेरी आशाओं को पूर्ण करो, हे दीन दयालो सतगुरुजी।
रख लेना पत अपनी स्वामी, बालक तेरी ही छाया है ॥ २ ॥
सब ओर निराशा दीख रही, एक तूं ही आश मेरे स्वामी।
जग सागर से कर पार, थाम पतवार, ये जी घबराया है ॥ ३ ॥
भ्रम भेद अग्नि का ताप हरो ओ करुणा सागर उमड़ घुमड़।
बुंद तरंग मैं तेरी हूँ, तुमने ही मुझे बताया है ॥ ४ ॥
ओ सत्यपिता "स्वामी चेतन", कहे "नारायण" एक अर्ज सुनो।
ब्रह्माण्ड का पालन करते हो, क्यूं मुझसे जी सकुचाया है ॥ ५ ॥

———

भजन—८३

झरते हैं प्रेम झरने, आये प्रभु हमारे।
दुःखियों का दुःख हरने, आये प्रभु हमारे ॥ टेर ॥
हर्षित मेरा तन मन, दर्शन तुम्हारे पाके।
पृथ्वी गगन खुशी है, खुश चाँद और तारे ॥ १ ॥
एक तुच्छ-सा हृदय ये, तेरे तरे बिछाऊं।
खुश होके बैठो भगवन्, समदृष्टि नैन तुम्हारे ॥ २ ॥
नहीं जानूं कोई सेवा, बस भाव की है मेवा।
रुच-रुच के खावो स्वामी, ये फल फूल प्यारे ॥ ३ ॥
गरीबों की इस कुटी में, पावन चरण टिकाये।
धन-धन तुम्हारी कृपा, तुम हो दयालु न्यारे ॥ ४ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु हैं मेरे, कहता है दास "नारायण"।
कुरबान है ये तन मन, तेरी दया पै प्यारे ॥ ५ ॥

—:o—

भजन—८४

सतगुरु साँचे हितकार, कोमल-कोमल करुणागार।
प्रेम नगरी से आये हैं प्यारे गुरुवर ॥ टे० ॥
देख-देख तुझको गद्-गद् जाऊं।
पावे न वस्तु कोई क्या मैं चढ़ाऊँ ॥
सतगुरु दुर्लभ रहे विराज, कैसा आनंद का दिन आज ॥ १ ॥
करके कृपा हमको दर्श दिखाये।
फूला न समाये अंग हिय हुलसाये ॥
प्रभु करुणा के भंडार आये पहली-पहली बार ॥ २ ॥

सोहनी सूरत अरु मन मोहने वाले।
जीवों के खोले हृदय गत ताले॥
सम्यक ज्ञान के पिटार, सतगुरु निर्भय गर्जन हार॥ ३॥

ब्रह्मविद्या है रानी थारी, ब्रह्मविचार बालक पुत्री-निर्वैरिता
सब का तूं पालक,
तेरा अनोखा परिवार, तूं है मेरा एक आधार॥ ४॥

परम पिता मेरा भव से निराला।
भारत में कर दिया ज्ञान का उजाला॥
सब दुःखियों के हितकार, करते भव से नैया पार॥ ५॥

"नारायण" चरणन बलिहारी, "स्वामी चेतन" धन महिमा तुम्हारी।
तेरे चरणों में पुकार-पुकार, दे दो भक्ति प्रेम अपार॥ ६॥

—:०:—

चौपाई

भजन—८५

बहनों यह भवन निराला है॥ टे०॥

जो यहाँ बड़े प्रेम से आता, बन जाता मतवाला है॥ १॥
यहाँ अनुकम्पा श्री सतगुरु की, यहाँ न किसी का दिल काला है॥ २॥
शान्ति भवन ये शान्त स्वयं ही, और शान्ति सिखाने वाला है॥ ३॥
अज्ञान अंधेर जाता पल में, होता ज्ञान उजाला है॥ ४॥
श्री सतगुरुजी अनुकम्पा करके, दुःखियों का दुःख टाला है॥ ५॥
जो सतगुरु आज्ञा में चलता है, वो आत्म धन वाला है॥ ६॥
ज्ञान का प्याला मिलता यहाँ पर, "स्वामी चेतन" देने वाला है॥ ७॥
"श्री नारायण" ऐसा प्याला, पाता भागों वाला है॥ ८॥
बहनों यह भवन निराला है।

—:०:—

भजन–८६

तर्ज—जब पूर्ण सतगुरु देव मिले .... ।

बलिहार सभी गुरु बहनों (भाईयों) को जिन गुरु दरबार सजाया है।
दूर-दूर से आकर के सेवा का लाभ उठाया है॥ टे०॥
आशा की गुलामी हटती यहाँ, भावों की सलामी लगती है।
सच्ची आजादी मिलती यहाँ, नहीं मिलती काया माया है॥ १॥
श्री शान्ति भवन में हाट लगी है, कीमत वाले लालों की।
लूटो सब ही भाई बहनों, यह समय अलौकिक आया है॥ २॥
जीवन का उत्तम लाभ मिले, इस परम निराले तीरथ में।
वह सद्गुण भर कर ले जाता, जो श्रद्धा की झोली लाया है॥ ३॥
पूज्यपाद दादा गुरु ने, अति यत्न दया बरसायी है।
हृदय की तपत बुझा करके, निज चरणों में बिठलाया है॥ ४॥
"स्वामी चेतन" हरि श्री गुरु मेरे, जो बाग निराला लगाय गये।
कहे "नारायण" है धन्य वही, जिन गुरु वाणी को कमाया है॥ ५॥

—:०:—

भजन–८७

यदि धनपति धन निधि बनना है, तो ऐसी दीवाली मना लेना।
यदि सुखभरी नींद में सोना है, तो ऐसी दीवाली मना लेना॥ टे०॥
हम नित्य दीवाली मनाते हैं, पर शांति कभी ना पाते हैं।
अब ज्ञान दीवाली मना करके, आत्म ज्योति जला लेना॥ १॥
हम सदा मिठाई खाते हैं, लाखों ही कष्ट उठाते हैं।
अब ब्राह्मी मिठाई खा करके, तृप्ति आनंद बढ़ा लेना॥ २॥

हम जम का दीप जलाते हैं, जन्मों का बीज बढ़ाते हैं।
जब जम का दीप बुझाकर, जन्मों का बीज जला देना ॥ ३ ॥
हम धन तेरस पर दीवाने हैं, असली धन से अनजाने हैं।
देह टीले में आत्मधन है, सतगुरु बैठे अब ले लेना ॥ ४ ॥
विचार कुदाली लेकर के, पंच कोशन को छेदन करके।
तीनों पर्दों को उठा करके, निज आत्म दर्शन कर लेना ॥ ५ ॥
अब सुस्त न बनो प्यारी बहनों, सतगुरु से राज्य मिल्यो अपनो।
यह संसार सभी सपनों, अब इसकी प्रीत हटा देना ॥ ६ ॥
शील, शर्म, श्रद्धा पहनों, यो ही तो है प्यारो गहनो।
अब यह शृंगार करो बहनों, देह का शृंगार हटा देना ॥ ७ ॥
"श्री नारायण" कुछ ख्याल करो, "स्वामी चेतन" को हृदय में धरो।
दिल दया नैन नीचे करके, तन मन की अकड़ ठुकरा देना ॥ ८ ॥

—:०:—

भजन—८८

बहनो बावलो संसार। रूप चौदस मनाय रह यो, कर-करके शृंगार ॥ टेर ॥
उबटनो लगाय के थे आयी सत्संग माय, रूप चौदस मनाय के थे फूल रही मन माँय।
पर मन में मैल अपार, उबटनो लीप क्युं तन पर कियो भार ॥ १ ॥ टे० ॥
अपनो आत्मरूप सुंदरताई को आगार, आत्मरूप से ही सुंदर लग रहो संसार।
बहनों कुछ तो करो विचार, भक्ति प्रेम ज्ञान का तुम करो शृंगार ॥ २ ॥
बुरो मत मानियो म्हें साँची कहवाँ बात, अब क्यूं डोलो हुई बहनो ज्ञान प्रभात।
मत करो समय बेकार, पूरे सतगुरु मिल गये अब तो करो विचार ॥ ३ ॥

"श्री नारायण" प्यारी बहनों छोड़ दो गुमान, यो तो रूप जल जावे बीच शमशान।
करो आत्म की पहचान, निज रूप को दर्शावें "स्वामी चेतन" भगवान ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—८९

सब प्रेम से मनावो, अनुपम दीवाली आई।
आनन्द गीत गावो, प्यारी दीवाली आई ॥ टेर ॥
सम दम की झाड़ू लेके, विक्षेप धूल बुहारो।
जन्मों का मैल भरा है, इसकी करो सफ़ाई ॥ १ ॥
अंतःकरण भवन में रंग प्रेम का लगावो।
मुदिता दया क्षमा से, दिल की करो सजाई ॥ २ ॥
जीवन दूषित पुराना, इसको नया बनाना -२-।
घस-घस उतारो मलकर, आसक्ति की चिकनाई ॥ ३ ॥
आनंद के हों लड्डू, नम्र भाव की जलेबी।
समदृष्टि का कलाकंद, धीरज की बर्फी जमाई ॥ ४ ॥
मिठाई निराली न्यारी, गुरुदेव ने बनाई।
रुच-रुच के खा लो बहनों, घटती नहीं मिठाई ॥ ५ ॥
साधन सभी हैं दीपक, जग स्नेह तेल डालो।
हैं कामनायें बत्तियाँ, जल जाय तब बड़ाई ॥ ६ ॥
जितनी हो इच्छा मन की, बनवालो तुम मिठाई।
पैसे नहीं लगेंगे, गुरुदेव हैं हलवाई ॥ ७ ॥
आत्म स्वरूप लक्ष्मी, पूजन करो उसी का।
फिर ज्ञान दीप जला लो, अज्ञान तम नसाई ॥ ८ ॥

कुल लाजके पटाके, सब धरणी बीच डारो।
प्यारे गुरु चरण में, निर्भय हो सदा ही ॥ ७ ॥
है द्वैत का दिवाला, जिसने जन्मों में डाला।
ये ही है भारी ज्वाला, इसकी करो बिदाई ॥ १० ॥
मेरे प्रभु "नारायण" "चेतन" प्रभु के प्यारे।
"चेतन" ही बनके बहनों, ऐसी दीवाली गाई ॥ ११ ॥

—:०:—

भजन—९०

हमने ये दीवाली मनायी है, अद्भुत ही पदवी पाई है।
यह घड़ी सुहावन आई है, महिमा वर्णी न जाई है ॥ टे० ॥
सन्मुख गुरुदेव विराजे हैं, जो शाहनशाह के राजे हैं।
दर्शन करने सब देव खड़े, और श्याम घटा झुक आई है ॥ १ ॥
भाव का भोग लगा करके, श्रद्धा की माला पहना करके।
अब प्रेम से तुम पूजन करलो, पुण्यों ने दया बर्षाई है ॥ २ ॥
हृदय सिंहासन पर बहनों, बैठा लो प्यारे सतगुरु को।
तन मन की सब हंगता ममता, गुरु गोद में भेंट चढ़ाई है ॥ ३ ॥
खो गये द्वन्द और दुःख भारी, निज आत्म मणी को पाकर के।
अज्ञान अंधेरी रैन गई, गुरुदेव ने मौज बनाई है ॥ ४ ॥
धैर्य पिता क्षमा जननी, समता क्षमता मुदिता बहनें।
ऐसे परिवार को ले करके, ज्ञान दीवाली मनाई है ॥ ५ ॥
बहनों अविनाशी धन पाया, जो नाश कभी ना हो सकता।
आज गरीबी हटी सारी, तब सबको हांसी आई है ॥ ६ ॥

"स्वामी चेतन" अमर सुहाग दियो, ना देवी देव मनाना पड़े।
"नारायण" के सब दुःख मिटे, आनन्द अवस्था पाई है ॥ ६ ॥

—:o:—

भजन–९१

दुर्लभ पूजा कर लो, प्यारे गुरुदेव की।
अलौकिक पूजा कर लो निराले गुरुदेव की ॥ टे० ॥
जिस दिन की इन्तजारी, हमेशा करते थे।
वो आज दिन आया कृपा है गुरुदेव की ॥ १ ॥
बहनों ऐसी दीवाली भागों से आई है।
मीठी रस भरी मेवा चढ़ावो प्रेम भाव की ॥ २ ॥
श्रद्धा भक्ति की माला पहनाओ गुरुदेव को।
दुविधा उदासी मिटावो तन मन की ॥ ३ ॥
अजर अमर अविनाशी, आत्म धन पाया है।
आज सुख में गोते लगाये, कृपा है गुरुदेव की ॥ ४ ॥
"श्री नारायण" देवे सबको बधाई जी।
जय-जय-जय बोलो श्री "चेतन" प्रभु की ॥ ५ ॥

—:o:—

भजन–९२

आनंद का दिवस है. आ गई पूर्णिमा है -२-।
सब आस को मिटा दो, वे आस पूर्णिमा है ॥ टे० ॥

सत का बिछा के आसन, गुरुराज को बिठा लो -२- ।
साकार रूप दर्शन, करलो यह पूर्णिमा है ॥ १ ॥ टे० ॥
प्रेम धागा लेके, श्रद्धा के फूल पिरोये ।
करूँ भाव भेंट अर्पण, वे आस पूर्णिमा है ॥ २ ॥
गुरुवर हैं मेरे दाता, सद्विचार की है माता -२- ।
करलो इन्हीं से नाता, आनन्द पूर्णिमा है ॥ ३ ॥
चंदन चढ़ावो चित्त का, आनन्द हृदय में लेके -२- ।
जग से निराला पूजन, कर लो गुरु पूर्णिमा है ॥ ४ ॥
सतगुरु की महिमा भारी, गावो हे बहनों भाई ।
दो भेद सब मिटाई, दुर्लभ यह पूर्णिमा है ॥ ५ ॥
प्रेमी जनों का मिलना, होता कभी-कभी है -२- ।
कह दास भाग मेरे, धन्य-धन्य यह पूर्णिमा है ॥ ६ ॥
"स्वामी चेतन" प्रभु हमारे, सब पर दया बहाते ।
कहते "श्री नारायण", वे आस पूर्णिमा है ॥ ७ ॥

———

भजन—९३

सतगुरु ने दया वर्षाई, भोगों की प्रीत हटाई ।
गुरु ज्ञान की ज्योति जगाई, घट-घट की रात मिटाई ॥ टे० ॥
अविद्या होली का भस्म करी और सत्य प्रह्लाद बचाया ।
असुरों की भीड़ हटाई, घर-घर में खुशियां छाई ॥ १ ॥
आशा तृष्णा चिंता ममता, ज्ञान अग्नि से जलाई ।
विषयों की चिकनाई, मेटी तब शान्ति आई ॥ २ ॥

ऐसी होली खेलो बहनों, जो सतगुरु ने बतलाई।
मन की करो सफाई, त्यागो जग बीच बुराई ॥ ३ ॥
झूठे रंग से क्या खेलो, जो तन मन धन बर्बाद करे।
क्या कोई विपदा आई, क्यों व्रत कर देह सुखाई ॥ ४ ॥
सोचो क्यों मती बहाई, क्यों दानवता अपनाई ।४।
ऐसा नशा चढ़ाया गुरु ने, जो न उतरने वाला है।
प्रेम की भांग खिलाई, पैसा लग न पाई ॥ ५ ॥
"स्वामी चेतन" सतगुरु ने मन को पक्के रंग में रंग डाला।
कहे "नारायण" सुखदाई, हमने ये होली मनाई ॥ ६ ॥

भजन—९४

तर्ज—जीवन का भार ....। (विदाई गान)

जल्दी आना हे सतगुरुजी, तुम भरके दया निज नजरों में।
मेरी स्थिति पर कुछ चित्त रखना, तुम भरके दया निज नजरों में ॥ टेर ॥
अन्दर में स्थित होकर के, मेरी बाग डोर पकड़े रखना।
इस मन मन्दिर में आसन रखना, तुम भरके दया निज नजरों में ॥ १ ॥
कुछ देख मेरी नीची करनी, नहीं निठुर पना मन में लाना।
हरदम रखना करुणा दृष्टि, तुम भरके दया निज नजरों में ॥ २ ॥
तेरे चरणन में अद्भुत रस है, मैं भीना रहूँ ये वर देना।
दुनियां का मोह मिटा देना, तुम भरके दया निज नजरों में ॥ ३ ॥
सब ही हमको ठुकराते थे, एक तुम्हीं हृदय लगाते थे।
कब आओगे विश्वास भरो, तुम करके दया निज नजरों में ॥ ४ ॥

हे "नारायण" तुम मैहर करो, "चेतनता" तन मन में भर दो।
निर्भय होने का वर देना, तुम भरके दया निज नजरों में ॥ ५ ॥

— :o:—

भजन—९५

तर्ज—म्हारो हियो आज हुलसायो.........................।

म्हारी हियो आज दुःख पायो जी -२- ॥ टेर ॥
भव दुःख भंजक सतगुरु चाल्या, ओछा भाग्य हमारा जी ॥ १ ॥
प्रेमी-प्रेमी संग में चाल्या, अप्रेमी रोता रह गया जी ॥ २ ॥
तुम तो सतगुरु समदृष्टि हो, करके दया बेगा आयो जी ॥ ३ ॥
मोह हंता थे क्रोध विनाशक, हे प्रभु मत ना जाओ जी ॥ ४ ॥
हे जगतारण प्रभुजी हमारे, देना दया को सहारो जी ॥ ५ ॥
मर्जी तुम्हारी ठाढ़ी प्रभुजी, चलता न जोर हमारा जी ॥ ६ ॥
दास की टेर सुनो मेरे दाता, पुत्रां न भूल न जायो जी ॥ ७ ॥
"नारायण" जग "चेतन" कीन्हा, म्हें क्यूं ना अपनायो जी ॥ ८ ॥
म्हारो हियो आज दुःख पायो जी।

—:o —

भजन—९६

तर्ज—मैंने लाखों के बोल............ ... ...।

अब हो रहा है अंधियार, प्रेम को जाने बिना ॥ टे० ॥
मेरे चल दिये गुरुदेव, प्रेम को जाने बिना ॥ टेर ॥

प्रेमी होवूँ तो बाँध दिखाऊँ, नहीं रहते दिलदार ॥ १ ॥
सेवक होवूं तो पल नहीं छोड़ूँ, साधन बिन अँधियार ॥ २ ॥
भक्त होवूं तो संग चल जाऊँ, नहीं सेवा हकदार ॥ ३ ॥
परम दयानिधि प्रेम के भूखे, कोई देवो जी प्रेम उधार ॥ ४ ॥
ज्ञानी अमानी सब तेरा संग चाहे, फिर मैं तो निपट गँवार ॥ ५ ॥
गणिका गीध उबारे तुमने, मुझको भी लेवो उबार ॥ ६ ॥
हे दुःखहारी मेरे प्रभुजी, जल्दी ही देना दीदार ॥ ७ ॥
हाथ जोड़ कर करे विंनती, तूं रखना मेरी संभार ॥ ८ ॥
"नारायण" "चेतन" में समावाँ, टूटे ना वृति हमार ॥ ९ ॥
अब हो रहा ... ... जाने बिना।

—:०:—

भजन—९७

तर्ज—मैं मुझमें ही गुमा था.............................।

गुरुदेव मेरे बिछुड़ेंगे, यह मालूम न था।
कुछ दिन ही यहाँ ठहरेंगे, यह मालूम न था ॥ टे० ॥
माना बहुत आनंद मन में, प्रभु आ गये।
ये छोड़ चलेंगे पल में ही, यह मालूम न था ॥ १ ॥
खुशी-खुशी प्रभु दर्शन मैंने, तेरे पाये थे।
ये गम के दिन भी आयेंगे, हमें मालूम न था ॥ २ ॥
करुणा रतन करुणा सदन, करुणा के दाता हो।
तरसा चलोगे दासों को, यह मालूम न था। ॥ ३ ॥

"चेतन" हुआ तन मन मेरा, तव पद पखार कर।
गुरु चरण भी बिछुड़ेंगे, यह मालूम न था ॥ ४ ॥
कहे "नारायण" गुरुदेव, मुझको घर बैठे पाये।
है धन्य मेरा सौभाग्य, मुझे मालूम न था ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१८

तर्ज—छोड़ बाबुल का घर...................... ।

छोड़ तेरे वचन हैं ये आधीन तन, प्रभु जाना पड़े, ओ ओ जाना पड़े ॥ टेर॥
जब तक न आये आशा लगाता था मैं, हाँ लगाता था मैं।
संग रहने की चाहना करता था मैं ॥
भाग छोटे मगर, कैसे होवे गुजर, आज जाना पड़े ॥ १॥
एक तेरा ही तेरा सहारा मुझे, हाँ सहारा मुझे। जग में जानूं प्रभु, मैं किनारा तुझे॥
है सकरी डगर, रखना मुझपै नजर, आज जाना पड़े ॥ २ ॥
वाच्य अर्थ के असंगी हो तुम। शीतल प्यारे दयालु की महिमा अगम॥
प्रभु मेरे रत्न, इस जीवन के धन, आज जाना पड़े ॥ ३ ॥
बैराग्य सहित विवेकी हो तुम, हाँ विवेकी हो तुम। करदो-करदो दया प्रभु चाहते हैं हम॥
"नारायण" तूं धन्य, "चेतन" के रत्न, आज जाना पड़े ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन–९९

तर्ज–जब पूर्ण सतगुरु.......... ....।

जाती हुई हे गुरु बहनों जरा, यह भी बतला के जाना।
कब तक पुनीत चरणों का दर्शन, देवोगी हे पूज्य बहनों ॥ टे० ॥
दीनों को दर्शन दे करके, कितना प्रफुल्लित दास किया।
कितने ही मनों को हर्षाकर, अब दुःखित हमें क्योंकर दीन्हा ॥ १ ॥
किस प्रेम व युक्ति से बाँधू' हम हैं अजान कुछ नहीं जाना।
तुम करके दया इन दासों को, निज प्रेम पिटारी दे जाना ॥ २ ॥
कुछ दिन तो बहनों रुक जावो, तुम हो ज्ञानी मत ना जावो।
संगत को मत ना तरसाओ, कहो इतना क्या है निष्ठुर होना ॥ ३ ॥
तव महिमा जग से न्यारी है, यह दास कवन विधी से गावे।
जो चूक हुई माफी देना, जल्दी प्यारी छवि दिखलाना ॥ ४ ॥
"नारायण" लीला विस्तारी, दुविधा सभी हरी म्हारी।
हे बहनों फिर भी दया करके, "चेतन करने हमको आना ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन–१००

तर्ज—चौपाई............................।

परम दयालु हे भगवाना। करके दया टुक जल्दी आना ॥ टे० ॥
कोमल चित्त तव परम उदारा। मुझ बालक के हो रखवारा ॥ १ ॥
हे मेरे अतिशय गुरु प्यारे। छीन चले निज चरण दुलारे ॥ २ ॥
दिल रोता गुरु जावो नाहीं। कोई नहीं मेरा जग माँहीं ॥ ३ ॥

मां बिन बालक रोवे भारी। भावे न कोई जगत मंझारी ॥ ४ ॥
मूर्ख मन तूं सांचा न रोता। प्रभु के दिल पर असर न होता ॥ ५ ॥
तेरे चरणों में मनवाँ राँचा। रोकत रोकत-होवत काँचा ॥ ६ ॥
देख-देख तोहे हम बिगसाते। छोड़ चले क्यों तरस न खाते ॥ ७ ॥
नहीं कपट नहीं चतुराई। हम भोले मन नीर बहाई ॥ ८ ॥
अति डर पाऊँ बहुँ शरमाऊँ। मन नहीं माने अटसट गाऊँ ॥ ९ ॥
मोह ममता मेरो सकल मिटाओ। जाते प्रभु तुम वेगा आओ ॥ १० ॥
भव रंग मन में चढ़े न कोई। ये ही दया रखना गुरुराई ॥ ११ ॥
बैठे इकत में भूल न जाना। हे मेरे निर्मोही भगवाना ॥ १२ ॥
समदृष्टि प्रभु क़ान्ति तिहारी। विषम दृष्टि कहो अब क्यों धारी ॥ १३ ॥
तुम नवनीत सुहृद हो साँचे। दीन-हीन हम दया बिन बाँचे ॥ १४ ॥
तुम रक्षक प्रभु एक हमारा। तव गुण गाऊँ हे रखवारा ॥ १५ ॥
जावत देख मेरे गुणखानी। रोकत-रोकत आवत पानी ॥ १६ ॥
अनुभव अमृत हमको पिलाते। न जावो न जावो तुम बड़े भाते ॥ १७ ॥
तुम हो विवेकी भूप अनूपा। हृदय कोमल वेद निरुपा ॥ १८ ॥
ध्यान न दीजो हे गुरु मेरे। भावुक दास जो गावे तेरे ॥ १९ ॥
क्षमा करहुं हे गुरुवर मोरा। जानके प्रभु छोटा शिशु तोरा ॥ २० ॥
रखना दया मुझपर प्रभु ऐसी। शिशु बालक पर मां की जैसी ॥ २१ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु परम दयाधारी। "नारायण" करुणा अवतारी ॥ २२ ॥

—:०:—

भजन—१०१ (मन पर)

तर्ज—ढूंढो-ढूंढो रे..................।

ढूंढो-ढूंढो रे मनवाँ, ढूंढो रे मनवाँ। तेरा औ रूप निराला ॥ टे० ॥

रूप निराला औ बड़ा चमक वाला रे।

वह रहता कण-कण में -२-। पर छिपने वाला ॥ १ ॥

है सब में रहने वाला, वो फिर भी ना पाये रे।

वो राम पावे चाम में -२-। लगा पर ताला ॥ २ ॥

औ ताला खोलेगा भागों वाला रे।

त्याग विषयों की प्रीत -२-। संभल भोला-भाला ॥ ३ ॥

औ ताला खोलेगा, गुरु प्यारा रे।

हां संत सेवा करके -२-। हो जा माला-माला ॥ ४ ॥

कहे "नारायण" मनुष्य तन दुर्लभ रे।

त्याग विषयों की नींद -२-। न बन मतवाला ॥ ५ ॥

—:o:—

भजन–१०१

तर्ज –ढूंढो-ढूंढा रे ··· ······· ······।

पीले-पीले रे मनवाँ, पीले रे मनवाँ, प्रभु प्रेम रस प्याला।

प्रभु प्रेम रस प्याला, ये अमर करने वाला रे॥

पर पावे कोई-कोई, जो बड़े भागों वाला ॥ टेर ॥

प्रभु है दयालु, मना बड़े दुर्लभ रे।

कर गुरु पद की प्रीत, हो जा मतवाला ॥ १ ॥

मतवाला गुरु का बनो चेरा रे।

छोड़ मन के विकार -२- और भेद दुई वाला ॥ २ ॥

"स्वामी चेतन" सतगुरु का सदा ही रटो नामा रे।

कहे "नारायण" पुकार, पीले प्रेम प्याला ॥ ३ ॥

—:o:—

भजन—१०३

टेर—जरा सामने तो आओ प्रभु जी···· ·· ···· ····।

जागो-जागो रे गाफिल मनवां, विषयों में सुख नहीं लेश है।
सुखरूप तेरी एक आत्मा, क्यों भटके देश विदेश है ॥ टे० ॥

सुखखानी को छोड़कर मनवां, सुखी कभी ना हो सकता।
दुःख देहों में प्रीत लगाके, शांति कभी ना पा सकता ॥
यह सतगुरु की मानों बात है, दिया ज्ञान हुआ प्रभात है ॥ १ ॥

अनादि काल भरमते हो गये, अब तुझे मानव देह मिली।
करके कदर निज कर्त्तव्य को पूरा, क्यों मति है विषयों हिली ॥
तोहे लाज नहीं मन आत है, तेरा औसर बीता जात है ॥ २ ॥

ऊँचा से ऊँचा रूप मेरा, पर तेरे कारण दीन हुआ।
एक-एक वस्तु वर्णी न जाये, जिस पर तूं ने मोह किया ॥
क्यों माने न मेरी बात है, तूं करता आत्मघात है ॥ ३ ॥

"नारायण" कहे हैं स्वयं प्रभु, "चेतन" का तुम ध्यान धरो।
अब मनवां ढूंढो अंतर में, अधिक न विषयों में विहरो ॥
फिर आप ही आप लखात है, आनन्द की हो बरसात है ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१०४

ठग नगरी का जाल है बिछा, जागरे मनवा क्यूं बेहोश सो रहा ॥ टेर ॥
पर की देह का बना अभिमानी, पाके रतन तूने कीमत न जानी।
बेइमानों का भी, बेइमान हो रहा ॥ १ ॥
मेरी शक्ति ले तूं मुझको सतावे, अपने आधीन सारे काम कराये।
ऐसा जुल्म क्यों, तूं हाय कर रहा ॥ २ ॥

बनके हरामी मुख्य काम को बिसारे, काम क्रोध लोभ मोह सेना के सहारे ॥
पंच विषयों का, क्यों दास हो रहा ॥ ३ ॥
अहंभाव तुझे बहुत पिटावे, अरूपी शब्द सुन देह बन जावे।
होश नहीं आवे, क्यों थकित हो रहा ॥ ४ ॥
"नारायण" जप सदा पियारे, "स्वामी चेतन" सब के रखवारे।
सर्व रूप तूं अरे दीन क्यों हो रहा,
है तूं असीम क्यों ससीम हो रहा है ॥ ५ ॥

—:o—

भजन–१०५

दौड़ लगाले खुब भरमाले -२-।
रे ठोकर खाकर भी, गुरा की सीख मानेगा ॥ टे० ॥
सुख रूप होके, विषयों में धावे -२-।
उन विषयों के बदले, चौरासी धक्के खावेगा ॥ १ ॥
निज रूप भूले, तब दुःख पावे -२-।
पर देह को अपनी मान, रोना ही हाथ आयेगा ॥ २ ॥
मान देह अपनी सुख बहु खोजे -२-।
उस सुख में हो हानी, तो झट से क्रोध आयेगा ॥ ३ ॥
पर की देह में कैसा फंस गया -२-।
तूं जरा तो सोच विचार, हाथ तेरे कुछ न आयेगा ॥ ४ ॥
घोर कलियुग में जप "स्वामी चेतन" -२-।
कहे "नारायण" करतार सहज मुक्ति तूं पावेगा ॥ ५ ॥

भजन—१०६

तर्ज—मन रे उधो..................

मन अपमान बड़ा सुखदाई ॥ टेर ॥
जग से साँचा जोगी बनाके, देता राम मिलाई ॥ १ ॥
मंद वैराग्य को दृढ़ कर देते, भ्रात पिता अरु भाई ॥ २ ॥
ज्यों-ज्यों कुवाक्यों की बारिश होवे, आवे सहन शीलताई ॥ ३ ॥
जन-जन की ठोकर से निकले, इस चित्त की अकड़ाई ॥ ४ ॥
आशा तृष्णा ममता निबारे, सत्संग प्रीत बढ़ाई ॥ ५ ॥
समदम का गहना पहराके, दे बैराग्य दृढ़ाई ॥ ६ ॥
"स्वामी चेतन" हरि पाके, जग में शोभा बढ़ाई ॥ ७ ॥
कहे "नारायण" सहले निरादर, सहज मुक्त हो जाई ॥ ८ ॥

—:०:—

भजन—१०७

मन अभिमान बड़ो दुःखदाई ॥ टे० ॥
शुभ गुण की क्यारी बिनशावे, धन यौवन अकड़ाई ॥ १ ॥
वाणी का मीठापन खोवे, विनय विवेक नसाई ॥ २ ॥
आप समान गिने ना किनहु, जन-जन चित्त जलाई ॥ ३ ॥
अभिमानी पर विपदा आवे, कोई न होत सहाई ॥ ४ ॥
रावण कंस बने अभिमानी, जग में लीनी बुराई ॥ ५ ॥
कल्पित वस्तु पर प्यारे मनवा, काहे करे गुम्हराई ॥ ६ ॥
"नारायण" अभिमान तजे बिन, किनहु न मुक्ति पाई ॥ ७ ॥
"चेतन" में निज वृति जमाले, जन्म मरन मिट जाई ॥ ८ ॥

भजन–१०८

बहनों भक्ति स भरल्यो ऐ, थारी मन की गगरी।
मन की गगरी हे, बहनों भरल्यो सगरी ॥ टेर ॥
तूं मत सोच भूला बन्दा उमर भोत घनी।
लाभ लूट ले जग में आके मत खो स्वांस मणी ॥
अब तो मत ना लादो हे, पापा की गठरी ॥ १ ॥
आपा मेंट गुरु चरण में, मन की मरजी छोड़।
सतगुरु के सन्मुख हो करके दुनियां से दिल तोड़ ॥
करले-करले हे सतगुरु से साँची प्रीती गहरी ॥ २ ॥
जग का झूठा नाता सारा, साँचो संगी राम।
तार नाम को टूटन मत दे, भजले आठो याम ॥
रंगल्यो-रंगल्यो हे हरि के रंग मन की चुनरी ॥ ३ ॥
कहे "नारायण" आजा प्यारे गुरु चरणन की छाया।
"स्वामी चेतन" हरि ज्ञान लुटावे ले ले अवसर आया ॥
करल्यो-करल्यो हें सफल थारी काया नगरी ॥ ४ ॥

——

भजन–१०९

तूं जिसमें सुख खोजे, वे जूते मार रहे।
तूं जूते खाकर भी उन्हीं में दौड़ रहा ॥ टेर ॥
ऐसा नटकापन मनवाँ, तूं ने क्यों धार लिया।
देह संबंधी अपने मान, जीवन क्यों खो रहा ॥ १ ॥

इस स्वार्थ की दुनियां में, कोई नहीं अपना मीत।
अनहित कर दुनियां में सारी, समय क्यों खोय रहा ॥ २ ॥
एक निःस्वार्थ गुरुदेव, साँचे हितकारी हैं।
देख मना सतगुरुजी, करते कितनी दया ॥ ३ ॥
इस छोटे से ढाँचे में, विराट समाया है।
है तूं ही सब का द्रष्टा, सब में तूं चटक रहा ॥ ४ ॥
मुझे जान न पाया कोई, सतगुरु ने जान लिया।
अब सुनले बहरा मनवाँ, कितना उपकार किया ॥ ५ ॥
अब पुरुषार्थ को करके, जीवन को असली बना।
सतगुरु का बनकर दासा, साँची तूं भक्ति कमा ॥ ६ ॥
कहे "नारायण" इस जग में, सुख लेश नहीं।
"स्वामी चेतन" सतगुरु पाके पाना कुछ शेष नहीं ॥ ७ ॥

—:o:—

भजन—११०

मन गुरु गायन गाया करो रे। साँझ सवेरे ध्याया करो रे ॥ टेर ॥
मन गुरु वाणी कमाया करो रे। अपनी लगन को बढ़ाया करो रे ॥ १ ॥
मन गुरु दर्शन को जल्दी चलो रे। लोग हँसे चाहे डाँट पड़े रे ॥ २ ॥
दूर बसे गुरु को ध्याया करो रे। भाव के फूल चढ़ाया करो रे ॥ ३ ॥
मन गुरु सेवा कमाया करो रे। चरण कमल चित्त राख्या करो रे ॥ ४ ॥
अपनी भक्ति से कोई राजी न होवे। तो अपने ही चित्त को दूराया करो रे ॥ ५ ॥
मन गुरु सुने या न सुने तेरी। तूं अपनी टेक निभाया करो रे ॥ ६ ॥
साँचो ही तेरो प्रेम नहीं मन। गुरुजी का इसमें दोष कहाँ रे ॥ ७ ॥
पराधीन है तन रोया करो रे। रो-रो नीर बहाया करो रे ॥ ८ ॥

प्रभु से प्रीत निभानी है ओखी। चेत करो मत सोया करो रे ॥ ६ ॥
गुरु सेवा जो हांसिल हो करनी। तो तन मन सुध बिसराया करो रे ॥ १० ॥
एक-एक स्वांस बड़ा अनमोला। तूं कीमत पल-पल की नापा करो रे ॥ ११ ॥
सतगुरु अपने बनाने हैं ओखे। प्रेमी हूँ मान न फूला करो रे ॥ १२ ॥
"नारायण" प्रभु सर्वत्र निवासी। व्यापक वृति बनाया करो रे ॥ १३ ॥

—:०:—

भजन-१११

प्रभु चरणों में मन प्यारे, अपनी प्रीत करो ॥ टे० ॥
जब तक प्राणों में ममता है, वो प्रभु का प्रेमी ना बनता है।
प्रभु चरण नैन के तारे, अपनी प्रीत करो ॥ १ ॥
जब तक प्रेमी की कमी है भाई, तब तक भेद रखते गुरुराई।
प्रभु हंस-हंस बोली मारे, अपनो प्रीत करो ॥ २ ॥
रे मन क्या फूला है फिरता, दिल का दर्द न प्रभु को लगता।
प्रभु को झूठ लगे भाव सारे, अपनी प्रीत करो ॥ ३ ॥
चलता-चलता क्यों गिर जाता, सच्चे दिल बिन प्रभु ना सुनता।
मन पल-पल विच क्यों हारे, अपनी प्रीत करो ॥ ४ ॥
श्री "नारायण" प्रभु है हितकारी,
"स्वामी चेतन" चरणों का पुजारी।
वो तेरे दुःखड़े टारे, अपनी प्रीत करो ॥ ५ ॥

भजन–११२

तर्ज—चल उड़ जा रे पंछी………………………।

तूं जाग जा मनवाँ, चाहे भव से पार उतरना ॥ टे० ॥
ठग नगरी का जाल है भारी, बड़ी-बड़ी विपदा आवे।
चंचलता को दूर हटा दे, क्यों तूं चक्कर खावे ॥
अंतर्मुखी हो पीले महारस, जो चाहे सुख पाना ॥ १ ॥
विषयों की बातें भी बुरी हैं, यह तूं जान ले भाई।
जो उसका चिंतन हो जाये, धन अनमोल बहाई ॥
जो विषयों में फंस जावेगा, होवे कष्ट महाना ॥ २ ॥
विघ्न अनेकों माया डाले रे, मन तूं भय मत खा।
अनहित जान के उन विघ्नों को, अपना काम किये जा ॥
दुर्लभ सतगुरु मिल गये तुझको, हुआ महा कल्याणा ॥ ३ ॥
"नारायण-नारायण" भज ले जगदीश सहाई।
"स्वामी चेतन" सब में व्यापक तूं, तूं ही बाप तूं भाई ॥
गुरु का ज्ञान दृढ़ावेगा जब, नशे भर्म अज्ञाना ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन–११३

ओ मन तेरे धोखे में कोई न आये ॥ टेर ॥
तूं विश्वास का घाती रे मन, नीचा ही काम करावे।
सुध अपनी सारी बिसरा कर, सबका मर्म दुःखावे ॥ १ ॥
तुझमें अवगुण इतने भरे हैं, जिनका पार न पावे।
उन अवगुणों को दूर करो मन, सतगुरु नित समझावे ॥ २ ॥

ऐसे दयालु सतगुरु मेरे, जाकी महिमा वर्णी न जावे।
निज आत्मा का ध्यान हमारा, सब दुःख द्वन्द मिटावे ॥ ३ ॥
"नारायण" "चेतन" भज प्यारे, सब विक्षेप नसावे ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—११४

जिन्होंने मार मन डाला, उन्हीं को सूरमा कहना।
बड़ा बैरी ये मन घट में, इसी को जीतना कठिना ॥ टे० ॥
पड़ो तुम इसी के पीछे, और सब ही यत्न तजना ॥ १ ॥
मन विश्वास घाती है, न इसकी राह में चलना ॥ २ ॥
मिटे खट पट जभी इसकी, तभी अनुभव का हो बढ़ना ॥ ३ ॥
तभी जीवन सफल होवे, बने जब दास यह अपना ॥ ४ ॥
चलो बस राह अपनी पर, न इसकी राह पर चलना ॥ ५ ॥
निज पुरुषार्थ शक्ति से, इसे बस में सदा करना ॥ ६ ॥
जो मन जीते वही योगी, उन्हीं को धन्य-धन्य कहना ॥ ७ ॥
वही प्रसन्न रहते हैं, जिन्हें कुछ बोध हो अपना ॥ ८ ॥
जो "नारायण" प्रभु "चेतन" भजो, मन वासना तजना ॥ ९ ॥

—:०:—

भजन—११५

तर्ज—मै र दिवानी राम.......................।

मैं देह हूँ यह भाव मिटे बिन, सुख नहीं पावे रे।
सुख नहीं पावे रे मना तूं, सुख नहीं पावे रे ॥ टेर ॥

मैं देहू हूँ यह मान कर, लख योनि पायो रे।
याके पीछे भयो बावरे, हीरो गँवायो रे ॥ १ ॥
हीरो गँवायो वापस ले ले, अवसर आयो रे।
मैं देह नहीं यह भाव जमा ले, तब सुख पावे रे ॥ २ ॥
असली रूप को जानत नाहीं, दर-दर भटक्यो रे।
निज स्वरूप को भूल गयो तूं, इस देह के पीछे रे ॥ ३ ॥
"नारायण" "चेतन" गुरु मेरो, भर्म भगायो रे।
दीन दयालु मिले गुरु पूरे, अलख लखायो रे ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—११६

तर्ज—जरा प्रेम भरो जी........................।

श्री सतगुरु जी के चरणों में, श्रद्धा और प्रेम बढ़ा मनवां।
जिससे जीवन हो सफल तेरा, और चौरासी में नहीं जावां ॥ टेर ॥
श्रद्धा की बेल बढ़े जबहिं, तबही निश्चात्मक ज्ञान बढ़े।
इससे हृदय को शुद्ध करके, गुरु चरणों में प्रेम बढ़ा मनवां ॥ १ ॥
इस स्वार्थ की दुनियां में भला, सुख शान्ति का है वास कहाँ।
सुख शान्ति का घर सत्संग है, नित उससे प्रेम बढ़ा मनवां ॥ २ ॥
भौतिक उन्नति के पीछे, हीरा-सा जन्म विगोयं रहा।
झूठे जग में तुझे क्या मिला, रोना ही रोना मिला मनवां ॥ ३ ॥
अब इस कलियुग में हे बहनों, "नारायण" "चेतन" पाये हैं।
इस गहरे सत्संग तीर्थ में, अब डुबकी मार नहा मनवां ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन–११७

जिस दिल में प्रभु का प्यार नहीं, उसने इस जग में क्या किया है।
बुराई के सिवा उसने जग में, परलोक के हेतु क्या किया है॥ टेर॥
भाई भी मिले बन्धु भी मिले, माता भी मिली नारी भी मिली।
धन धाम मिला गजबाज मिला, और जीवन की कलियाँ भी खिली॥
पर एक प्रभु न मिला जिसको, तो जग में उसको क्या मिला है॥ १॥
निज तन के लिये भी रोये बहुत, और नारी हित भी नैन झरे।
पति पुत्र सभी हित भी रोये, और धन के लिये भी नैन भरे॥
पर प्रभु के प्रेम में भींगे नहीं, तो नैनों को पाके क्या किया है॥ २॥
सर्दी भी सही, गर्मी भी सही, ताने भी सहे बोली भी सही।
परिवार के लिये भोले मानव, क्या बाकी है जो सहा है नहीं॥
पर प्रभु के लिये न एक शब्द सहा, तो जग में उसने क्या सहा है॥ ३॥
राजा प्रजा दोस्तों की खुशी, लेने के लिये हैरान हुआ।
श्री "नारायण" कहे ओ मानव, जन-जन को रिझाने विरान हुआ॥
पर प्रभु न रिझाया गया जिससे, तो सबको रिझाके क्या लिया है॥ ४॥

- :• —

भजन–११८

दैवी गुण अपनाकर बहनों, जीवन सफल बनाओ।
समता को अपनाकर बहनों, राम राज्य फैलाओ॥ टे०॥
पत्थर जैसा दिल करके, दुःखियों का दिल मत तोड़ो।
निर्दयी बन कर छोटों बड़ों से, मुख कभी मत मोड़ो॥ १॥
प्यार भरे शब्दों से बहनों, सबको गले लगावो।

गप शप कभी न करना बहनों, सत्संग में आकर के।
मेरी साड़ी तेरी चूनड़ बात करो घर जाकर के॥
सद्गुण से हृदय को सजाकर ज्ञान सुगन्ध फैलावो॥ २॥
सुखदाई संतों के संग से, प्राणिमात्र सुख पाते हैं।
कुसंगत से बचकर मानव जीवन सफल बनाते हैं॥
संतों का संग करके बहनों प्रेम का रंग चढ़ावो॥ ३॥
"स्वामी चेतन" श्री सतगुरु मेरे सब को सुखी बनाते थे।
जिसको जग ठुकराता सतगुरु उसका मान बढ़ाते थे॥
कहे "नारायण" कर निर्मल मन गुरु की महिमा बढ़ावो॥ ४॥

भजन—११९

लावालूट-लावालूट बेला फेर न मिल।
फेर न मिल अवसर फेर ना मिल॥ टेर॥
यौवन अवसर बीत जायगो, गाफिल क्यूं फिर।
आव बुढ़ापो बैरी रसना फेर न हील॥ १॥
सतसंग की गंगा म न्हाले, पापां स तर।
गुरु चरण म सौदो भाई, नगदी मील॥ २॥
सिर पर काल खड़्या रे बन्दा क्यूं न चेतकर।
काल अचानक गलो दबासी, तेरी न चल॥ ३॥
सतगुरु "स्वामी चेतन" वर्षा, अमृत की कर।
कहे "नारायण" जागो जीवन ज्ञान स खील॥ ४॥

—:o:—

भजन-१२०

सुन्दर मानव तन पाकर के, विषयों में यौंही खो रहा है -२- ।
सोचा न जरा अपने मन में, दुनियां में आके क्या किया है -२- ॥
काया भी मिली माया भी मिली, बुद्धि भी मिली विद्या भी मिली।
अन्तर्यामी प्यारे प्रभु की, ऐसी अनुकम्पा श्रेष्ठ खिली ॥
फिर भी ना राम भजे प्राणी, दुनियां में दिल को दे रहा है -२- ।
वादा करके प्यारे प्रभु को, एक पल न कभी भी याद किया।
आशा तृष्णा की लहरों में, जीवन का दीप बुझा रहा है -२- ।
माया को अंधेरी रातों में, रोता है आँख नहीं खुलती।
पर बार-बार भूले प्राणी यह, मानव देह नहीं मिलती ॥
सुख के सब साधन पाकरके, ऐ गाफिल तू ने क्या किया है -२- ।
चूको न अभी भो अवसर है, निज आत्म रूप लखो प्यारे।
जो सच्चिदानन्द स्वयं ज्योति, उसमें ही रहो तुम मतवारे ॥
कहे "नारायण" "चेतन" भज ले, नरतन मुक्ति द्वार मिला है -२- ।

—:०:—

भजन-१२१

तर्ज—ज्ञान का फल....................................।

सुख-दुःख को समझो समान सजनी।
सुख दुःख दोनों संग रहते हैं, कभी आते हैं कभी जाते हैं।
इससे सब हैं हैरान सजनी ॥ १ ॥
सुख दुःख सबही पर आते हैं, बिजली की तरह छिप जाते हैं।
दुःख में मिलते भगवान सजनी ॥ २ ॥

कोई आता है कोई जाता है, स्थिर न किसी का नाता है।
है झूठा सारा जहान सजनी ॥ ३ ॥
कहे "नारायण" घबराना नहीं, "स्वामी चेतन" गुरु का ज्ञान यही।
सुख दुःख दोनों मेहमान सजनी ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१२२

क्यों भूल प्रभु को सोया रे -२- ।
देह विरानी पै मोहित होकर, आतम हीरा खोया रे ॥ क्यों० ॥
धन दारा से हेत करे क्यों, कोई न संगी होया रे ॥ क्यों० ॥
मोह मदिरा पीकर के गाफिल, काहे धर्म विगोया रे ॥ क्यों० ॥
साफ किया तन तेल फुलेल से, मन का मैल न धोया रे ॥ क्यों० ॥
हाड़ मांस का बना पींजरा, जिसमें मनवां फूला रे ॥ क्यों० ॥
श्री "नारायण" आत्म धन बिना, कोई सुखी नहीं होया रे ॥ क्यों० ॥

—:० —

भजन—१२३

(वैराग्य

दुनी फानी में अपना मन, जो देगा कष्ट पायेगा।
किसी के भय से अपना मन जो देगा कष्ट पायेगा ॥ टे० ॥
विषय विष से भी हैं खारे, हमेशा दुःख देते हैं।
इसी ज्वाला में अपना मन, जो देगा कष्ट पायेगा ॥ १ ॥
अति दुर्गंध के आगे, लगा है चाम का पड़दा।
इसी धोखे में अपना मन, जो देगा कष्ट पायेगा ॥ २ ॥

सभी अनुकूलता साथी, नहीं अपना सगा कोई।
मोह मिथ्या में अपना मन, जो देगा कष्ट पायेगा ॥ ३ ॥
अथिर सब वस्तु जग की है, नदी का वेग ज्यों प्यारे।
नित्य करने में अपना मन, जो देगा कष्ट पायेगा ॥ ४ ॥
तजो संशय की जड़ता को, लहो "चेतन" की दृढ़ता को।
बनोगे नर से नारायण, न फिर कोई सतावेगा ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१२४

तर्ज—तू ही मेरे मन्दिर ....।

जागो मुसाफिर, दुनियां में आके रहना नहीं है।
बहुत जन्म बीते, सोते मुसाफिर, वादा किया था, वादे से ना फिर।
समझ देख मन में, फूला क्यों धन में ॥ १ ॥ टे० ॥
राजा औतारी सभी चल दिये हैं। कोई यहां आ सदा न जीये हैं ॥
शमशान डेरा हो जाये तेरा ॥ २ ॥ रहना नहीं है।
किस में भरमाया, झूठा ये प्यार है। ममता का जाल है, जिसमें सार है ॥
करले कमाई, मानव देह पाई ॥ ३ ॥
कहे "नारायण" कहना तू मान ले। "स्वामी चेतन" से, निज रूप जान ले ॥
मिटे आवागमन, सफल करले तन मन ॥ ४ ॥
जागो मुसाफिर ... ...।

—:०:—

भजन—१२५

तर्ज—अगर कोई सत्संग ………………………।

अगर मन दुनियां से प्रीती करोगे, तो दुःख के आँसू बहाने पड़ेंगे॥ टेर॥
रोग भरे भव भोग हैं सारे, सुन्दर दर्शे विषैले हैं भारे।
दो दिन की रोशन को देख लुभोगे, तो नर्कों में दुःख उठाने पड़ेंगे॥ १॥
साथी संबंधी जो लगते हैं प्यारे, उनकी संगति मोह पसारे।
ममता की ओट ले जग में रमोगे, तो दर-दर के नालों में गिरते रहोगे॥ २॥
क्षण भर का जीवन, क्षण भर की लाली, क्षण भर का यौवन, क्षण भर की गाली।
दो दिन की इज़्जत के मानी बनोगे, तो खुद के ही जीवन को भ्रष्ट करोगे॥ ३॥
झूठा है नाता न कोई है अपना, काया को भी शमशानों में बसना।
मैल बिगाने पै जो तुम बिकोगे, व्यापक हो अणु रूप बनोगे॥ ४॥
"श्री चेतन" है जग का आधारा, "श्री नारायण" का सर्व पसारा।
जो निज आतम के इच्छुक बनोगे, तो अनुपम सुख और शान्ति लहोगे॥ ५॥

—:०:-

भजन—१२६

तर्ज—जीवन कांच का बाजा……………… ।

दिवाना क्यों बना प्यारे, सभी जग है मृष सपना।
बिगाना मैल है प्यारे, जिसे कहता है तूं अपना॥ टेर॥
सब बने-बने के भाई, नहीं, कोई किसी का सहाई।
दिल से देख विचार, सब स्वार्थ की पहुँनाई॥
दिखाते हैं मृषा ममता, इसी में भूल मत जाना॥ १॥

किस करता है गुमान, तू अकेला है इन्सान।
जरा अपनी खोज लगाले, तूं भजले भगवान॥
बुराई या भलाई ले है इक दिन तो अवश्य जाना॥ २॥
बनकर जन-जन का गुलाम, मूर्ख ढूंढे है आराम।
पुत्रों की इच्छा करके, करता खर को भी सलाम॥
सुख फिर भी नहीं मिलता, वृथा क्यों ठोकरें खाना॥ ३॥
"श्री नारायण" का कहना, जग में "चेतन" होके रहना।
किस पर तूं फूला फिरता, दिन चार का है रहना॥
गुजारा कर गरीबी से, निरा अभिमान क्या करना॥ ४॥

—:o:—

भजन—१२७

तर्ज—जो शीश हथेली पै रख न सके..................।

जो जग के पदार्थ थिर रहते तो, देखत-देखत जाते हैं क्यों।
जो चंचल पदारथ दुःख से भरे, कहो प्यारे मना तुझको भाते हैं क्यों॥ टेर॥
वह माया का झूठ पसारा है, कहो इसमें कौन तुम्हारा है।
यदि सम्बन्धी होते तेरे तो, छोड़ यहाँ पर जाते हैं क्यों॥ १॥
कुछ करके विवेक लखो मन में, नहीं तृप्ति कभी भव भोगन में।
यदि विषयन में ही रस होवे तो, भोगत भोग अघाते हैं क्यों॥ २॥
नहीं प्यार भरा तिय तन धन में, सुख भ्रान्ति लगी है निज मन में।
यदि विषयानन्द प्यारा होवे तो, नींद पड़े सब सोवत हैं क्यों॥ ३॥
"श्री नारायण" का नगारा है, थिर आत्म देव पियारा है।
फिर दुर्लभ तन को पाकर के, चित्त "चेतन" एक बनाते न क्यों॥ ४॥

—:o:—

भजन—११८

तर्ज—ओ मन नादान.............................. ।

संसार में आकर हे प्राणी तूं सच्चिदानन्द को भूल गया।
सच्चिदानन्द को भूल गया, और विषयानन्द में फूल गया॥ टे०॥

मैं कौन कहाँ से आया हूँ, क्यों स्वासों की पूंजी लाया हूँ।
माया बिच मन अटका करके, कर्त्तव्य निभाना भूल गया॥ १॥

संकल्पों के पुल बाँध-बाँध कर, शुद्ध मन को मैला कर डाला।
निज हृदय के मन मंदिर में, तूं झाड़ू लगाना भूल गया॥ २॥

आशा की भारी नदी बहती, जिसमें संसार बहे सारा।
सतगुरु की शरण में जा करके, निज आप बचाना भूल गया॥ ३॥

"स्वामी चेतन" के "श्री नारायण", जागो न समय फिर आवेगा।
बरबाद करे तूं स्वांस रत्न, क्यों राम भजन को भूल गया॥ ४॥

संसार में आके ... ...।

—:o:—

भजन—११९

तर्ज—नित नेम करके.................. ... ।

मन चेत करके, तन हेत करके। मत भटको विनाशी संसार में॥ टेर॥
भोगों की क्यारी, रोगों की पिटारी।
निज रूप भज के, भव कूप तज के, मत भटको विनाशी संसार में॥ १॥
मलिन यह देह है, दुःखों की गेह है।
जो आती संग में, मिलती राख रंग में॥ २॥

संपूर्ण सुख जग के ऐसे, मरुस्थल का पानी है जैसे।
छोटा बड़ा परिवार, चंचलताई का आकार ॥ ३ ।
"श्री नारायण" "चेतन" स्वरूप तूं, अहं वृति हरके, ज्ञान मौन धरके।
अब सटको सतो परिवार में ॥ ४ ॥

—:०—

भजन–१३०

करले चाहे जितना पाप, होगा नर्कों में संताप।
रक्षा करने न जायेगा, कोई वहाँ पर ॥ टे० ॥
गरीबों का गला काट, धन माल धरता,
फर्नीचरों के रूम में भी, बैठा तूं जलता,
लानत तुझको रे होशियार, मानव कहलाना बेकार।
रक्षा करने न जायेगा कोई वहाँ पर ॥ १ ॥
खेले हैं ताश, चौपड़, पिक्चर में दौड़ा,
व्यसनों में दिल अपना, हंस-हंस के जोड़ा,
सोवे आधी-आधी रात, इससे होगा तेरा घात।
रक्षा करने न जायेगा कोई वहाँ पर ॥ २ ॥
गंदे शरीरों पर खुशबू लगावे -२-,
मित्रों को संग ले होटल में जावे।
न मट्टी मांस का विचार, दीना धर्म बिसार ॥ ३ ॥
देख पराया धन लेने को सोचता,
चोरी ब्लैक कर धनवान बनता।
फल इसका पूरा अपार, जिसका नर्कों में दीदार ॥ ४ ॥

"श्री नारायण" टेरे रे भाई,
पाप करे क्यों यौवन बादल की छाई।
लादे पापों का क्यों पार, इक दिन जावे पसार ॥ ५ ॥

भजन-१३१

तर्ज—बहे आंसुओं को .... ।

बहिर्मुख वृत्ति टार, कर आत्म विचार।
अपनी गठरी संभार, ममता को दिल से तोड़ के ॥ टेर ॥
जो इन्द्रियन झरोखे प्यारे, वहाँ बैठे हैं शत्रु न्यारे -२-।
करते तेरा अपकार, नहीं करना इनसे प्यार ॥ १ ॥
मन विश्व प्रीत दुःखदाई, निराशी हुए बिना सुख नाहीं।
मन में साँची समता धार, अपने आत्म से कर प्यार ॥ २ ॥
"श्री नारायण" दृढ़ धारो, जीवन त्याग विराग से गुजारो।
मन को साँचे रंग में रंग, चढ़े न भव का कच्चा रंग ॥ ३ ॥

—:०:—

भजन-१३२

तर्ज—चुप-चुप खड़े हो................ ।

झूठे प्रपंच में मन को रमावोगे। निजानन्द खोय के, बहुत दुःख पावोगे ॥ टेर ॥
मात पिता बांधव-सुत भाई, अंत समय में कोई न सहाई।
मोह ममता में जीवन गमोओगे ॥ १ ॥

संसार सारा अग्नि का वन है, झूठे कपट धोखे का सदन है।
विषयों की ज्वाला में मन को जलावोगे ॥ २ ॥
नभ, वायु, तेज, जल भूमि का तन है, पल-पल बदलता विराना ये धन है।
पर की वस्तु को अपनी बनाओगे ॥ ३ ॥
आदि न अन्त जिसका वेदों ने गाया, देखन मात्र जग तुझको क्यों भाया।
अपनी मूर्खता पर नहीं पछताओगे ॥ ४ ॥
"श्रीनारायण" गृहस्थी या ज्ञानी, रहे उपशम इसे स्वप्नवत जानी।
"चेतन" स्वरूप में तभी समाओगे ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१३३

सखी री जग में कोई नहीं अपना ॥ टे० ॥
माता न तात न भाई न बन्धु, झूठ मृषा सपना ॥ १ ॥
मेरा-मेरा झूठ पुकारे, तेरा न तन अपना ॥ २ ॥
मित्र अरु जोगी, योगी अरु भोगी, सबसे पलक भर मिलना ॥ ३ ॥
ऊँचे महल बैठ हर्षावे, होगा सभी तजना ॥ ४ ॥
कहे "नारायण", "स्वामी चेतन" से, जान रूप अपना ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१३४

तर्ज—मेरा सत चित आनन्द ....।

है स्वांस अमोल अपार, वृथा क्यों खोवे।
मन अन्दर झांकी मार, बाहिर क्यों जावे ॥ टेर ॥

एक अकेले तुझे चैन न आवे, पति पत्नी कभी पुत्रों में जावे।
कभी मित्रों की पुकार ॥ १ ॥
प्रारब्ध संयोगी जीवन तेरा, क्यों करता जग मेरा-मेरा।
(तेरा) कोई न रिश्तेदार ॥ २ ॥
मन तुझे कोई कैसे समझावे, कहीं से उठे कहीं पर फँस जावे।
तेरी चंचल गति अपार ॥ ३ ॥
"श्री नारायण" भजन कमा ले, "चेतन" ज्योति मन में लगा ले।
जग दुःख का भंडार ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन–१३५

स्वांस कितने हैं अनमोल, दिये विषयों बदले तोल।
जीवन खोया, न पाया है कुछ यहाँ पर ॥ टेर ॥
जिस तन पर तू फैशन बनावे, उसकी बना राख पलबिच जावे।
किसका करता है दुलार, गाफिल कुछ तो सोच विचार ॥ १ ॥
जिन ओठों पर लाली लगाई, उन पर एक दिन पपड़ी ही छाई।
देख आँखों को पसार, किसका करता है सिंगार ॥ २ ॥
हाड़ मांस का ये गंदा है थैला, जिस पर मोहित कैसा तू गैला।
दे हृदय ग्रन्थि खोल, इसके अन्दर भारी पोल ॥ ३ ॥
यौवन तो थारे बन्दे हरि भजने को, नकि दर्पण देख -२- सजने को।
किया न आत्म विचार, दिया प्रभु को बिसार ॥ ४ ॥
"श्री नारायण" करते इशारा, कोई न काम आवे तेरा धन धाम दारा।
करले अपने घर की याद, मत कर मानवता बरबाद ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१३६

दुःख आनन्दकारी है, क्यों सुख की चाह करता है।
गमी अतियन्त प्यारी है, तूं किसकी राह तकता है ॥ टे० ॥
करे इच्छा अहो भारी, न पूर्ण हो सके सारी।
तेरी तकदीर इतनी ही, वृथा आहें क्यों भरता है ॥ १ ॥
तूं मुखड़ा मोड़ कर जाता, न रिश्ता काम कुछ आता।
सभी से है अस्थिर नाता, तूं किस पर मोह करता है ॥ २ ॥
अधिक दुःख जब तुम्हें मिलता, वही सुखरूप बन जाता।
नहीं जग में कोई तेरा, तूं किसकी आस करता है ॥ ३ ॥
ये जीवन एक चिनगारी, समझ करले तूं तैयारी।
"श्री नारायण" निराशा बिन, न दिल का दुःख मिटता है ॥ ४ ॥

—:o:—

भजन—१३७

तूं किस पर फूला फिरता है, यह दीपक बुझने वाला है।
जब प्राण निकल जायेंगे तन से, कोई न रखने वाला है ॥ टे० ॥
जो था सिकन्दर-सा राजा, नहीं लेकर कुछ भी साथ गया।
तूं किस पर गौरव करता है, पाकर के धन धाम नया ॥ १ ॥
एक से लाख बनाने को, तूं आशा कर-कर रोता है।
इस नाशवन्त मिथ्या भव में, क्यों आत्म-मणी को खोता है ॥ २ ॥
कभी भक्ति का रस ना चाखा, प्यारे प्रभुवर के पाने में।
सारा ही तन मन बेच दिया, यह झूठा जगत रिझाने में ॥ ३ ॥

जब मार पड़ेगी यमदूतों की, सिर धुन-धुन कर रोवेगा।
तब दारा, सुत धन माल खजाना, नहीं गवाही देवेगा ॥ ४ ॥
कहते हैं "श्री नारायण" "स्वामी चेतन" का संदेश यही।
जल्दी करले शुभ-कर्म कमाई, नोटिस आने वाला है ॥ ५ ॥

भजन—१३८

सुनो मन स्वार्थ का सारा पसारा, जरा अपने दिल में क्यों न विचारा ॥ टे० ॥
व्यंजन खिला के जिस तन को पाले, जिसको अकड़ में तूं टेढ़ा ही चाले।
वह धोखा देगा न संग तेरे जावे, बीच शमशानों में होवत छारा ॥ १ ॥
जब लेगा तूं दुनि से विदाई, न तन धन जग में होत सहाई।
प्रेत-प्रेत करती घर की लुगाई, खड़े देखते मुर्दा लगता न प्यारा ॥ २ ॥
सब प्यारे अनुकुलता में भाई, होती जरा-सी प्रतिकूलताई।
पति-पत्नी में भी होती लड़ाई, कचहरी कोर्ट में जा लेते किनारा ॥ ३ ॥
सावन जैसा यौवन थिर नहीं रहता, क्यों भटके तेरा कोई न अपना।
कहे "नारायण" सब जग सपना, बन जा "स्वामीचेतन" का दुलारा ॥ ४ ॥

भजन—१३९

तर्ज—न कर अभिमान........................।

धर्म ही एक साथी है, वही कुछ काम आवेगा ॥ टेर ॥

जो है अर्धांगनी नारी, जिसे कहता है अति प्यारी।
अंत में हो नहीं तेरी, तूं अँखियाँ मूंद जायेगा ॥ १ ॥
जिन महलों में कर ममता, स्वर्ग-सा जो तुम्हें लगता।
वह घर प्यारा पड़ा रहता, न मरघट तक भी जायेगा ॥ २ ॥
यह भाई हैं ये सुत मेरा, यह नारी है ये घर मेरा।
जब यम प्राण ले तेरा, न कुटुम्ब धन काम आवेगा ॥ ३ ॥
सोच कैसा अथिर रिश्ता, तूं किस पर गर्व है करता।
भला क्या संग है चलता, तूं तन भी त्याग जावेगा ॥ ४ ॥
अब बैराग कर मन में, बहुत सोया जगत बन में।
श्री "नारायण" धर्म धन में, न आलस काम आवेगा ॥ ५ ॥

—:o:—

भजन—१४०

ओ भोले जीव गाफिल हो, किसे कहता हमारा है ॥ टेर ॥
जिसे अपना समझता है, नहीं तेरा वो बन सकता।
जलाया है हृदय अपना, मान किसको सहारा है ॥ १ ॥
जिधर दौड़ा, सिवा ठोकर, नहीं कुछ भी नजर आया।
जगत सुख ओस का मोती, क्यों जीवन बेच हारा है ॥ २ ॥
हुआ जिस तन पर आशिक तूं, भरा मलमूत्र है उसमें।
नहीं लज्जा तुझे आती, वही लगता पियारा है ॥ ३ ॥
करे तूं मोह वश नाना, कपट छल छिद्र अरु चोरी।
"श्री नारायण" चेत प्राणी, सब स्वार्थ की धारा है ॥ ४ ॥

—:o:—

भजन—१४१

तर्ज—जब पूर्ण सतगुरु .... ।

यह देह सदा दुर्गंध भरी, इसे खुशबूदार बनाना क्या।
आखिर हो जाय भस्म ढेरी, इसे फैशनदार बनाना क्या ॥ टेर ॥
इस पंचकुटी में सुख नाहीं, यह होत विकारी प्रतिक्षण में।
यह अपनी ही जब वस्तु नहीं, तब गाफिल होकर सोना क्या ॥ १ ॥
इस तन सराय बिच नहीं रहना, तूं किस पर गर्व किया भारी।
यह रोग दुःखों की पिटारी है, इसे सुखप्रद जान लुभाना क्या ॥ २ ॥
तूं आया था हरि भजने को, इस भवसागर से तरने को।
पर भूल गया निज नाम पता, पर घर में बस हर्षाना क्या ॥ ३ ॥
न राजा रंक ना थिर कोई, निज नैनन देखत विश्व गया।
सब चले गये समृद्धशाली, फिर तेरा पता ठिकाना क्या ॥ ४ ॥
कहे "नारायण" कुछ चेत करो, मत तन नगरी में हेत करो।
"स्वामी चेतन" सतगुरु पा करके, दुनियां से मोह लगाना क्या ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१४२

जागो मन जागो बीते वर्ष हजार सोते।
पाकर के सुन्दर आत्मलाल काहे ख्वार होते ॥ टे० ॥
नहीं है नहीं है सुख जग की सराय माहीं।
होश करो रे मानव संत तो मृषा न गाते ॥ टे० ॥
लाखों का सामान धरते, पल का भरोसा नाही।
अन्त जावे न कोई साथ, क्यूं न ख्याल करते ॥ १ ॥

सुन्दर-सी बुद्धि पाके तन अच्छे कुल में पाके।
लाज न आये तुझको विषयों में बेकार खोते ॥ २ ॥
कहे "नारायण" नम्र बन करले बिमल मन।
आकर सतसंग गंग बिच, अब लगाले गोते ॥ ३ ॥

—:o:—

भजन—१४३

चेत मन क्यों नशा पिया उमर सब जा रही तेरी ॥ टे० ॥
बालपन खेल में खोया जवानी में अजब सोया।
वृद्ध हो रोग से रोया शक्ति सब खो गई तेरी ॥ १ ॥
जिन्ह घर झुमते हाँथी, घने चाकर घने साथी।
सभी की हो गई माटी है, ऐसी काल की फेरी ॥ २ ॥
विषय विष से भरा प्याला, न पी उसको हो मतवाला।
जगत में जल रही ज्वाला खबर तुझको नहीं तेरी ॥ ३ ॥
"श्री नारायण" मधुर बोले, न बारम्बार बदल चोले।
"चेतन" ज्योत को जोले, तू है मेहमान न कर देरी ॥ ४ ॥

—:·:—

भजन—१४४

देख विचार करके, भ्रम टार करके।
क्या मिलता है, स्वप्ने के संसार में ॥ टेर ॥

प्राणों से प्यारी लगे जो नारी।

उसे रोती छोड़ के, जाता मुख मोड़ के ॥ १ ॥

जिस तन पोषण पाप कमावे।

बन्दे नहीं तेरी, होगी भस्म ढेरी ॥ २ ॥

सब जग स्वप्ने, कोई न अपना।

प्रभु प्रेम करले, मुक्ति भाव भर ले ॥ ३ ॥

कहे "नारायण" प्रिय भाई गण।

सुख मिलता है, "चेतन" के दीदार में ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१४५

राग—देख कर तेरे संसार की .... ।

सोच क्षणिक जीवन पर मूर्ख, क्या करता अभिमान।

अरे तूं दो दिन का मेहमान ॥ २ ॥ ॥ टेर ॥

भाई बान्धव सुत मित नारी -२-, नहीं कोई साँचे सुखकारी।
स्वार्थ प्रीत भरी है सारी, किस पर मूढ़ दीवाना भारी ॥

देख सभी दुनियां से खाली -२- जाते हैं इन्सान ॥ १ ॥

जिस धन को मेहनत से जोड़ा -२-, अन्त समय महलों में छोड़ा।
क्यों फिरता है दौड़ा -२-, सिर पर पड़े काल का कोड़ा ॥

जीवन तेरा चंदा जैसा, छिप जावे असमान ॥ २ ॥

ऊँचे-ऊँचे महल चुनावे -२-, पंखा बिजली ठाठ लगावे।
धन दौलत पा मन हर्षावे, आस पास कई मित्र बैठावे।

इक दिन खिस लगेंगे सारे -२- क्या करता अरमान ॥ ३ ॥

नर नारी माया के सारे -२-, मेरा-मेरा किसे पुकारे।
एक दिन ऐसा आवे प्यारे, हो जावे सब न्यारे-न्यारे॥
छोड़ सभी का रिश्ता पागल -२- जा बसता शमशान॥ ४॥
"श्री नारायण" पार लगावे, "स्वामी चेतन" भगवान दिखावे।
दुनियाँ के सब दुःख मिटावे, झूठा देह अभिमान जलावे॥
लौट के नहीं दुनियाँ में आवे, हो जावे कल्याण॥ ५॥

—:०:—

भजन—१४६

तर्ज—जब पूर्ण सतगुरु ....।

ओ मन नादान क्षणिक जग में, तूं काहे को मतवारा है।
कौड़ी बदले बेच रहा, क्यों होरा जन्म तुम्हारा है॥ टे०॥
जन्म-जन्म में मिली नारी -२-, धन दौलत भी पायी सारी।
नहीं मिले नये बांधव भाई, इतना मद किस पर धारा है॥ १॥
भोक्ता भोग सभी झूठे, थिर कोई नहीं, थिर कोइ नहीं -२-।
महल गिरे या महलवासी, फिर किसको कहे हमारा है॥ २॥
क्या पाया महल चुना करके, और जननी, जनक कहा करके।
अम्मा रानी कहला करके, क्या पाया करो विचारा है॥ ३॥
शब्दादिक में सुख मान।घना, है दर-दर पर तूं दीन हुआ।
"स्वामी चेतन" गुरु से नहीं जाना, जो आत्म परम पियारा है॥ ४॥
एक दिन यों ही जाना होगा, हरि साँचा है कहना होगा।
मिट्टी का तन तजना होगा, "श्री नारायण" नें पुकारा है॥ ५॥

—:०:—

भजन—१४७

तर्ज—जब पूर्ण सतगुरु देव..................................।

ओ गाफिल मानव सोच जरा, दुनियां में कौन तुम्हारा है।
किसमें दिल को भरमाता यह सब स्वार्थ का का पसारा है॥ टे०॥
ओ साथी संगे सब छोड़ गये, मुख मोड़ गये, दिल तोड़ गये।
न कोई रहा न रहे कोई अति प्रबल काल की धारा है॥ १॥
जिस सूरत का गुमान करे, वह एक दिन बीच शमशान जरे।
यह जीवन ज्योति कुछ पल की, क्यों प्रभु का नाम बिसारा है॥ २॥
हे परदेशी क्यों सोय रहा, निज आत्म धन को खोय रहा।
मानव तन देकर के प्रभु ने तुझ अभिमानी को चितारा है॥ ३॥
यह विश्व सदा बनता मिटता, निज आत्म ही शाश्वत रहता है॥ ४॥
कहे "नारायण" "चेतन" की शरण मिलता निज प्रीतम प्यारा है॥ ५॥

—:o:—

भजन—१४८

तर्ज- लगन प्रभु से लगा.....................।

जगत सब रैन का सपना, पलक खुलते मिट जावेगा।
स्वांस मोती बिखर जावें, अकेला हंस जावेगा॥ टेर॥
नहीं अधिकार तन पर भी, करे अभिमान फिर किसका।
गुजारा कर गरीबी से, यह तन तो खाक होवेगा॥ १॥
विषय की नींद में सोकर, निजात्म रत्न को खोया।
लूट जब जाये धन सारा, तो धर सिर हाथ रोवेगा॥ २॥

भजन विश्वेश का भूला, विश्व की भक्ति में फूला।
मृषा संसार धूली में, नहीं कुछ आवेगा ॥ ३ ॥
"श्री नारायण" कहे सारे, अपने आप हित प्यारे।
सभी हो जायेंगे न्यारे, एक दिन ऐसा आवेगा ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१४९

दुनियां में थिर रहने वाला, बन्दे कोई नहीं ॥ टेर ॥
भाई बन्धु मित्र सारे, स्वार्थ से लगते प्यारे।
सच्चा हितैषी सुख देने वाला कोई नहीं ॥ १ ॥
आया अकेला यहाँ, जाना अकेला वहाँ।
अन्त समय में संग जाने वाले कोई नहीं ॥ २ ॥
जिनके हित पाप कमावे, छुप-छुप के धन माल जुटावे।
पापों का बोझ लेने वाला, कोई नहीं -२- ॥ ३ ॥
दुनियां में दिल को लगाया, हाथ कुछ नहीं आया।
स्वांस गये को वापिस लाने वाला कोई नहीं ॥ ४ ॥
"स्वामी चेतन" सतगुरु की वाणी, कहे "नारायण" सुनरे प्राणी।
'ईश्वर' बिन सच्चा बन्धु तेरा बन्दे कोई नहीं ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१५०

जग स्वार्थ का है नहीं है कोई अपना। झूठी है प्रीत हे समझ दिल देवना ॥ टेर ॥

मानुष तन है हरि भजने को -२- । आत्ममणी को हे भोगों में नहीं बेचना ॥ १ ॥
यह संसार स्वप्ने का बगीचा। मुरझा जावे रे भरोसा नहीं रखना ॥ २ ॥
जीवन दीपक थोड़े दिनां का, -२- । किसी के दिल को हे कभी न दुःख देवना ॥ ३ ॥
विपदा में बन्धु नेरे न आये -२- । झूठे सुख में हे कभी भी नहीं फूलना ॥ ४ ॥
मान प्रतिष्ठा थोड़े दिनों की। धोखे की प्रीत में, जीवन नहीं हारना ॥ ५ ॥
धन गज बाज पुत्र अरु नारी। अन्त समय में हे सभी को यहीं छोड़ना ॥ ६ ॥
मित्र संगाती दौलत के साथी। मीठी-मीठी बातों में गाफिल नहीं होवना ॥ ७ ॥
अन्त घड़ी जब आवे मुसाफिर। कोई न रोक रे किसे है कहे आपना ॥ ८ ॥
मखमल गद्दे मरती बरियां। कोई न देवे रे काठों में होगा सोवना ॥ ९ ॥
चमकीले गहने कोमल वस्त्र। तजने होंगे रे अधिक नहीं जोड़ना ॥ १० ॥
"स्वामी चेतन" सतगुरु की शरण में। कहे "नारायण" हे परम सुख पावना ॥ ११ ॥

—:•—

भजन—१५१

मैं देख लिया संसार में, सब अटक बिच अटकाये ॥ टेर ॥
कोई सुन्दर शब्द सुन, फंस गया राग में,
कोई अभिमान करे, पति पुत्र त्याग में।
कोई रुक जावे पढ़ने पढ़ाने में, कोई फंस जावे कविता बनाने में।
कोई योग जोग दृढ़ नेम में, कोई सिद्धियों में भरमाये ॥ १ ॥
कोई रुक गया मान चतुराई में, कोई फूल गया है सेवा की बड़ाई में।
कोई नर नारी में मृषा परिवार में,
कोई ममता की प्रबल-प्रबल दीवार में।
नहीं पहुँचे सच्चे देश, सब अभिमान नशे में खोये ॥ २ ॥

कोई नाच, पिक्चर, देख फंस गया रूप में,
कोई बेहोश हो फंस गया जूए में।
कोई फंसा पाप में कोई चोरी जारी में,
कोई जीवन खोय रहा सुख, मान, नारी में।
कोई फंस गया तेरी मेरी में, कोई रसना पर ललचाये ॥ ३ ॥
कोई तो फंस गया वेद वा किताब में,
कोई रुक गये हैं प्रश्नों के जवाब में।
कोई फंसे कर्म में कोई सम्प्रदाय में।
कोई व्रत नेम में कोई कष्ट काय में।
कोई फंस गये पूत सपूत में, कोई दौलत में हर्षाये ॥ ४ ॥
कोई फंस गया गुरु को रिझाने में, कोई फंस गया शिष्यों के बढ़ाने में।
कोई फंस गये मन की लड़ाई में, कोई रुक जावते वाणी की बड़ाई में।
कोई चाहते हैं गुरु से मान है, नहीं लेशमात्र शरमाये ॥ ५ ॥
सब ही अनात्मा जो देखने में आय हैं,
समझ चले रुकावटें सो ही सुख पाय है।
परमार्थ व्यवहार का यों ही संसार है,
कोई धीर वीर जन होते इससे पार है।
कहे "नारायण" वो पार है "स्वामी चेतन" के वचन कमाये ॥ ६ ॥

—:०:—

भजन—१५१

पापों का बोझा स्वयं ढोना होगा। न साथी तुम्हारा कोई साथ देगा ॥ टेर ॥
बहन भाई बन्धु पति पत्नी सारे। सभी से अकेला हो जाना ही होगा ॥ १ ॥

तू जिस तन को पाके न फुला समावे। वो माटी का बर्तन तुम्हारा न होगा ॥ २ ॥
क्यों सोवे मुसाफिर विषय नींद माहीं। कर्मों का लेखा चुकाना पड़ेगा ॥ ३ ॥
पापों का फल जब तुझको मिलेगा। वहाँ कोई मेरा न कहने को होगा ॥ ४ ॥
राजा भिखारी सभी जा रहे हैं। न कोई रहा है न कोई रहेगा ॥ ५ ॥
"श्री नारायण" चेतो रे भाई। गया स्वांस वापिस न प्रभु को जपेगा ॥ ६ ॥

—:o:—

भजन—१५३

यह दुनियां की चमक प्यारे, सदा रहने न पाती है।
प्रति क्षण में प्रति पल में, हमेशा ही बदलती है ॥ टेर ॥
फूल मत देख तन गोरा, जगत में जीवना थोड़ा।
त्वचा गोरी हो या काली, सभी की राख बनती है ॥ १ ॥
कभी धन के नशे में तूं चतुरता से हँसे बोले।
बुद्धि सब फैल हो जाती, मौत जब आ धमकती है ॥ २ ॥
चाहे ऊँचे महल वाले, चाहे छोटी कुटी वाले।
रात सोने में दोनों को, जगह तीन हाथ मिलती है ॥ ३ ॥
"स्वामी चेतन" हरि शरणे, कहे "नारायण" अमर सुख है।
बिना निज ज्ञान के प्यारे, न भ्रान्ति मन की मिटती है ॥ ४ ॥

भजन—१५४

रे तन के पुजारी सोच जरा, क्यों गाफिल होकर सोता है ॥टे०॥
दुनियां में तेरा कोई नहीं, क्यों ममता कर-२- रोता है ॥ १ ॥

कभी पुत्रों का इच्छुक बन करके, देवी देवों को मनाता है।
कभी धन का पुजारी बन करके, सेठों को शीश झुकाता है ॥ २ ॥
कभी वस्त्रों पर कभी भूषण पर, दिन रात लालायित रहता है।
कभी नये ढंग के फैशन पर, अपने दिल को भरमाता है ॥ ३ ॥
ये धन दौलत कोई न संगी, यम नोटिस जब आता है।
पाप पुण्य की करी कमाई, सच्चा धन पार लगाता है ॥ ४ ॥
कहे "नारायण" दुनियां में, जो हंगता ममता तजता है।
अविनाशी "चेतन" पद पाके, भवसिंधु से उबरता है ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१५५

तर्ज—नैरे मोह के..................

चलने के दिन रहे थोड़े, किस संग प्रीत करे ॥ टे० ॥
भाई बांधव सुत वित नारी, कुटुम्ब कबिला रिश्तेदारी।
श्रेय पथ में सब रोड़े, किस संग प्रीत करे ॥ ॥ १
खोयो जन्म भरोसे माहीं, वृद्ध भये कछु होवत नाहीं।
लगे शब्द के कोड़े, किस संग प्रीत करे ॥ २ ॥
विषयों में सुख है नहीं सांई, विषय प्रीत का फल ये भाई।
हो दुःखों के फोड़े, किस संग प्रीत करे ॥ ३ ॥
जिस तन को नित खूब सजाया, जिसकी पूजा में प्रभु को भुलाया।
वो अधविच तुझको छोड़े, किस संग प्रीत करे ॥ ४ ॥
"नारायण" सबसे हैं निराशी, "चेतन" के चरणों का वासो।
वो निजानन्द में मन जोड़े, किस संग प्रीत करे ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१५६

तर्ज—मेरे मोह के बन्धन तोड़े.................... ।

संसार स्वप्न की माया, इसमें सुख न मिले ।
माया है ढलती छाया, इस बिच सुख न मले ॥ टे० ॥

पांच विषय जग रूप पिछानो, जन्म मरन का कारण जानो ।
किसमें चित्त भरमाया, इसमें सुख न मिले ॥ १ ॥

धन यौवन की क्या बड़ियाई, देखत-देखत ही मिट जाई ।
कोई रहने ना पाया, इसमें सुख न मिले ॥ २ ॥

दुःख संयुक्त सुख मीठा लगता, पैंड-पैंड देवों से डरता ।
प्रभु अविनाशी नहीं पाया, इसमें सुख ना मिले ॥ ३ ॥

कहे "नारायण" सब जग फ़ानी, "स्वामी चेतन" बिन मर्म न जानी ।
क्यों संत शरण नहीं आया, इसमें सुख न मिले ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१५७

तर्ज—हुई मेहर गुरु.............................. ।

माटी की काया चेतन बिन बेकार ॥ टे० ॥

या काया सुन्दर ना भाई, जिस पर तूं ने प्रीत लगाई ।
इससे प्राण निकल जब जाई, कर दे घर से बार ॥ १ ॥

धन यौवन के मद में झूला, पंचभूत के तन में फूला ।
राम नाम का सुमिरण भूला, अंत पड़ेगी मार ॥ २ ॥

माया में ऐसा भरमाया, चाम दाम हित देव मनाया।
सच्चा सौदा नहीं कमाया, कर्मों से हुआ तूं चमार ॥ ३ ॥
कहे "नारायण" जीवन बनाले, "स्वामी चेतन" के वचन कमाले।
आत्म में मन को ठहरा ले, हो जा भव से पार ॥ ४ ॥

भजन—१५८

है सकल जगत दुःख रूप मति क्यूं मारी -२-।
सुमीरन र कारण देह मनुज की धारी ॥ टे० ॥
है मात, पिता, सुत, भ्रात, मित्र अरु नारी।
तेरा कोई न संगी होय, काल की वारी ॥ १ ॥
है पाँच विषय भयरूप क्लेश की क्यारी।
है पुत्र पति धन चाह, रुलावन बारी ॥ २ ॥
तूं देख सभी धन माल, मग्न अहंकारी।
पर चिंता चित्त जलाय, तिजुरी भारी ॥ ३ ॥
रोये दशरथ पाकर पुत्र, राम अवतारी।
कोई बिलखी सीता माय, राम की नारी ॥ ४ ॥
नहीं कोय जगत बीच, आय हुये सुख यारी।
तू जाग-जाग अब जाग, अरे संसारी ॥ ५ ॥
"स्वामी चेतन" सतगुरु देव मिले सुखकारी।
कहे "नारायण" मिली मोज सफल काया म्हारी ॥ ६ ॥

भजन—१५९

ठाढ़ी होव जी मृत्यु की काली धार।
थरी म्हारी एक न चल ॥ टेर ॥
किस पर पहनो गहना कपड़ा, किस पर करो सिंगार।
या काया माटी में मिलसी, छोड़ तुम्हारो प्यार ॥ १ ॥
यौवन को के लाड़ लड़ावो, यो भी बदलन हार।
बिजली ज्यूं छिप जासी पल में, आव बुढ़ापो दुःखकार ॥ २ ॥
किस पर गर्व गुमान करो म्हारो, ऊँचो कुल घर बार।
एक दिन होली ज्यूं जल जासी, खड़यो देखगो परिवार ॥ ३ ॥
मौत सिर पर आ पड़े तब, खर्चो लाख हजार।
देवी देवता काम न आव, जग स जाती बार ॥ ४ ॥
"स्वामी चेतन" सतगुरु से जान्यो है संसार असार।
कहे 'नारायण" मरणशील को, कोई न रोकन हार ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१६०

है प्रबल काल की धार सभी चल जाव।
रहना र कारण नायं जगत म आव ॥ टेर ॥
कोई छोड़ गये घर बार, त्रिया बिलखाव।
दिये पल में पैर पसार, हंस उड़ जाव ॥ १ ॥
थारो यौवन सुन्दर रूप, सभी उड़ जाव।
भज शीघ्र हरि को नाम, बुढ़ापो आव ॥ २ ॥

तूं कर अकड़ की बात, गर्व दिखलाव -२- ।
पर एक दिन सब कुछ, छोड़ चिता पर जाव ॥ ३ ॥
माया है ठगनी नार, दाव दिखलाव ।
है वो ही पुरुष सुजान, नहीं भरमाव ॥ ४ ॥
"स्वामी चेतन" सतगुरु देव भेद बतलाव ।
कहे "नारायण" भगवान, अमर पद पाव ॥ ५ ॥

—:o:—

भजन—१६१

आत्म खो गयो रे अज्ञान के बाजार में ॥ टे० ॥
मथुरा में ढूँढा द्वारका में ढूँढा -२- । ढूँढा -२ रे काशी में जाय-जाय के ॥ १ ॥
पर्वत पर ढूँढा, तीर्थों पर ढूँढा -२- । ढूँढा-ढूंढा रे गंगा में नहाय -२- के ॥ २ ॥
मन्दिर में ढूँढा, मस्जिद में ढूँढा । ढूँढा -२- रे बनों में जाय-जाय के ॥ ३ ॥
मूर्ति में ढूँढा, पूजा में ढूँढा । ढूँढा -२- रे टालियां बजाय के ॥ ४ ॥
चमड़ी में ढूँढा, दमड़ी में ढूँढा । ढूंढा-ढूंढा रे तन को सजाय के ॥ ५ ॥
गीता में ढूंढा, भागवत में ढूंढा । ढूंढा -२- रे वेदों को छान-छान के । ६ ॥
कहे "नारायण" कहीं नहीं पाया -२- ।
आत्मो पायो रे, "स्वामी चेतन" के दरबार में, सतगुरु के दरबार में ॥ ७ ॥

—:o:—

भजन—१६२

सदा मिलता नहीं जी प्यारे संत जनों का संग ।
सफल जीवन करो जी, अब तो छोड़ जगत का फंदा ॥ टे० ॥

मानुष देह मिली अनमोली, विषयन के हित नांय।
चेत करो मत सोचो गाफिल, उमर बीती जाय ॥ १ ॥
सदा नहीं यौवन की लाली, सदा नहीं तन चंग।
भव सागर से पार उतर लो, पायी सत्संग गंग ॥ २ ॥
धन दारा और कुटुम्ब कबीला, कोई नहीं हितकार।
अपने-अपने सुख के साथी, किससे करता प्यार ॥ ३ ॥
धन यौवन बादल की छाया, विनशत लगे न बार।
किस जीवन पर फूला फिरता, दिल पर नहीं विचार ॥ ४ ॥
इस काया का क्या मद करिये, अन्त धूल की धूल।
भारी ओढ़न भारी पहरन, सर्व दुःखों की मूल ॥ ५ ॥
गुरु वचन धरो निज हिय में, हो जावे कल्याण।
मीठे-मीठे गुरु चरणों की, कीमत बड़ी महान ॥ ६ ॥
आनन्द सागर निज घट माहिं, नदी ताल क्यों नहावे।
आत्मदेव बसे घट मांहि, दर-दर क्यों भटकावे ॥ ७ ॥
जिस सुख हित निज हरि को भुलाया, हे प्यारे अभिराम।
उस प्रभुवर के भजन बिना ये, चोला है बेकाम ॥ ८ ॥
"स्वामी चेतन" सतगुरु पाकर, छोड़ विषय कुसंग।
कहे "नारायण" ना जाने कब, खावे काले भुजंग ॥ ९ ॥

—:०:—

भजन—१६३

ओ मिलेंगे भगवान सजन सत्संग में।
रहते हैं दीनानाथ संतों के संग-संग में ॥ टेर ॥

विश्वामित्र वशिष्ठ का झगड़ा हुआ सत्संग तप पर रगड़ा।
संशय की वृति हुई जब, गये शेष समीप मुनि तब॥
माना सत्संग को महान॥ १॥
ऋषि बाल्मिक डाकू थे, पथिकों का धन हरते थे।
कुछ क्षणों संतों के संग से, और उल्टे नाम के जप से॥
हो गये ऋषियों में प्रधान, हो गये पूर्णब्रह्म समान॥ २॥
कोई काशी मथुरा जावे, कोई हरिद्वार में नहावे।
कोई जप तप ध्यान लगावे, पर राम हाथ नहीं आवे॥
सत्संग तीर्थ पूज्य महान॥ ३॥
जब राम बुलावा आया, कबिरा नैन जल भर लाया।
मन सत्संग सुख में समाया, जाना बैकुंठ नहीं भाया॥
सत्संग रत्नों की खान॥ ४॥
मीरा सहजो, भीलनी तर गई, और नाम अमर है कर गई।
सब जग गाता है गुणगान॥ ५॥
सनकादिक रहे सत्संग में, नहीं जाते थे कुसंग में।
सत्संग उन्नति का स्थान॥ ६॥
नारद अगस्त हुए जग माहिं, को जग में जानत नाहिं।
हुआ सत्संग से कल्याण॥ ७॥
सत्संग सतबुद्धि उपजावे, और भव से पार लगावे।
डाकू बन जाते इन्सान॥ ८॥
"स्वामीचेतन" सतगुरु पाके, हम मोह नींद से जागे।
कहे "नारायण" सुन कान॥ ९॥

—:०:—

भजन—१६४

माटी की काया है दिन चार, ओ मतवारे मानव ॥ टे० ॥

देह दुर्गंध भरी है, मल मूत्र रक्त भरी है। होती कभी ना खुशबूदार ॥ १ ॥

हड्डी मांस बलगम क्यारी, थूक सीड़गीड़ जारी। इन सबमें किससे तेरा प्यार ॥ २ ॥

अशुद्ध अशुच अपावन, उपाधियों की कारन। रोग दुःखों की सरदार ॥ओ०॥ ३ ॥

असत्य अनित्य बिरानी, क्षण-क्षण में होत पुरानी। पल का नहीं है इतबार ॥ओ०॥ ४ ॥

तूं इसकी प्रीति पाले, यह तुझसे नेह न डाले। जाती है छोड़ तेरा घर बार ॥ओ०॥ ५ ॥

मेवा मिष्टान खिलावो, वा ईत्तर फूलेल लगावो। सबको कर देती है बेकार ॥ओ०॥ ६ ॥

"श्री नारायण" समझावे, किससे तूं प्रीत लगावे। अन्त बड़ो है धोखेदार,
ओ मतवारे मानव ॥ ७ ॥

—:०:—

भजन—१६५

सत्संग से करलो अनुराग घर में रहते रहते ॥ टेर ॥
विषयों से करलो वैराग, घर में रहते रहते।
कोई कहे धन को त्यागो, कोई कहे जन को त्यागो,
सतगुरु कहते ममता त्याग, घर में रहते रहते ॥ १ ॥
सत्संग में सद्गुण मिलते, दुर्गुण सब हटते जाते।
बुझा लो राग द्वेष की आग, घर में रहते रहते ॥ २ ॥
सत्संग में शान्ति मिलती, दुविधा सारी ही मिटती।
खुलते हैं जन्म-जन्म के भाग, घर में रहते रहते ॥ ३ ॥
सत्संग में आकर भाई, छोड़ो जग मान बड़ाई।
मारो मन है काला नाग, घर में रहते रहते ॥ ४ ॥

सत्संग सदाचार सिखावे, सच्चा उपकार बतावे।
जीवन का करलो कल्याण, घर में रहते रहते ॥ ५ ॥
"स्वामी चेतन" सतगुरु ने हमको, ज्ञान निराला दिया।
कहे "नारायण" अब जाग, घर में रहते रहते ॥ ६ ॥

—:o:—

भजन—१६६

क्यों गाफिल हो सोया, देश ना अपना है।
चलना है यहाँ रहना नाहिं, पलक मात्र का सपना है ॥ टे० ॥
कितना ही धन माल जुटा ले, आखिर खाली जाना है ॥ १ ॥
गाँधी, जवाहर गये जगत से, अपना कहाँ ठिकाना है ॥ २ ॥
रंग रंगीली वस्तु छबीली, देख नहीं दिल देना है ॥ ३ ॥
एक अकेला आया रे बंदा, होय अकेला जाना है ॥ ४ ॥
कहे "नारायण" सतगुरु पाके, जीवन बिमल बनाना है ॥ ५ ॥

—:o:—

भजन—१६७

तर्ज—प्रेम कर तूं हर......................।

है फकीरी मौज न्यारी, दिल दूनि से तोड़ दे।
तुच्छ है ये शान सारी, आत्म में मन जोड़ दे ॥ टे० ॥
विश्व को तृण भार वत्, मन, बार बार निहार रे।
भोग फीके स्वाद नाहिं, दिल रमाना छोड़ दे ॥ १ ॥

जो भी सुख सत्य लोक तक, सब दुःख से संयुक्त है।
फिर यहां धन धाम की, सुख वासना को मोड़ दे ॥ २ ॥
है अमीरी दुःखमय, निश्चिन्त को चिंतित किया।
उस अमीरी पर विवेकी, दिल लगाना छोड़ दे ॥ ३ ॥
हो उदासी बन विवेकी, धार सच्चा योग रे।
कहे "नारायण" जाग प्यारे, "चेतन" में वृति जोड़ दे ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१६८

राग—कैसा सुन्दर .... ।

विषयों की ज्वाला है जलती, भाग रे मन भाग रे।
मोह निद्रा को तज कर प्राणी, प्रभु चरणों में लाग रे ॥ टे० ॥
पलक मात्र का खिला बगीचा, इक दिन तो कुम्हलावेगा।
चमक दमक में क्या मन देना, कर आत्म अनुराग रे ॥ १ ॥
मन कंजर ने रचा अखाड़ा, बुद्धि साज सजाया है।
खेल रचा है यह धोखे का, जाग रे अब जाग रे ॥ २ ॥
शब्दादिक का सुख ऐसा, ज्यों मृग तृष्णा का नीर रे।
वस्तु सभी चपला ज्यूं चंचल, त्याग रे मन त्याग रे ॥ ३ ॥
बुद-बुद फेन तरंग ज्यूं आयु काँच की सी काया रे।
कहे "नारायण" गाफिल मानव, "चेतन" ज्योति पिछान रे ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन–१६९

तर्ज–दुःख दूर कर...........................।

सुख ढूंढता कहाँ है, गाफिल असार माहीं -२- ।
रहना नहीं यहाँ है, झूठी सराय माहीं -२- ॥ टे० ॥
दिन चार की जवानी, ढल जाय ज्यूं ओस पानी ।
किसका बना गुमानी, दिल पर विचार नाहीं ॥ १ ॥
भूतादि काल माहिं, जाग्रतादि स्वप्न माहीं ।
बचपन से वृद्ध ताहीं, सुख का दीदार नाहीं ॥ २ ॥
इन्द्रादि राजधानी, जिनकी बड़ी कहानी ।
तपते हैं वे भी प्राणी, भोगों में प्यार नाहीं ॥ ३ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु की वाणी भव बन्ध से छुड़ाती ।
कहते "श्री नारायण" आराम दूर नाहीं ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन–१७०

स्वार्थ से करते हैं सब प्यार, ओ नादान मुसाफिर ॥ टे० ॥
साजन, धन, पूत, पोते, विपदा में दूर होते ।
सब हैं सुख के ही हिस्सेदार ॥ १ ॥
स्वार्थ को प्रीत ऐसी, बालू की भीत जैसी ।
गिरते न लगती कुछ बार, ओ नादान मुसाफिर ॥ २ ॥
धन जो कमा के लाते, सब ही हैं कंठ लगाते ।
वरना गाली से सत्कार, ओ नादान मुसाफिर ॥ ३ ॥

विधि वश कंगाली आती, सारी ही शान जाती।
झूठी दुनियां का झूठा प्यार, ओ नादान मुसाफिर ॥ ४ ॥
"श्री नारायण" का कहना, किसी से न नेह लगाना।
यह है विनाशी संसार, ओ नादान मुसाफिर ॥ ५ ॥

भजन–१७१

तर्ज—ये जीवन काँच का बाजा ....।

यह जीवन फेन जल का है, न मिटते देर लगती है।
लहर जीवन की ऐसी है, नहीं कह करके जाती है ॥ टे० ॥

जिस तन से करता प्यार, उसमें गंदी वस्तु अपार।
न सुगन्ध कहीं से आती, तूं करले विचार ॥
है इतना क्यों लालायित तूं मौत सिर पर गरजती है ॥ १ ॥

है बड़ा मेरा घर बार, करता गरज-गरज अहंकार।
नहीं दशशीश निशानी, था कितना परिवार।
यह माया धूप की छाया, हमेशा ही बदलती है ॥ २ ॥

जिसको तूं समझे प्यारी, वह मृत्यु की अधिकारी।
जो संग काया है उपजी, वह भी न होगी तेरी ॥
देखते-देखते प्यारे, सभी दुनियां बदलती है ॥ ३ ॥

कहे "नारायण" "चेतन" वाणी, है सर्व सुखों की खानी।
नहीं जग में कोई तेरा, यह सारी स्वप्न कहानी।
जाग अब जाग जा जल्दी, यह गाड़ी तेज चलती है ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन–१७२

जीवन पानी की फुवार -२, चार दिन की चांदनी फेर अंधियार ॥ टे० ॥
हँस-हँस करके पाप कमावे, सारी-सारी रात बन्दे सारी-सारी रात ।
खेल-खेल तास चौपड़ करता आत्मघात, पल्ले क्या पड़ता विचार ॥ १ ॥
काम, क्रोध, नित लूटते हैं, तेरा धन माल, -२- बन्दे तेरा धन माल ।
हिय पट खोल अपने आपको संभाल, करले भव से नैया पार ॥ २ ॥
धन दारा अरु भवन पति सब, मिलते बारम्बार बन्दे -२- ।
पर दीन दयालु सतगुरुजी का फिर -२- न अवतार
मत खो स्वांसों के सितार ॥ ३ ॥
मोह माया में गाफिल करने, जगह-जगह कुसंग बन्दे -२- ।
मिलनी दुर्लभ सन्त जनों की प्यारी सत्संग, अपनी पलक उघार ॥ ४ ॥
"श्री नारायण" बोले तोड़ माया की दीवार -२- ।
प्यारा प्रीतम निज घर माहीं, करले तू दीदार, निज भूल को बिसार ॥ ५ ॥

—:o:—

भजन–१७३

अपने आपको रिझाऊँ -२- ।
जग में घूमूँ, जग ना देखूँ खुद का खेल रचाऊं ।
कण-कण व्यापक मैं अविनाशी, निज के दर्शन पाऊं ॥ १ ॥
मैं जग रचता पालन करता, मैं संहार कराऊं ।
मैं मायापति मैं ही माया, देख-देख हर्षाऊं ॥ २ ॥
कहे "नारायण" हर में हरि को, पेख-पेख हर्षाऊं ।
सबमें "चेतन" ज्योति लख के सब को शीश नवाऊं ॥ ३ ॥

—:o:—

भजन—१७४

तर्ज—बिना सत्संग ज्ञान ... ... ।

मेरा औ रूप प्यारा है, सभी दुनियां से यारी है।
नहीं है द्वैत मेरे में, न कोई नर न नारी है ॥ टेर॥
मैं ही ब्रह्मा मैं ही विष्णु, मैं ही हूँ दीन दिनेश्वर।
अखिल जग का मैं स्वामी हूँ, मेरी सब चित्रकारी है ॥ १॥
सुन्दर श्याम मन मोहन, चटक मेरी निराली है।
कभी रोता कभी हँसता, सभी मेरी खिलारी है ॥ २॥
सभी मूरत मेरी सूरत, नहीं आनन्द की सीमा।
मुझ आनन्द दाता की, सभी दुनियां पुजारी है ॥ ३॥
निरंजन हूँ अनादि हूँ, मस्त रहता निजानंद में।
अहा हा! देख खुद -२- को, मति आनन्दकारी है॥ ४॥
अधिक मीठा परम रस है, मेरी एक लेश कणिका में।
सदा हूँ काल-का राजा, मेरी मुझको जुहारी है॥ ५॥
"स्वामी चेतन" की कृपा से, मिली मुझको परम दृष्टि।
कहे "नारायण" रमा सबमें, छबि मुझसे न न्यारी है ।६।

—:o:—

भजन—१७५

है आनंद रूप स्वरूप मेरा फिर दर दर पर भटकाना क्या।
मन मीन रमी आत्म सागर, फिर नदी नालों पर जाना क्या॥ टे० ॥
मेरा राम रमे मुझमें; मैं और नहीं वह और नहीं।
जब भेद भ्रम को चूर किया, फिर दुःख का पता निशाना क्या॥ १ ॥

विभू व्यापक ब्रह्म सनातन मैं, कुटस्थ अमर अविनाशी मैं।
जब पूर्ण चौदह भवनों में, फिर ब्रह्म लोक में जाना क्या ॥ ४ ॥
देहादिक से मैं प्यारा हूँ, कण -२- में भरा नजारा हूँ।
मैं दृष्टा जानन हारा हूँ, फिर दृष्टा जगत मन लाना क्या ॥ ३ ॥
"श्री नारायण" अविनाशी हैं, "चेतन" सबका प्रकाशी है।
स्थावर जंगम वासी है, फिर बन बन ढुढ़ँन जाना क्या ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१७६

मैं तो आनन्द स्वरूप, जाने कोई कोई भूप।
महिमा मेरी है अनूप, कैसे कहूँ जी सत्ता एक में ॥ टेर ॥
मैं एक अकेला दिन राती, नहीं द्वैत की बात सुहाती।
हूँ सबमें बसता राम, सबका न मुझमें काम ॥ १ ॥
चमके रूप मेरा नित जाहिर, अन्वेषण करूं क्यूं बाहिर।
मैं अन्दर ही भरपूर, खुद में ही रहता चूर ॥ २ ॥
यह नाम रूप जंजाली, मुझ आत्म की है सब लाली।
नहीं भेदों की है गंध, वाणी भी जहां बंद ॥ ३ ॥
सब मेरी ही महिमा गाते, गद्गद् हो अति हुलसाते।
मुझ चेतन के खिलवार कोई न पारावार ॥ ४ ॥
गुरु "चेतन" मिले हैं निराले, जिन भेदभ्रम सब टाले।
कहे "नारायण" सुखधाम, पूरण हो गये सारे काम ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१७७

कौन पावे मेरो पार।

मेरी महिमा मैं ही गाऊँ, कोई न गावन हार॥ टे०॥

आनंद निधान मुझमें, दुःख की गंध नाह।

सबके बाहिर भीतर रहता, फिर भी दरशों नाह।

मेरी अनोखी बहार॥ १॥

उपाधि भेद द्वारा बहु नाम पड़ गये।

जड़ चेतन होय करूँ खेल नित नये।

मैं अनंत अपार॥ २॥

अपने आप को भुलाय के हैरान मैं ही हूँ।

अपने को आप जान के दिवाना मैं ही हूँ।

खुला आनन्द का भंडार॥ ३॥

नूरों का भी नूर मैं तो, ईश का भी ईश।

मेरा जलवा सारा अरु, मैं ही मायाधीश।

करूं निज को हंकार॥ ४॥

"श्री नारायण" स्वामी "चेतन" जी ने दीनी मौज अपार।

मेरे सिवा कोई नहीं, कहता हूँ पुकार।

मेरीं मुझको ही जुहार॥ ५॥

—:०:—

भजन—१७८

तर्ज—राम मुझमें रम रहा................ .. .. ।

दृष्टा रमैया राम हूँ, मैं रम रहा संसार में।

ये दृश्य सारा दिखता, मेरे ही एक अधार में॥ टेर॥

भरपूर हूँ मैं विश्व में, कण-कण में मेरी रोशनी।
आनन्द को सब लूटते, मुझ आत्म के दीदार में ॥ १ ॥
सम्राट बन त्रिलौकि का, शासन करूं मैं सर्व पर।
अक्षय खजाना है भरा, घाटी न मेरे राज में ॥ २ ॥
भोगी भी मुझको ढूंढ़ते, योगी तरसते रात-दिन।
मुझको ही सब कोई गावते, आनन्द के सितार में ॥ ३ ॥
नित्य शाश्वत हूँ अजन्मा, कोई न मारनहार है।
कहे "नारायण" एक मैं ही रम रहा संसार में ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१७९

तर्ज—सतगुरु हमें मिले हैं.................।

सबमें है नूर मेरा, सबमें मेरा ठिकाना ॥ टे० ॥
तालों में गंग मैं ही, नभचर विहंग मैं ही।
जन -२- का अंग मैं ही, होता नहीं पुराना ॥ १ ॥
कहीं ग्राम की मैं बस्ती, चींटी कहीं पै हस्ती।
सबमें है मेरी मस्ती, है रूप मेरे नाना ॥ २ ॥
न बिगड़ूँ बना अचल मैं, मायापती अमल मैं।
षट् ज्योति में अटल मैं, होता नहीं अभाना ॥ ३ ॥
गावे "श्री नारायण" मैं ओत प्रोत चिद्घन।
"स्वामी चेतन" की वाणी अनुपम, जाना उसी ने जाना ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन-१८०

तर्ज—मन बृन्दावन चाल बसो रे........ ....।

आत्म रूप पिछान के प्यारे, आत्म माही रहो मतवारे ॥ टे० ॥
कोई न अपना सुनो मन मेरे, काहे को जग में भरमे रे ॥ १ ॥
चार दिन का जीवन न संग कछु जावे, काहे की तकरार करे रे ॥ २ ॥
उड़त कपूर ज्यों जाय जवानी, आवे बुढ़ापा जोर नहीं रे । ३ ॥
तन भी पराया तो फिर कौन अपना, रैन का स्वप्ना जगत सब प्यारे ॥ ४ ॥
कहे "नारायण" बहु दिन सोया, अब जागो मत देर करो रे ॥ ५ ॥

—:•—

भजन-१८१

तर्ज—तेरे पूजन............................।

देख सभी नर-नारी में अनुपम एक महान, हूँ मैं सच्चिदानन्द भगवान ॥ टे० ॥
साक्षी स्वरूप अजन्य अविनाशी अनंत अखंड अद्वैय सुखरासी।
तीनों कालों का प्रकाशी, सबसे न्यारा सबमें वासी।
त्रिगुणातीत अजब तेरी माया, परमानन्द सुखखान -२- ॥ १ ॥
जल थल नभ और अग्नि पवन, अस्ति भांति प्रिय मैं जन-जन में।
स्थूल लिंग अरु मैं कारण में, नाम रूप में जड़ चेतन में।
मैं ही सबमें व्याप रहा हूँ, आत्म आलीशान -२- ॥ २ ॥
मैं ही फूल वक्ष सब डाली, मैं ही सिंचू बन के माली।
चारों ओर मेरी हरियाली, मैं ही दीपक मैं ही दीवाली।
बिना हाथ जग खेल रचाया निर्द्वंदम पहचान ॥ ३ ॥
तीन भेद मैं हूँ मैं न्यारा, "श्री नारायण" निर्गुण अविकारा।

अव्यक्त अचल निर्मल निरधारा अजर अमर "चेतन" गुरु हमारा।
आदि अन्त से रहित सदा मैं -२-, सब घट एक समान -२- ॥ २ ॥

—:०:—

भजन–१८२

मेरे रूप महान दरश कर मन प्यारे ॥ टे० ॥
कहीं चंदा हूँ चकोर कहीं पर, कहीं ऊंचा असमान ॥ १ ॥
जननी जनक नहीं कोई मेरा, अनघड़िया भगवान ॥ २ ॥
ब्राह्मण चत्री वैश्य शूद्र पुनि, कहीं ज्ञाता कहीं ज्ञान ॥ ३ ॥
कहीं निर्धन धनवान कहीं पर, कहीं स्वामी परधान ॥ ४ ॥
सूरज में प्रकाश रूप मैं, सतचित आनन्द खान ॥ ५ ॥
कहीं चमकूं कहीं महकूं मैं ही, सब घट मुझको जान ॥ ६ ॥
नभ मंडल में बादल मैं ही, नाम रूप की जान ॥ ७ ॥
कहे "नारायण" "चेतन" ज्योति प्रगटे सारे जहान ॥ ८ ॥

—:०:—

भजन–१८३

सब रूप मेरे मत भूलो रे -२- ॥ टे० ॥
कहीं सागर जल वृत्त लता फल, देख -२- कर फूलो रे ॥ १ ॥
मैं ही ब्रह्मा मैं ही विष्णु, मैं ही मुरली वालो रे ॥ २ ॥
अपना आप सभी को लख के, निजानंद में झूलो रे ॥ ३ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु द्वैत मिटाया, नारायण हर्षाया रे ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१८४

प्यारा आतम देश अपार, सुन्दर सुखदाई भंडार।

कोई -२- ही जाते हैं धीर वीर वर ॥ टे० ॥

कोई धनदारा को प्रीति में अटका, कोई खान पान में दिन-रात भटका।

कहीं ममता की दीवार, कहीं कुल का हंकार ॥ १ ॥

कोई रुक जावे मान बड़ाई में, कोई फंस जावे प्रेम की लड़ाई में।

कहीं कामना अपार, कहीं क्रोध की फुकांर ॥ २ ॥

कोई अटका व्रत जप अरु तप में, कोई अटका है निज ज्ञान गप में।

कहीं वैराग का हंकार, कहीं त्याग का विचार ॥ ३ ॥

कोई नाम रूप की माया में भूला, कोई मन मोदक शब्दों में फूला।

कहीं करनी का गुमान, कहीं कथनी का अभिमान ॥ ४ ॥

कोई रुक जावे माला घुमाने में, कोई रुक जावे टालियां बजाने में।

कहीं निज का अज्ञान, कहीं भक्ति का गुमान ॥ ५ ॥

"श्री नारायण" जागो रे भाई, सारी अटक है संशय न राई।

प्यारे जीत चलो संसार कर लो मन को ब्रह्माकार ॥ ६ ॥

—:०:—।

भजन—१८५

तर्ज—सौ साल पहिले ....।

सत अविनाशी मैं भरपूर था ॥ २ ॥

आज भी हूँ और आगे रहूँगा ॥ टे० ॥

नाम रूप का मैं एक आधार हूँ -२-।

शरीरों का ही सुन्दर श्रृंगार हूँ ॥ १ ॥

राम कृष्ण से मैं मिला न जुदा हूँ।
सारे जगत का मैं ही खुदा हूँ ॥ २ ॥
सबसे निराला मेरा स्वरूप है।
जाने न कोई महिमा अनूप है ॥ ३ ॥
किसको कहूँ और किसको बताऊं।
दूजा न कोई किसको सुनाऊं ॥ ४ ॥
आनन्द मेरा अपरम्पार है।
मेरे लिये ही सबकी पुकार है ॥ ५ ॥
"स्वामी चेतन" गुरु दिया ज्ञान प्यालो।
कहे "नारायण" द्वैत निकाला ॥

भजन–१८६

अपनी मस्ती में जो निज मन को डुबा देते हैं।
वो हर ओर से निज मन को बचा लेते हैं ॥ टे० ॥
बड़ी अनुपम है ये मस्ती, कहो क्या कहिए।
वे खुद हँसते हैं, औरों को हँसा देते हैं ॥ १ ॥
नहीं आ सकती दुःखों की घटाएं उन पर।
वे सब जग के दुःखों को भुला देते हैं ॥ २ ॥
उनके दिल को कभी चिंता न जला सकती है।
टूटी झुपड़ो में भी वे निश्चिंत हुए सोते हैं ॥ ३ ॥
ज्ञान अग्नि से जिन्होंने कर्मों का ढेर जलाया।
कष्ट उठाने फिर वे नहीं लौट यहाँ आते हैं ॥ ४ ॥

कहे "नारायण" "स्वामी चेतन" को शरण जो आते।
वह ज्ञानी बन निज सुख में समा जाते हैं ॥ ५ ॥

—:o:—

भजन—१८७ संस्कार)

वाह रे शुद्ध संस्कारों की -२-। जिन खोज कराई निज के धन की ॥ टे० ॥
दीन भाव से मुक्त हुआ मैं, मौज उड़ाऊं निज आनन्द की ॥ १ ॥
मिथ्यत्व हटा ब्रह्म दर्शन कीन्हा, मिट गई सब संसृति मन की ॥ २ ॥
सारभूत इक वस्तु जानी, चाह नहीं कुछ जानन की ॥ ३ ॥
भेद छेद कर खेद मिटाया, प्राप्ति कराई आतम धन की ॥ ४ ॥
नेति-नेति भी लिया पहचानी, मेहर हुई "स्वामी चेतन" की ॥ ५ ॥
कहे "नारायण" भरम सब खोयो, चाह मिटी विषयानन्द की ॥ ६ ॥

—:o—

भजन—१८८

राग—मेरी छोटी-सी नाव........................ ...।

गुरु मिले हैं उदार, शुद्ध डाले संस्कार।
जीवन का जाना सार, करुणा हुई गुरुदेव की ॥ टे० ॥
मैं शुद्ध अजर, अविनाशी, सब दुःखों की कट गई फाँसी।
मैं हूँ चेतन स्वरूप, निश्चय किया ब्रह्मरूप ॥ १ ॥
ना मात तात कोई मेरा, मैं तो एक अकेला यह टेरा।
दिया सबसे नाता तोड़, आत्म से लिया जोड़ -२- ॥ २ ॥

गुरु ने शब्दों की चोट लगाई, भाव नारी से पुरुष बनाई।
पाया आत्म अहंकार, होमें को दिया मार ॥ ३ ॥
"नारायण" अनोखा धन पाया, "स्वामी चेतन" ने मुझको जगाया।
धन ऐसे संस्कार भागे कामादि विकार ॥ ४ ॥

———

भजन–१८९

तर्ज—गुरुजी हमारे बड़े………… ।

शुद्ध संस्कारों को नित चाहते हैं। जो भूले पथिक को जगा देते हैं ॥ टे० ॥
अनुपम औ सुन्दर अति सुखदाई, "तत्वमसि" गुरु वाक्य सुनाई।
किससे मिलूँ करूँ किससे जुदाई, सब मेरा रूप अब यही गावते हैं ॥ १ ॥
सत चित आनन्द रूप दृढ़ाई, नाम रूप से अब दृष्टि उठाई।
गुरु ने दिया द्वैत भाव हटाई, कुमार्ग जाते सुमार्ग आवते हैं ॥ २ ॥
"स्वामी चेतन" के शरण में जो आया, "श्री नारायण" को परम पद पाया।
ऐसे पद को विरले ही जानते हैं ॥ ३ ॥

—:०:—

भजन–१९०

गंदे संस्कारों से बेगाना हो गया।
स्वप्ने के संसार में दिवाना हो गया ॥ टे० ॥
खोई नाम रूप बीच अपनी निशानी,
लेके इक दायरे का बना अभिमानी।
पौरुष को भूल के जनाना हो गया ॥ १ ॥

जीवन बिगाड़ा पाँच विषयों के संग में,
शब्दों की कृपा से रंग गया चाम रंग में।
झूठ संग सत्य भी खाना हो गया ॥ २ ॥
मात तात भाई बन्धु ज्ञान हुआ सर्व का,
मैं तेरा तू मेरा हो गया प्रपंच का।
ब्रह्मरूप आपका भुलाना हो गया ॥ ३ ॥
भौतिक उन्नति करी, आज तक गाफिले,
शुद्ध-बुद्ध भूल गये, शब्दों के मामले।
"नारायण" को "चेतन" गुरु पूरा मिल गया ॥ ४ ॥

—:०:—

भजन—१९१

तर्ज—राम मुझमें रम .... ।

शब्द लौकिक मत सुनो मन, जन्मों के यह मूल हैं।
दीन करते आपको अरु श्रेय पथ में सूल हैं ॥ टे० ॥
था प्रगट निज रूप अपना, गुप्त का नहीं काम था।
संस्कारों की कृपा से, आत्म को गये भूल हैं ॥ १ ॥
भाव गंदे वहिर्मुख के देह मैं हूँ ठसा लिया।
"शाहनशाही" राज्य अपना, कर दिया सब धूल है ॥ २ ॥
जैसे पड़ते संस्कार, वैसा ही जीवन होवता।
शुद्ध से शुद्धि बने- सब ग्रंथ का यह मूल है ॥ ३ ॥
शुद्ध हूँ मैं बुद्ध हूँ, ऐसे अलौकिक वाक्य से।
जीवन बने निर्लेपमय, जैसे कमल का फूल है ॥ ४ ॥

"चेतन" प्रभु के वाक्य सुन, जग के संस्कार निकार दे।
कहे "नारायण" जाग प्यारे, क्यों करे नित भूल है ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१९१ (अहिंसा पर)

यदि सुखमय जीवन करना है तो दैवी गुण अपना लेना।
जीवन में आनन्द लेना है, तो दैवी गुण अपना लेना ॥ टे० ॥
निज मन वाणी अरु काया से, न कभी भी किसी का बुरा करना।
जब भला किसी का कर न सके, तो बुरा किसी का क्यों करना ॥ १ ॥
है दिल को दुखाना पाप बड़ा, सबके दिल में प्रभु रहते हैं।
जन-जन से करके प्रेम सदा, जीवन को नम्र बना लेना ॥ २ ॥
मीठी वाणी सुन्दर लगती,, मीठी वाणी प्यारी लगती।
मीठे ही वचन सुना सबको, मन की कटुता को मिटा देना ॥ ३ ॥
है मान सदा ही देने का, लेने की वस्तु नहीं भाई।
सम्मान सभी को देना सदा, अपमान किसी का मत करना ॥ ४ ॥
सतगुरु की कृपा दृष्टी से, मन मंदिर में भगवान मिला।
कहे "नारायण" स्वामी चेतन का, सुन्दर उपदेश कमा लेना ॥ ५ ॥

—:०:—

भजन—१९३

तर्ज—सृष्टि है रूप मेरो ....।

सच्चा सुख दर्शाया, सतगुरु ने प्यारे बचनों से ॥ टे० ॥
अपने घर पहुँचाया, सतगुरु ने प्यारे बचनों से ॥ १ ॥

शांत चित्त सम तप नहीं जग में, सतगुरु ने बतलाया।
घर बैठे तपी बनाया, सतगुरु ने प्यारे बचनों से ॥ २ ॥
चिन्ता सम कोई आग नहीं है, चित्त को जलाने वाली।
ठंडा ठार बनाया, सतगुरु ने प्यारे बचनों से ॥ ३ ॥
अज्ञान सम कोई दुख नहीं है, चौरासी देने वाला।
अज्ञान का गला उड़ाया, सतगुरु ने प्यारे वचनों से ॥ ४ ॥
मान जीठानी दुरानी भिन्न-भिन्न, लड़ता था अरु जलता था।
सबको अपना बनाया, सतगुरु ने प्यारे बचनों से ॥ ५ ॥
कहे "नारायण" स्वामी चेतन गुरु ने, निर्भय सिंह बनाया।
द्वैत का जाल हटाया, सतगुरु ने प्यारे बचनों से ॥ ६ ॥

—:०:—

भजन—१९४

आज भागां स पाई है सतगुरु की नगरी।
सतगुरु की नगरी ये बहणो हर की नगरी ॥ टेर ॥
गुरु चरणों में ज्ञान की गंगा, तीनों ताप नशावे।
हृदय की ज्वाला को बहनों, सतगुरु तुरत बुझावे।
दुविधा सारी मिट जावे हे गुरां की नगरी ॥ १ ॥
गुरु चरणों में आनन्द झरना, झरता है दिन रैन।
सतगुरु माता ज्ञान प्रदाता, बोले मीठे बैन।
परमानन्द मिल जाव हे गुरां की नगरी ॥ २ ॥
विवेक जनों की सभा यहाँ पर, गा रही निज के गीत।
आज सखी हमें यहाँ मिले हैं, परमार्थ के मीत।
हीरा मोतीड़ा बरस हे, गुरां की नगरी ॥ ३ ॥

"स्वामी चेतन" हरि सच्चे लाल की साँची परख बताव।
"कहे नारायण" लाल परख बा जो कोई प्रेमी आव।
वो तो जौहरी ही बन जाव, हे गुरां की नगरी ॥ ४ ॥

—:o:—

भजन—१९५ (अविस्मरणीय दिवस)

भगाये तूने दुश्मन सभी, बिन खड्ग बिना ढाल।
विलक्षण मति के प्रभुजी, तूने कर दिया (कमाल) निहाल ॥
चरणों में तेरे मम है प्रणाम ॥ टेर ॥
शेरों का भी वो शेर था, कालों का भी था काल।
विलक्षण मति के प्रभुजी······॥ चरणों में ॥ टेर ॥
जिस दिन तेरो बिगुल बजी, सब प्रेमी आगये।
चरणों में तेरे कोटि-कोटि, प्राण झुक गये ॥
दिशायें सभी ही गूंज उठी, बिन सुर बिना ताल।
विलक्षण मति·········॥ चरणों में० ॥ १ ॥
चरणों में तेरे आने से, नादां बने विद्वान।
तेरी दिव्य ज्योति से, हैवान बने इन्सान ॥
बेगर्ज बेफर्ज तूं था बेमिसाल ॥
विलक्षण मति·········॥ चरणों में० ॥ २ ॥
तूने सदा दर्द दिलों की, सुनी करुण पुकार।
भव रोगियों को दिया तूने, मां से भी बढ़कर प्यार।
गरीब, अमीर, दुश्मन मित्र, थे तुझे सभी समान ॥
विलक्षण मति·········॥ चरणों में० ॥ ३ ॥

नामधारी सभी बड़ों-बड़ों का, मिटाया तूने अभिमान।
चरणों में तेरे आके बचा, नहीं कोई अरमान।
चरणों के तेरे पर्श से, पत्थर भी बने लाल॥
विलक्षण मति········ ॥ चरणों में० ॥ ४ ॥

कभी ना भूल सकेंगे हम, जो है तेरा उपकार।
कण-कण में भर गया है तूं, तेरा अमित प्यार।
आंधी में भी जलती रहे, प्रभुजी तेरी मशाल॥
विलक्षण मति········ ॥ चरणों में० ॥ ५ ॥

तैयार तूने जो किये, तेरे कई लाल।
दमभर करेंगे पूर्ण उनको, जो थे तेरे सवाल।
बेजान को भी देगें जान, तेरे बड़े ख्याल॥
विलक्षण मति········ ॥ चरणों में० ॥ ६ ॥

जिस दिन लगी समाधि तेरी, रोया था महाकाल।
हमारी क्या बिसात, तेरे लाल थे बेहाल।
कैसे भला भूलेंगे हम, तूने जो की संभाल॥
विलक्षण मति········· ॥ चरणों में० ॥ ७ ॥

"स्वामी चेतन" गुरु हमारे थे जग में बड़े महान।
"नारायण" चरण तुम्हारे में करता पुनः प्रणाम॥
भक्तों को दे गये प्रभु, गये प्रभु अपना निराला धाम॥ ८ ॥
विलक्षण मति के प्रभुजी, तूने कर दिया कमाल।
चरणों में तेरे मम है प्रणाम।

—:o:—

भजन—११६

गुरु ज्ञान का दीप जलाया रे, महिमा का पार न पाया रे ।।टे०।।
कभी न सोचा था सतगुरु, ऐसी लीला दिखलायेगें ।
अद्भुत दृश्य दिखाया रे ।। महिमा ।। १ ।।
हृदय की तप्त बुझा कर के, शान्ति तृप्ति दी सतगुरु ने ।
घट-घट में राम दिखाया रे, महिमा······।। २ ।।
व्यवहार सिखाया सतगुरु ने, सदाचार सिखाया सतगुरु ने ।
समता का पाठ पढ़ाया रे, महिमा······ ।। ३ ।।
स्वामी चेतन श्री सतगुरु जी का, कहे "नारायण" मैं आभारी हूँ ।
जिन मोह से मुक्त कराया रे, महिमा······ ।। ४ ।।

—:•—

अरदास

दुख भंजन प्रभु सुखकारी । सुन दाता अरदास हमारी ।।
मात-पिता तुम बांधव मेरे । तुम स्वामी हम सेवक तेरे ।।
जन्म-जन्म के प्रभु दुख मिटाये । अबिनाशी प्रभु घट में पाये ।।
जग नियंता तूने जग विस्तारा । डाली फूलों में रूप तुम्हारा ।।
घट-घट में तेरा आभास । सूर्य में तेरा प्रकाश ।।
हमरी रक्षा तेरे हाथ । हम बालक हैं दीन अनाथ ।।
दीन बन्धु तुम दीन दयाल । सब जग का तू है प्रतिपाल ।।
तुम पालक सब जग के स्वामी । हे परमेश्वर तुम अन्तर्यामी ।।
भव तारण प्रभु चरण तुम्हारे । पापी धर्मी सबतू ने तारे ।।
आप करो करावन हारे । भक्तन के सब काज सँवारे ।।
"श्री चेतन" तुम पर बलिहारी । "नारायण" है शरण तुम्हारी ।।

—:०:—

श्री श्री १०८ ब्रह्मस्वरूप श्री सद्गुरुदेव जी की

अमर कहानी

१८ नवम्बर, १९६९

सुनो-सुनो ओ प्रेमी भक्तों, सतगुरु जी की अमर कहानी।
जिनकी खुद मस्ती अनुपम थी, अनुपम थी जिनकी वाणी ॥

१ शाहपुर छावनी में प्रगट हुए थे, मेरे श्री गुरुवर स्वामी।
बचपन का शुभ नाम इनका, चिमन लाल था नामी ॥
ज्वालामल थे इनके पिता, और मात अनोखी थी न्यारी।
जिनकी कूख से प्रगट हुये, ये सूर्य रूप गुरु अवतारी ॥
भाई बहन में सबसे छोटे, अनुपम थे ये गुणखानी ॥ १ ॥ सुनो० ॥

२ बचपन से ही इनके दिल में, सच्चे गुणों का आगर था।
दुःखियों को देख दुःखी होते थे, दिल करुणा का सागर था ॥
प्रारम्भिक जीवन से ही वे, करते थे सत्य का व्यवहार।
बढ़ा हुआ था भारत में तब, अबलाओं पर अत्याचार ॥
धर्म की रक्षा करने हेतु, आन्दोलन में कूद पड़े।
स्वजनों की ममता बिसार के, कोमल आयु में निकल पड़े ॥
अन्याय के उन्मूलन के पीछे, जेल में स्वयं गये स्वामी।
जेल में एक मित्र मिला, तब कंकड़ से लिख हिन्दी जानी ॥
॥ २ ॥ सुनो० ॥

३ जेल से जब घर लौटे तो, दिल में पूर्ण वैराग्य हुआ।
शुभ अवसर आने के लिए, तब शीघ्र ही भाग्योदय हुआ ॥

पूर्ण गुरु की खोज में फिरते, रहते थे श्री गुरु मेरे।
यही गीत गाते रहते थे, ईश्वर मैं सहारे तेरे ॥
छोटी-सी कोमल आयु में, वैरागी हो गये भारी।
निज परम तत्व के पाने को जिन, देह सुखा दी थी सारी ॥
देवयोग से इनको मिल गये, पूर्ण सतगुरु ब्रह्मज्ञानी।
इनको श्रद्धा बुद्धि देख के चकित हुए इनके स्वामी ॥ ३ ॥ सुनो० ॥

४ भगवान हरि श्री इनके गुरु ने, इनको अनोखा नाम दिया।
चिमनलाल पलट के उनने, "श्री चेतन हरि" प्रगट किया ॥
कई साल रह गुरु चरणों में, आश्रम भर की सेवा की।
वर्त्तमान स्वामी गोविन्द जी से, इनने ब्रह्मविद्या सीखी ॥
निर्माण दयानिधि परम प्रभु की, चमक रही है निशानी ॥४॥सुनो०॥

५ आजादी की लड़ाई हुई तब, अपने साथ से बिछुड़ गये।
लावारिस औ अनाथ जनों की, सेवा करने लग गये।
परोपकार करने की इनमें, थी भावना बड़ी भारी।
ग्लानि इनको कैसे छू पाती, सेवा करते थे सारी ॥
फिर केशव जी के साथ इन्होंने, कई तीर्थों में भ्रमण किया।
और, राँची में पधारे प्रभुजी, हमारे पुण्यों ने साथ दिया ॥
ज्वालादत्त जी की फुलवारी में, बही ज्ञान गंगा धारा।
बड़भागी ही पी सके, उस गंगा का पावन पानी ॥ ५ ॥ सुनो० ॥

६ राँची, पुरुलिया, दरभंगा, गिरिडीह, क्रमशः जगाया सारा बिहार।
किस्मत के मारे मूर्खजनों में, इससे मच गया हाहाकार ॥
वे भला कब सह सकते थे, सदा पीड़ितों का उद्धार ॥
जाने कितनी बार उन्होंने, की अपशब्दों की बौछार ॥

मौनी गुरुवर शांत भाव से, सहते थे उनके प्रहार।
देख के इनकी सरल मूरत को, झुक गये सबके हथियार॥
हर बार विफल हुई चेष्टा, विरोधी जनों की मनमानी।
ऋषि मुनि सब हारे (गये) तब, वे तो थे अज्ञानी ॥६॥सुनो०॥

७ इतने पर भी उन मूर्ख जनों को, हुआ नहीं पूरा संतोष।
न्यायालय में जाकर के उनने दिखाया अपना रोष॥
प्रभु-प्रेमी भी तब तो भला, कैसे चुप रह सकते थे।
अपने जीते जी सत्य का, अपमान नहीं सह सकते थे॥
हाईकोर्ट में भी जाकर के, विरोधिजनों ने अपील करी।
उनकी अपील थी बड़ी बुरी, और झूठी बातों से भरी॥
हर जगह ही उन मूर्खों की, हुई बड़ी करारी हार।
सत्य की ही जीत हुई, और सत्य की ही थी होनी ॥ ७ ॥ सुनो० ॥

८ समझने में किसी को ना कठिनाई हो, इसका उन्हें था बड़ा ख्याल।
अति सरल भाषा में बताते, थे वे सब वेदों का सार॥
जिस मर्म जिस ज्ञान के हेतु, ऋषि, मुनि सब पचते हैं।
बरसों तक सब जिसके लिये, कठिन तपस्या करते हैं॥
उस भारी मर्म को उनने, अति सरल ही रूप दिया।
बरसों के जमे अज्ञान पड़दे को, एक पल में फाड़ दिया॥
इनके चरणों में आके जिसने, खुद की सत्ता पहचानी।
वही धन्य बन सका, सही अर्थों में जो है अमानी ॥८॥सुनो०॥

९ जगह-जगह शाति भवनों का, उनने ही निर्माण कराया।
दुःखी जनों के उद्धार में उनने, अपना पूरा योग दिया॥
इसी तरह पूरे बिहार और, वेस्ट बंगाल भी चेताया।
जो प्राणी भूले भटके थे, उनको अपना रूप दिखाया॥ ॥
कितने ही योग्य जनों को, अपने सम तैयार किया।
एक-एक भवन में उनने, योग्य पहरेदार दिया॥

प्रेमी जनों की तीव्र पुकार से दर्शन देने आते थे।
यूं तो ऋषिकेश में रहते वही थी उनकी गुरु भूमि ॥९॥सुनो०॥
१० औरों का दर्द सदा उनके, दिल ने खुद महसूस किया।
जन कल्याण के पीछे प्रभु ने, अपना कभी ना ख्याल किया॥
खुद में खुद को समाने की, वे कई दिनों से सोचते थे॥
पर उनकी माया से कोई, कभी नहीं चेतते थे॥
छिपे रूप से उनने कई, बार सबको चेताया।
पर उनके भेव को कोई, भी कभी ना लख पाया।
कैसे जान पाते हम प्रभु ने, अपने मन में क्या ठानी ॥१०॥सुनो०॥
११ आठ सितम्बर शाम को प्रभु जी, भगवान भवन से बाहर आये।
और गंगा की ओर धीरे-धीरे, कदम बढ़ाये॥
पर उस दिन होनी अपना, रूप बदल कर आई।
न जाने उस दिन प्रभुजी के, मन में क्या थी समाई॥
गंगा की अमित लहरों में, चुपचाप जाके समाये।
प्रेमी समूह दौड़ा बहुत पर किसी के हाथ न आये।
गंगा के किनारे सतगुरु के भगवाँ वस्त्र पाये।
उनको पाके धीर हुआ गुरु गंगा में ही समाये॥
जाओ प्रभुजी -२- करुणा क्रन्दन उभरा।
युग-युग तक न भूल सकेंगे, हम अहसान तुम्हारा॥
"गुरु गोविन्द" प्रभु समझाते हैं, "चेतन" अमर सदा ही है।
कहे नारायण प्रेमी बहिनों कण-कण ज्योति समाई॥
याद रहे यह अमर कहानी, इसको भूल न जायें हम।
गुरुवर ने जो दीया जलाया, उसकी ज्योति बढ़ाये हम॥
जय गुरुवर की जय प्रभुवर की बोलों सब जन जय गुरुवर,
जय गुरुवर...

एक भावुक के उद्गार

बिछुड़े गुरुदेव मिले कैसे ॥ टेक ॥

सामान्य गुरु सर्वत्र खड़े, साकार स्वरूप मिले कैसे ॥ १ ॥

प्रगट गुरु बिन ज्ञान कहाँ, बिन ज्ञान आराम मिले कैसे ॥ २ ॥

सब घट में सतगुरु बोल रहे, पर वो गुरु प्यार मिले कैसे ॥ ३ ॥

तुम सुषुम जल से नहाते थे, गुरु ठंडी गंगा में गये कैसे ॥ ४ ॥

प्रभु कहके गये घूम कर आऊं, पर निर्मम गुरु आते कैसे ॥ ५ ॥

तन के वस्त्र भी उतार गये, ऐसे वैरागी मिले कैसे ॥ ६ ॥

गंगा तूं सबकी सुखदाता, (मेरे) प्यारे गुरुदेव लिये कैसे ॥ ७ ॥

मिन्टों में स्वप्न दिखा करके, गंगा लहरों में छिपे कैसे ॥ ८ ॥

दादा की गोद में सौंप हमें, गुरु आप असंग हुये कैसे ॥ ९ ॥

"स्वामी गोविन्द" का प्यारा धन था, सबसे ज्यादा उनपर मन था ॥१०॥

"स्वामी भजनान्द" का प्यारा सखा, "संत प्रेमसिंहजी" का दुलारा सखा ॥११॥

'स्वामी शाश्वतानन्दजी' का हार्दिक सखा, संत हसरूपजी का मार्मिक सखा॥१२॥

"संत फकीरसिंहजी" का जीगरी सखा, सबके मध से निकले कैसे ॥१३॥

कहे "नारायण" "स्वामी चेतन" ने, जग को उज्वल किया कैसे ॥१४॥

—:०:—

* श्रद्धांजलि *

ब्रह्मलीन सतगुरु देव के प्रति श्रद्धा के फूल—चौपाई

सतगुरु ज्योतिम ज्योति समाये, कैसे कहूँ कुछ कहा न जावे।
सतगुरु लीला अजब दिखाई, तृण सम देह गंगा में बहाई॥
दादा गुरु के परम दुलारे, भवन निवासियों के अति प्यारे।
स्वामी गोविन्द हरि की बांह पियारी, छोड़ गये सब प्रीत बिसारी॥
सतगुरु मेरे पर उपकारी, दास सदा उनके आभारी।
कष्ट अपार भक्तन हित उठाया, भारत में ज्ञान डंका बजाया॥
बिहार में आश्रम बनवाये, भक्तों के सब दुःख मिटाये।
कोमल सरल अतियन्त दयाला, जग में कर गये ज्ञान उजाला॥
सदा अमर श्री सतगुरु मेरे, साक्षीरूप कर सबके नेरे।
धन्य मेरे सतगुरु धन तेरी माया, आश्चर्य जनक आदर्श दिखाया॥
हम भी चले प्रभु राह तुम्हारी, यही श्रद्धांजलि भेंट हमारी॥

॥ ॐ ॥

* श्री श्री १०८ श्रीमान *

* पूज्य स्वामी चेतन हरि जी महाराज का *

जीवन चरित्र

परम पूज्य वेदान्त केशरी श्री गुरुदेव जी महाराज संसार के दुःखी जीवों के हृदय की अशान्ति एवं दुःख की घनघोर घटाओं को हटाने के लिये सन् १९०५ ई० में शाहपुर छावनी में "सूर्य रूप" से प्रकट हुये थे। यह गाँव पश्चिमी पंजाब के सरगोधा जिले में पड़ता था। लेकिन सन् १९४७ ई० में पाकिस्तान में चला गया। श्री गुरुदेव की माता का शुभ नाम "श्रीमती अनोखी बाई" था, एवं पिता जी का शुभ नाम "श्री लाला ज्वालामल" जी था। श्री स्वामी जी का भी बचपन का शुभ नाम "श्री चिमनलाल" जी था। आगे चलकर ये एक महान प्रतिष्ठित एवं प्रभावशाली "संत चेतन हरि" के नाम से प्रसिद्ध हुये। इनके चार भाई एवं दो बहनें थीं। ये अपने परिवार में सभी भाई बहनों से छोटे थे। श्रीमती जानकी देवी के द्वारा इनकी बाल्यकाल की लीलाओं का ज्ञान हुआ।

१ प्रारम्भिक जीवन

श्री स्वामी जी का प्रारम्भिक जीवन भी अत्यन्त प्रभावशाली एवं चित्त आकर्षक था। शुरू से ही इनके विचार भी अत्यन्त शुभ थे। "होनहार बिरवान के होत

चिकने पात" वाली लोकोक्ति इन पर पूर्णतया चरितार्थ थी। ये ईश्वर प्रेरणा से बचपन काल में अपने मित्रों के साथ खेलते समय भी तत्वज्ञान रूप गूढ़ रहस्य का परिचय देने वाली वाणी सहज ही कह देते थे। एक समय बालकों के साथ खेलते हुये, स्वामी जी ने बच्चों से कहा, कि मुझे कोई छुओ तो जानूँ—सब बच्चे यह सुनकर छूने दौड़े—इनके पाँव को छुआ—तो इन्होंने कहा यह तो पैर है, मुझे छुओ तो जानूँ—फिर बच्चों ने हाथ छुआ—तो स्वामी जी महाराज बोले यह तो हाथ है—मुझे छुओ तो जानूँ—फिर बच्चों ने इनकी छाती को स्पर्श किया। आपने कहा यह तो छाती है, फिर बच्चों ने पीठ छुआ—तो आप बोले कि यह तो पीठ है —पुनः मस्तिष्क छुआ, तो बोले यह तो मस्तिष्क है, मुझे छुओ न? इस प्रकार बालकों के स्पर्श करने पर श्री स्वामी जी महाराज ने अपने को प्रत्येक अंग उपांगों से भिन्न सिद्ध किया। बालक स्तम्भित हो गये, क्योंकि वास्तव में परब्रह्म को कौन छू सकता है। इसलिये हमारे शास्त्रकारों ने ब्रह्मात्मा को अवांग मनसगोचर कहा है—

"कानन को नाद नाहीं, जीभ को स्वाद नाहीं।
बचनन को वाद नाहीं, जुगति से जो कहे।
आँख को दिखाऊं नाहीं, नाक को सुघाऊं नाहीं।
कर को गहाऊं नाहीं, पाई की न रोक है।
मन कर ज्ञान नाहीं, बुद्धि अनुमान नाहीं।
दूसर प्रमाण नाहीं, प्रगट ऐसे को कहे।
असत प्रपंच कैसे, सत पहिचाने आप।
आपे सुख जाने दूजो, मानो बिन को कहे।

छन्द—

छूता नहीं मैं देह फिर भी देह तीनों धारता
रचना करूं मैं विश्व की, नहीं विश्व से कुछ वास्ता।

करतार हूँ मैं सर्व का, यह सर्व मेरा कार्य है।
फिर भी न मुझमें सर्व है, आश्चर्य है, आश्चर्य है।

इस प्रकार इनकी अनेक विचित्र लीलायें हैं।

२ नम्रता

ये इतने विनम्र हृदय थे, कि इनके मित्रगणों के बीच जब आपसी फूट हो जाती थी तो किसी न किसी युक्ति द्वारा परस्पर मेल करवा देते थे, और ये बेकसूर निरपराधी होते हुए भी अपने मित्रों की भूलों को स्वयं स्वीकार कर अपराधी बन जाते थे, और घर में बड़े भाई या माताजी कुछ भी कहते तो हाथ जोड़ कर हाँ जी करके भूल स्वीकार करते थे। विनम्र भावों द्वारा पत्थर से दिलों को भी पानी कर देते थे। वास्तव में नम्रवान ही संसार में जिन्दा माना गया है—

"झुकता है वही जिसमें जान है।
अकड़ तो मुर्दे की पहचान है॥"

संसार में फूट करा देना, लड़ाई करा देना, अकड़ दिखाना तो अनेकों ही जानते हैं। परन्तु टूटे दिलों को मिला देना, समता सिखा देना, झुकना तो कोई-कोई महापुरुष ही जानते हैं।

"सुई सुहागा संत जन, तीनों ही मेलन।
कैंची चक्कू उस्तरा, तीनों ही बिछुड़ेन॥"

ये सहनशील, विरक्त, मेधावी प्रकृति के थे। अलौकिक तथा अद्वितीय विचार जन्म जात ही थे। इनकी कौमार अवस्था का कोई परिचय न मिल पाया। क्योंकि ये माता-पिता, कुल जन्मप्रदेश, जन्मतिथि आदि से सम्बन्ध रखने वाली बात पूछने पर भी कभी नहीं बताते थे। इसलिये इनकी बाल्यावस्था का वृतांत इससे अधिक उपलब्ध नहीं हो सका।

३ व्यवहारिक जीवन में सत्यता

इन्होंने व्यवहार काल में कुछ लेन देन भी किया। कपड़े की दूकान थी। ये सच्चाई की कसौटी पर खरे उतरते थे। इन्होंने सदा सबके साथ सच्चाई का ही व्यवहार किया। सत्य को लेकर ही सबके सामने पेश होते थे कि जिस सच्चाई को देख सभी मित्रगण मुग्ध थे। एक समय कोई व्यापारी इनको भूल से कुछ अधिक रुपये दे गया तो तत्काल आपने उस व्यापारी की खोज कर सच्चाई के साथ लौटा दिये—

"सज्जन सत्य को चाहते, सत्य का करें व्यवहार।
सत्य के पीछे मर मिटें, सत्य से रखते प्यार॥"

४ त्याग

इनका जीवन त्याग एवं वैराग्य से पूर्ण था। जब इनकी योग्य अवस्था हुई, तो इनके माता-पिता, भाई-बन्धु, एवं सगे सम्बन्धियों ने इनको विवाह करने के लिये काफी जोर दिया, परन्तु किसी हालत में भी इन्होंने स्वीकार नहीं किया। क्योंकि स्त्री आदि सुखसामग्री को श्रेय कर मार्ग में कंटक समझा। जैसे सुग्रीव ने भी भगवान राम को कहा है—

चौपाई—

"सुख सम्पति परिवार बड़ाई, सब परिहरि करिहौं सेवकाई।
ये सब राम भक्त के बाधक, कहहिं संत तव पद अवराधक॥"

उन दिनों स्त्रियों पर अत्याचार किया जा रहा था। गो रक्षा के लिये आन्दोलन चल रहा था। गो रक्षा के लिये जो लोग आगे बढ़ते थे, उन्हें जेल में दे दिया जाता था। उस समय हिन्दू समाज की दशा अति दयनीय थी, इस बात से हम सब परिचित ही हैं। ऐसे समय ही श्री सतगुरु देव जी महाराज गो रक्षा

हेतु स्वयं भी उस आन्दोलन में कूद पड़े, और दुकान से उठकर स्वयं सेवकों के साथ घर वालों को बिना सूचना दिये ही चल पड़े। लोगों ने पीछे से उनकी दुकान को लूट लिया। सारा धन माल लुट गया पर विरक्त श्री सतगुरु देव ने दुकान की तनिक भी परवाह न की। जनता जनार्दन की सेवा के लिये उस जत्थे के साथ आगे बढ़ते चले गये। इनके साथ जितने भी साथी थे, उन सबको बन्दी कर लिया गया। ये मुलतान जेल में करीब छः मास तक रहे। संयोगवश जेल में ही एक अन्य सज्जन पुरुष से भेंट हुई। उनसे मित्रता हो गई। ये सज्जन पुरुष भी उसी जत्थे के एक व्यक्ति थे। स्वामी जी महाराज उस समय तक भी हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ थे। गुरुमुखी एवं उर्दू भाषा का तो इन्हें काफी ज्ञान था। परन्तु उन दिनों इनके गाँव में मातृभाषा सीखने की सुविधा न थी। इसलिये ये मातृभाषा का ज्ञान प्राप्त न कर सके थे। जब उन सज्जन पुरुष को यह विदित हुआ कि हिन्दी भाषा ये नहीं जानते, तो हिन्दी भाषा स्वयं इनको सिखाने का प्रस्ताव रखा। क्योंकि पहली मुलाकात से ही ये सज्जन इनकी आकृति की दिव्य ओज को देखकर पहचान गये थे कि स्वामी जी आगे चलकर एक महान आत्मा होगें। इनके द्वारा काफी जीवों का सुधार होगा, और हुआ भी। ऐसा सोचकर ही उन्होंने इनको हिन्दी भाषा सीखने को कहा। परन्तु विरक्त हृदय होने के कारण ये सदा ही पढ़ने में रुचि नहीं रखते थे। उस समय भी इन्होंने नाही कर दी। लेकिन सज्जन व्यक्ति ने पुनः आग्रह कर इनको हिन्दी सीखने के लिये विवश कर दिया। तो स्वामी जी ने जेल में ही पृथ्वी पर कंकड़ से लिख -२- कर मातृ भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। कुछ दिन जेल में रहकर जब वापिस घर गये, तो इनके जीवन में काफी परिवर्त्तन आ गया। इन्हें एकान्त प्रिय लगने लगा। प्रभु की प्रीति हृदय में जाग गई। दुकान पर जाते, परन्तु काम में विशेष रुचि नहीं रही।

५ लगन

एक दिन की बात है कि श्री स्वामी जी किसी व्यक्ति के यहाँ तक़ादा करने

गये। लेकिन उस व्यक्ति के पास रुपये देने को नहीं थे। वह गरीबी से विवश था। इसलिए स्वयं घर में होते हुए भी अपने बच्चों से बाहर कहलाया कि हमारा पिता घर में नहीं है। श्री सतगुरु देव एक तो लेनदार थे, दूसरी झूठी बात सुन कर कुछ क्रोधित होकर कटु शब्द सुना दिये। पर जब लौटे तब भारी पश्चाताप हुआ। करुणा उत्पन्न हुई, इन्होंने सोचा आज मैंने यह क्या किया। इनका हृदय पश्चाताप से भर गया। आँखों से आँसू बहने लगे। अनेकानेक विचार इनके हृदय स्थल में उठने लगे। ये विचार ही वैराग्य को तीव्र करने के हेतु बन गये। इनको संसार में असारता नजर आने लगी। सत्य की ओर मुँह किया, जगत की ओर से मुड़ गये। हृदय में एक ही लग्न, एक ही जिज्ञासा, एक ही तड़प जाग उठी कि ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो ? नित प्रति मन्दिर में जाते रामायण सुनते। रामायण का पाठ सुनते-सुनते उनका हृदय विह्वल हो उठता। आँखों से छमाछम आँसुओं की धारा बहने लगती। पाठ सुनते-सुनते इतने निमग्न हो जाते, कि सुबह शाम का भी ख्याल नहीं रहता था। यही है प्रेम की निशानी।

चौपाई —

"मम गुण गावत पुलक शरीरा,
गद-गद गिरा नयन बह नीरा॥"

इनका दिनों दिन शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान प्रभु के चरणों में अनुराग बढ़ता गया। ऐसी अवस्था में व्यवहार कार्य भी नितांत छूट गया। भोग पदार्थ विष सम लगने लगे।

चौपाई —

"भव में वही पुरुष बड़ भागी,
इत उत भोग चाह जिह त्यागी।"

दुनियां कहती है धन, स्त्री, पुत्र, मान, प्रतिष्ठा की प्राप्ति भाग्यों से होती है, पर सज्जन वृंद कहते हैं, त्याग वैराग्य की प्राप्ति बड़े भाग्यों से और ईश्वर कृपा से होती है।

दो० —

"जिहिं विषया सगली तजि, लियो भेष वैराग।
कहे नानक सुन रे मना, तिहिं नर माथे भाग ॥"

अब श्री स्वामी जी ऐसी अवस्था में घेर क्या बस्ती छोड़कर जंगल में जाकर एकान्त स्थान में प्रर्थना करते, कि हे प्रभु दर्शन दो, और करुण स्वर से गद -२- होकर गाते थे।

दो० —

"अंधे की लाठी तूं ही है, तूं ही जीवन उजियारा।
जल्दी आके संभाल प्रभो, तेरा ही एक सहारा ॥"

बस इसी धुन में खाना-पीना सोना, हँसना बोलना, पढ़ना लिखना आराम विश्राम सब भूल गये। शरीर कृश एवं पीला पड़ गया। आँखों में आँसू भरे प्रभु -२- रटते थे।

दो० —

"खटका नहीं खान की, चिंता नहीं है पान की।
ममता नहीं है देह की, परवाह नहीं है प्राण की ॥"

इनके हृदय के अन्तः स्थल में अशुभ वासानामय वृतियों के चुभे हुये काँटे निकल गये। विशुद्ध हृदय में एक ही चाह थी, प्रभु कैसे मिले ?

श्री गुरुदेव एक दिन किसी प्रेमी भक्त के पास बैठकर प्रभु चर्चा सुन रहे थे। इतने में कोई इनका पुराना मित्र आया, और इनसे पूछा कि प्रियवर मित्र तुम इतने कैसे सूख गये ? तुमने कौन सी दवाई खायी, मुझे भी बताओ। क्योंकि मैं भी उस दवाई का प्रयोग करूँगा। जिससे मेरे शरीर का मोटापा भी कम हो जाय। ये कुछ न बोले, क्योंकि इन्हें उस समय तो हंसी मजाक कुछ भी नहीं सुहाता था।

दो० —

"नारायण हरि (लग्न) भजन में, यह पांचों नांय सुहात,
विषय, भोग, निद्रा, हँसी, जगत प्रीति बहु बात।"

इनके मित्र की बात के प्रत्युत्तर में पास बैठे प्रेमी भक्त ने कहा कि हे प्रिय बन्धु इससे क्या पूछते हो ? जो दवाई इसने खाई है, उसका प्रयोग तुम नहीं कर सकते।

भाव—इनके हृदय से संसार के भोगों का राग इन्द्रियों के विषयों की आसक्ति, शरीर का मोह उठ चुका है एवं प्यारे प्रभु की याद में या बिरह रूप अग्नि में शरीर को सूखी लकड़ी की भांति जला रहे हैं। इस वैराग्य की कड़वी लगने वाली दवा को तुम कैसे खा सकते हो। फिर ये घर छोड़कर सच्चे गुरु की खोज में चल पड़े।

"सो जन नागर बुद्धि के सागर।
आगर दुःख तजे जू जहाना॥"

६ गुरु सेवा

पूर्व पुण्यों के सहयोग एवं ईश्वर कृपा द्वारा महात्मा श्री रामजी दास जी (भजना नन्द जी महाराज) की सहायता से कोटनक्का में पूर्ण गुरुदेव का मिलाप हुआ। पूज्यपाद श्रीश्री१०८ श्री श्रीत्रिय ब्रह्मनिष्ठ भगवान सिंह जी महाराज ने इनको अपने चरणों में स्थान दिया। और दीक्षा मंत्र देते समय इनसे पूछा कि तुम हमारी शरण में किस प्रयोजन को लेकर आये हो। विद्वान बनने आये हो या मुक्ति पाने के लिये। तो आपने हाथ जोड़ कर विनम्र भाव से करुणाजनक शब्दों में कहा कि हे सद्गुरो मुझे न तो विद्वता चाहिये और न संसारिक पदार्थ। मुझे तो केवल मोक्ष की अभिलाषा है। ऐसा मार्मिक उत्तर सुनकर इनके गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुये और इनको अपने चरणों में स्थान दिया। आपने उनके चरणों में अपना सब कुछ समर्पण कर दिया। जैसा कि कहा है—

दो०—

"पहले दाता शिष्य भया, जिन तन मन अर्पा शीश।
पीछे दाता गुरु भये, जिन नाम दिया बख्शीश॥"

इस प्रकार पुनः ये अपने गुरुदेव के चरणों में रहने लगे। और गुरुदेव के

चरणों में अत्यन्त श्रद्धा के साथ ब्रह्म विद्या, प्राप्ति की ही जिज्ञासा लेकर निर्भिमान होकर सेवा करते थे। क्योंकि ब्रह्म विद्या प्राप्त करने की यही विधि है।

श्लो०—

"तद्विद्धि प्रणि पातेन, परि प्रश्नेन सेवया।
उपदेच्यन्तिते ज्ञानम्, ज्ञानिनस्तत्व दर्शिनः ॥"

इस प्रकार शास्त्र विधि अनुसार कोटनक्का आश्रम में (पश्चिमी पाकिस्तान) में लकड़ी लाना पानी ढोना इत्यादि सेवा भी चिरकाल तक पूर्ण श्रद्धा से करते रहे। इन्ही दिनों के बीच इनके भाई आये उन्होंने इनकी पैत्रिक सम्पत्ति का भाग इनको देना चाहा। परन्तु इनकी अपनी पैत्रिक सम्पति में किंचित ममता भी न रह गई थी। जब सम्पत्ति वितरण के समय इनके भाई इनको हिस्सा कर देने लगे तो अपने भाग का अधिकार इन्होंने सहर्ष अपने भाईयों के नाम रजिस्ट्री करा दी। पुनः गुरु सेवा में लगे रहे। सेवा के साथ-साथ इन्होंनें पूज्यपाद करुणा के मन्दिर श्री श्री १०८ श्री स्वामी गोबिन्द हरि जी महाराज से वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन किया। कुछ दिनों बाद इनके गुरुदेव जी ने इनको भगवाँ वस्त्र विधि अनुसार धारण करा दिये। पुनः गुरु सेवा एवं बिद्याध्ययन में प्रवृत्त रहे।

७ निर्भयता

श्री गुरुदेव इतने निर्भय थे कि मनन के लिये जंगल में जाकर, श्मशानों में जाकर सारी-सारी रात वैठे रहते। मन को हर ओर से निरुद्ध करके, इन्द्रियों का दमन करके आतमानन्द का रसास्वादन करते रहते। इन्होंने काफी दिनों तक अभ्यास में समय दिया। इस प्रकार करीब बारह साल तक कोटनक्का गुरु स्थान में रहे। सन् १९४७ ई० में जब भारत स्वतंत्र हुआ था, तब देश के विभाजन के समय काफी लड़ाईयाँ हुई थी। भारत और पाकिस्तान में आपसी फूट के कारण काफी दंगा मचा, आक्रमण हुये। हिन्दू लोग पाकिस्तान छोड़कर भारत में आने लगे। उसके बाद घमासान युद्ध हुआ था, दनादन गोलियाँ बरस रही थीं। सीमा से बाहर काम करने वाले को शूट कर दिया जाता था। इसी बीच श्री गुरुदेव अपने साथियों के साथ चन्योट रिफूजी

कैम्प के जिला भंग के बाहर कानून एवं सीमा को लांघ कर चले गये। सिपाहियों ने इनको साथियों सहित घेर लिया और कहा कि तुमलोग सीमा के बाहर पाँव रख रहे हो। तुम सब को गोली से उड़ा दिया जायगा। ऐसा कह कर सिपाहियों ने बन्दूकें तान ली। परन्तु (श्री गुरुदेव) ये अचल एवं निर्भय हृदय के थे। बिना हिचकिचाहट के सिंह के समान निर्भय होकर सीना तान दिया और कहा कि हे मेरी निजात्माओं, प्रिय बन्धुओं इस पर गोली सहर्ष चलाओ। दो तीन साथी जो इनके साथ थे, उन्हें पीछे की ओर कर दिया। तो मित्रों ने कहा कि हमें पीछे क्यों करते हो? श्री गुरुदेव ने उत्तर में कहा कि मुझे रोने वाला कोइ नहीं है। अतः तुम लोग निर्भय हो पीछे रहो। परन्तु ब्रह्मवेत्ता को मारने में कौन समर्थ है? ऐसा दृढ़ निश्चय एवं निर्भयता देखकर सिपाहियों के हाँथ-पाँव काँप गये। दिल करुणा से भर गया। बंदूकें हाथ से छूट गयीं, एवं महाराज जी के चरणों में पड़कर क्षमा मांगी और कहा कि हे महात्मन्, हमारी बदूक में वह ताकत नहीं जो आपके जैसे महान पुरुष का वध कर सके। पर हमारा भी क्या कसूर है? हम तो कानून में बंधे हुये हैं। जो सिपाही किसी से न डरते थे, न किसी का आगा पीछा देखते एवं कठोर हो गोली चला देते थे, झुकना नहीं जानते, वे ही सिपाही श्री गुरुदेव के सामने शक्तिहीन हो गये। इस प्रकार उनके चरित्र से निर्भयता निर्माणता तथा विनम्रता का संदेश मिलता है।

इन्हीं लड़ाईयों के बीच इनके पूज्यपाद गुरु महाराज जी कोटनक्का छोड़कर ता० २ अगस्त को ऋषिकेश आ गये। उनके साथ कई शिष्य तो किसी तरह आ गये और कई बिछुड़ गये। ऐसे समय स्वामी जी भी उनके चरणों से बिछुड़ कर कोटनक्का में अकेले ही रह गये।

८ देश सेवा

इन्होंने कोटनक्का आश्रम का सारा सामान गरीबों की सेवा में लुटा दिया था। क्योंकि उस समय अकाल पड़ा था। अबलाओं पर अत्याचार किया जा रहा था।

लाखों जीव मौत के घाट उतारे जा रहे थे। हजारों जनता भूख से पीड़ित थी। वेदना एवं पीड़ा से कराह रही थी। कई लोग बीमार पड़े थे, कोई मृत्यु की शैय्या पर आखिरी साँसे गिन रहे थे। ऐसे समय में श्री करुणामय गुरुदेव ने दुःखी जनता की सेवा की। भूख से पीड़ित जनता के लिये स्वयं दूर-दूर जाकर भोजन माँग कर लाते, उन्हें खिलाते। दूर से पैदल चलकर पानी ढोकर लाते और उन्हें पिलाते बीमार लोगों की सेवा अपने हाथों से करते। उनके घावों पर मरहम पट्टी करना उनके कपड़े धोना आदि सभी सेवा अपने हाथों से करते। इनके मुख पर सदा यह शब्द रहते।

"जो जर मांगों तो बेजर हूँ, जो सर मांगों तो हाजिर हूँ।

फिर कोई व्यक्ति मर जाता तो उन्हें स्वामीजी अपने कंधे पर लाद कर श्मशान जाकर दफना आते तथा ये कैम्प के मृत पुरुषों का शव मिलिट्री के ट्रकों में डालकर सिपाहियों के साथ जाकर "चेनाव" नदी में वहा आते थे, जब कि और कोई भी इनका साथ देने को तैयार न होता था। इस प्रकार कितनी ही लाशों को जलाया। कितनी ही अबलाओं की रक्षा की। इस प्रकार गरीबों की, दुःखी जनता को आराम पहुँचाने में अपना तन मन सब कुछ अर्पण कर दिया। इनके हृदय में सेवा एवं परोपकार की भावना कूट-कूट कर भरी थी। वास्तव में इनका अवतार ही परोपकार के लिये ही हुआ था, इसीलिये कहा है कि—

"तरुवर सरवर संत जन, चौथे बरसे मेह।
परमार्थ के कारणे, चारों धारे देह॥"

फिर पाकिस्तान (कैम्प) से भारत में आकर इनका महामण्डलेश्वर केशव स्वरूप जी से मिलाप हुआ। श्री सतगुरु देव जी ने केशव स्वरूप जी से कहा कि—मैं कुछ दिन आपकी मंडली में रहना चाहता हूँ। उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। श्री सतगुरु देव ने उन संत मंडली के साथ अनेकानेक तीर्थों में भ्रमण किया, अर्थात अमृतसर, गंगासागर, अयोध्या जी आदि कई पवित्र जगहों

में यात्रा की। इसके बाद हमारे पुण्यों ने भी साथ दिया एवं अन्तर्यामी ईश्वर की दया से मान मर्दन श्री सतगुरु देव संत मंडली के साथ राँची पधारे। कुछ दिन रहे, पुनः राँची में ही शरीर अस्वस्थ हो गया। इसीलिये इनके साथियों ने इन्हें हॉस्पिटल में भर्ती करवा दिया और स्वयं दूसरे गाँव को चल दिये। क्योंकि प्रथम बात तो संतों को किसी में मोह नहीं होता, दूसरी बात केशव जी के साथ अधिक संत मंडली होने के कारण एक स्थान पर ज्यादा दिनों तक ठहरना उचित न समझा। इन्हीं साधारण कारणों से श्री स्वामी जी अकेले ही हॉसपिटल में रहे। पुनः स्वस्थ होकर ज्वालादत्त गाड़ोदिया के बगीचे में ठहरे।

९ ज्ञान दान

वहाँ रहकर राँची के प्रेमियों को ज्ञान का दान दिया। पुनः क्रमशः पुरुलिया, गिरिडिह, गोगरी, जमालपुर, भागलपुर, दरभंगा, कलकत्ता, कोडरमा, राऊरकेला, कानपुर, मुजफ्फरपूर आदि कई स्थानों में अर्थात् बिहार, बंगाल, उड़ीसा आदि कई प्रान्तों में भ्रमण कर ज्ञान का दान दिया।

पूज्य स्वामी जी की वाणी में एक अनूठी विलक्षणता यह थी कि इन्होंने अत्यन्त सीधी सरल भाषा में ही मन्द बुद्धि वाले जिज्ञासुओं को भी "जीवन मुक्त" तत्वदर्शी महात्माओं वाला निश्चय करा दिया। "तत्वमसि" महावाक्य का उपदेश देकर हृदय ग्रंथी का छेदन भेदन कर दिया। अर्थात् अज्ञान के जमे हुए पर्दे फाड़ डाले। जिज्ञासुओं के जन्म जन्मान्तरों के संचित कर्मों को अपनी एक नजर से जला दिया। सत्य ही कहा है—

"ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, वाणी तांकी वेद।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद॥"

ये वाद विवाद खंडन मंडन के झगड़ों में कभी नहीं पड़ते थे। देहाध्यास

छुड़ाने के लिये जन साधारण में यह उपदेश दिया करते थे कि—

"नहीं देह तूं नहीं देह तेरा, देह से तूं भिन्न हैं।
कर्त्ता नहीं भोक्ता नहीं, कामादिकों से अन्य है॥
आनन्द है, चिद्रूप है, सद्रूप है, निष्काम है।
कूटस्थ है, निस्संग है, फिर सोच का क्या काम है॥"

इस तरह तीन शरीर पाँच कोषों से भिन्न आत्मतत्व का मुमुक्षुओं को बोध कराया। अपने अनमोल वचनामृत द्वारा उन्हें कृत-कृत किया।

१० क्षमा एवं सहनशीलता

श्री स्वामी जी क्षमा एवं सहनशीलता के साक्षात् मूरत थे। किन्तु कई एक व्यक्ति जो संत महिमा से अनभिज्ञ थे, जिसके लक्षण असुरों वाले थे, जैसा कहा भी है—

परहित हानि लाभ जिन केरे,
उजरे हर्ष विषाद बसेरे।

ऐसे असुर प्रकृति वाले इन्हें अज्ञानता मुर्खतावश साधारण व्यक्ति जानकर इनको दुर्वचन कहते, गालियाँ देते, पत्थर फेंकते और कई स्थानों के असुरवृति वाले मानव ने इन पर मृत्यु का प्रहार भी किया और एक व्यक्ति ने प्रेम की ओट में इन्हें विष भी खिलाया फिर भी अन्तर्यामी ईश्वर की दया से इनकी हर समय रक्षा हुई। किन्तु बन्दनीय गुरुवर ने शांत स्वभाव से सब कुछ सहन कर लिया कहा भी है—

रज्जब चले न क्रोध बल रहे क्षमा जंह साध,
ज्यों दामिनि दरियाव में करसी कोन उपाध।

दोहा—

खोदन खादन पृथ्वी सहे, छेदन छादन बनराय।
बोल कुबोल साधु सहे, औरन सहा न जाय॥"

कई जिज्ञासु कहते कि भगवन हमें आश्चर्य होता है कि आप कैसे सहन कर सकते हैं ? वे उत्तर में कहते—बच्चों मुझे आश्चर्य होता है कि तुम लोगों से सहा कैसे नहीं जाता ? श्री स्वामी जी महाराज में हर प्रकार की सामर्थ्य, अर्थात् ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ इनकी दासी थी, फिर भी स्वामी जी किसी को वर श्राप नहीं देते थे। कहा है कि—

दोहा—

"सेवा बहुत प्रकार पुनि, अंग त्रास कटे कोय।
ज्ञानी आपन पो लहे, तृप्त कुप्त नहीं होय॥"

यदि कोई व्यक्ति अपराध करने के बाद इनसे क्षमा मांगते थे तो स्वामी जी बड़े उदार चित्त से कहते कि—बच्चों तुम्हारे से कोई भूल ही नहीं हुई, वह तो स्वप्न था, चला गया। इस तरह हृदय से उन्हें क्षमा कर देते थे। अनेक शीतल वचनों द्वारा उन्हें सन्तुष्ट कर देते थे। और आप हर्ष-शोक, मान-अपमान, आदि द्वन्दों से रहित आनन्द मग्न रहते थे—

छन्द—

विश्वेस अद्वय आत्म को, बिरला जगत में जानता।
जगदीश को जो जानता, नहीं भय किसी से मानता॥
ब्रह्माण्ड भर को प्यार करता, विश्व जिसका प्राण है।
उस विश्व प्यारे के लिये, सब हानि लाभ समान है॥"

इस प्रकार इनकी क्षमा और सहनशीलता विलक्षण थी। जिसको देखकर

दुष्टों की दुष्टता निकल जाती थी। दुष्ट नास्तिकता को छोड़कर आस्तिक साधु बन जाते थे। ऐसी थी इनकी विलक्षणता।

११ तेज

ब्रह्मचर्य के प्रताप से इनमें आत्मिक, मानसिक और शारीरिक बल था। इनकी मुखाकृति पर ब्रह्मतेज था। इनके सामने तुच्छ भाव, दीनता, कोई जिज्ञासु नहीं दर्शा सकता था। यद्यपि श्री स्वामी जी की कोई मठ-मठान्तर वनाने की इच्छा नहीं थी, तो भी इनके तेज एवं विलक्षण प्रभाव को विकसित करने के लिए ईश्वरीय प्रेरणा से अनेक मठ-मठान्ततों की स्थापना हुई अर्थात् रांची, भागलपुर, दरभंगा, पुरूलिया, कोडरमा, गिरीडिह आदि गांवों में सत्संग भवन बने जिनमें आज भी श्री श्री स्वामी जी महाराज की अनुकम्पा से ज्ञान के दीपक जलाये जा रहे हैं। अनेक प्रेमी वहां आकर भगवत् चर्चा सुनकर जीवन का लाभ उठाते हैं।

१२ अन्तिम उपदेश

पूज्य स्वामी जी महाराज प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा पर ऋषिकेष जाया करते थे। इनके गुरुदेव एवं गुरु भाई महात्मा पूज्य भजनान्द जी महाराज, महात्मा प्रेम सिंह जी महाराज, महात्मा हंस स्वरूपजी महाराज, महात्मा सम्पूर्ण सिंहजी महाराज, महात्मा फकीर सिंह जी महाराज मित्र रूप में महात्मा शाश्वतानंद जी महाराज आदि पूज्य जन इनकी श्रद्धा एवं विनम्र स्वभाव से अति प्रसन्न थे। इसी श्रद्धा के नाते प्रति वर्ष ये अपने गुरुदेव और गुरु भाईयों के चरणों में उपस्थित होते थे। प्रति वर्ष की तरह सन् १९६९ ई० में भी ये गुरु पूर्णिमा पर पहूँचे। और गुरु पूर्णिमा के करीब एक महीने बाद इनके दिल में न जाने क्या आयी? इन्होंने अपने शरीर को स्वतः ही त्याग करने का निश्चय कर लिया। पर प्रेमी भक्तों के सामने इस विचार को प्रगट नहीं किया। परन्तु इन्होंने अपनी ओर से सभी प्रेमी भक्त जनों को अन्तिम अमूल्य उपदेश दिया।

छन्द—

"संसार की सब वस्तुयें, बनती बिगड़ती हैं सदा।
क्षण एक सी रहती नहीं, बदला करे हैं सर्वदा॥
आत्मा सदा है एक रस, गत क्लेश शाश्वत मुक्त है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, होता तुरंत ही शांत है॥"

स्वामी जी महाराज ने अपने से श्रद्धा रखने वाले प्यारे भक्तों से कहा कि—परीक्षा आयेगी। गुरु का शरीर भी अनित्य है, तुम्हारा मुख मैला नहीं होना चाहिये, तभी ज्ञान की शोभा है, संसार में कोई न रहा, न रहेगा, अर्थात् जैसे पूज्य बड़े महाराज जी, स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण आदि चले गये वैसे ही सभी को जाना है। देह करके कोई सदा रहा नहीं, आत्मा कभी मरती नहीं। जीवन-मरण बंध-मोक्ष आदि की प्रतीति भी भ्रांति रूप है। सत्य कुछ नहीं। इस तरह नाना रूप से उपदेश दिया। इनकी मुखमुद्रा से शांति, प्रसन्नता तथा गम्भीरता झलकती थी।

श्री स्वामी जी अपना कार्य पूरा कर चुके थे। ऐसा जानकर ये ८ सितम्बर, १९६९ ई० में सोमवार सायंकाल को बिना किसी को बताये, सबको अपने से अलग करके अकेले ही "श्री भगवान भवन" के मुख्य द्वार को छोड़कर पिछले रास्ते से गंगा तट पर गये। कुछ काल मन को समाहित किये हुये बैठे रहे, और फिर गंगा जी में जल समाधि ले ली।

इस अनहोनी घटना से प्रेमियों के दिल में काफी आघात पहुँचा। आश्रम निवासी अनेक गुरु भाई तथा अन्य प्रेमी गंगा किनारे पहुँचे। वहाँ उनके भगवाँ वस्त्र, चरण पादुका वगैरह मिली। उसी वक्त काफी खोज की। परन्तु काफी कोशिश के बाद भी श्री स्वामी जी का शरीर नहीं मिल सका।

सारांश यही है कि पूज्यपाद सतगुरु देव ६४ साल की आयु में ता० ८-९-१९६९ को स्वइच्छा से जल समाधि द्वारा ब्रह्मलीन हो गये।

"ज्यों जल में जल आये खटाना।
त्यों ज्योति सम ज्योति समाना।
मिट गये गवन पाय विश्राम।
नानक प्रभु के सद् कुरबान।"

तत्ववेत्ता सदा ही अमर है। इनकी जीवन गाथा को पढ़कर हमें अमर तत्व का सन्देश मिलता है। आज उनका शरीर नहीं है, परन्तु चेतन ज्योति हर प्राणी में, कण कण में झलक रही है—

अमर ज्योति

गुरुदेव का नजारा, जग में छुपा नहीं है।
आधार है सभी का, सबमें रमा वही है ॥ टे० ॥
सूर्य में तेज उनका चंदा में ओज उनका।
उनके सिवा किसी में अपनी सत्ता नहीं है ॥ १ ॥
कण-कण में गुरु हैं मेरे, पर दृष्टि वाला हेरे।
हो साक्षी मन में बैठे, दर्शन दिखा रहे हैं ॥ २ ॥
सबमें रमे हमारे, वाणी विषय नहीं है।
वह कौन ठौर खाली सतगुरु जहाँ नहीं है ॥ ३ ॥
लीला दिखा रहे हैं, सबमें समा रहे हैं।
चारों दिशा में पूर्ण, वाणी विषय नहीं है ॥ ४ ॥
गुरुदेव "स्वामी चेतन" लख बार उनको धन-धन।
दास "नारायण" तेरा, तुझसे जुदा नहीं है ॥ ५ ॥

—:०:—

सतगुरु का आदेश

(१) प्रिय बन्धुओ ··· खाना पीना और मौज उड़ाना ही मानव जीवन का उद्देश्य नहीं है। अस्तु, इस देह से परे अविनाशी और निष्कलंक जो आत्मतत्व है वही तू है उसी आत्मतत्व को जानने के लिये तुम्हें यह शरीर मिला है।

(२) ठाकुर पूजा करके भी जो चेतन प्राणियों से शत्रुता पालता है वह भगवान को बेकार पूजता है क्या जनता में जनार्दन नहीं है ?

ईश्वरः सर्व भूतानां—

(३) गुरु सेवा द्वारा ज्ञान प्राप्ति का स्त्री पुरुष को समान अधिकार है। स्त्रियों का अनाधिकार समझना परम भूल हैं क्या सुख शान्ति की चाहना स्त्रियों को नहीं है अथवा क्या ज्ञान बिना भी शान्ति मिलती है ?

(ज्ञानम् लब्धवा परामशान्तिः)

(४) हमारे भारत देश की एवं हमारे मनों की अशान्ति एवं अवन्नति का कारण एकमात्र फिजूल खर्ची एवं देखादेखी है। भेड़ाचाल का नमूना—विदेशों में ठंड से विवश होकर बिछावन पर ही चाय पीते हैं पर इधर तो बेड टी की प्रायः प्रथा ही चला ली गई है—

जग की भेड़ा चाल चलते के पीछे चले।
परमार्थ न संभाल देखो जग की रीत यह ॥

(५) झुको झुको और झुको, झुकना ही मानवता है , संसार तुम्हारा बन जायेगा कब ? जब विनम्र बनोगे। ऊँचे पद पर बैठने वाला मानव ही पूजा योग्य नहीं

होता किन्तु नम्रवान ही सच्चे अर्थों में ऊँचा और पूजने योग्य है —

रज़्जब रोशन कीजिये कोई कहे क्यूं ही।
सबकी हामी भर लीजिये हां रे भाया यूं ही ॥

प्रसन्नता

प्रसन्नता ही जीवन है, प्रसन्नता के ही सब पिपासु हैं। प्रसन्नता तमाम अशान्ति, दुःख और कष्ट को विनष्ट कर देती है। इसलिये तत्वज्ञ जनों की सानिध्य में रहकर हँसने की कला सीखो।

जिसमें न होय प्रसन्नता, पावे नहीं सो मुक्तता।
सुख शान्ति भी पावे नहीं, पावे नहीं निर्वाणता ॥

मानव सुख को क्यों चाहता है ? क्योंकि सुख जीव का स्वाभाविक धर्म है। दुःख उपाधिक धर्म है, औपाधिक धर्म वह होता है जो रहता है और में, प्रतीत होता है और में, जैसे स्फटिक मणि स्वच्छ होती है। परन्तु लाल फूल के संग से लाल प्रतीत होती है। वह लाल रंग उसका अपना नहीं है फूल का है। अतः स्फटिक का लाल रंग औपाधिक है। सफेद रंग स्वाभाविक है। इसी प्रकार आनन्द रूप आत्मा में प्रतीत होने वाला दुःख औपाधिक है। वह मन का है परन्तु मन की सान्निध्यता से आत्मा में प्रतीत होता है। यदि वास्तविक हो तो सुषुप्ति में भी रहे, फिर जैसे आप किसी मनुष्य को रोता हुआ देखते हैं तो तुरंत ही पूछते हैं कि तूं क्यों दुःखी है ? उसका वह उत्तर देता है कि मेरी स्त्री मर गई, मेरा धन लुट गया परन्तु किसी को प्रसन्न मुख देखकर कभी प्रश्न नहीं करते कि तूं प्रसन्न क्यों है ? यदि करे तो वह व्यंग कसता हुआ बोलेगा कि क्या आपको मेरा सुख देखकर ईर्षा होती है। इसलिये कोई बुद्धिमान ऐसा प्रश्न किसी से नहीं करता। इससे जाना जाता है कि प्रसन्नता ही जीव का वास्तविक स्वरूप है।

चौ०— ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुखराशी।

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

दिव्य उपदेश

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुसाक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

स्थावर जंगम जीव जिते जगभांतन भांतन भेष धरे हैं ।
तामै सतचित आनन्द सौं आतम एक प्रकाश करे हैं ॥
तां बिन जानत सिंधु-सौं लागत जानत गोपद तुल्य तरे हैं ।
बंदत ताहीं कहे सुखदेव सो ब्रह्म सदा सब ही ते परे हैं ॥

प्रिय बन्धुओ,

अखिल विश्व के प्राणी आराम के इच्छुक हैं। आराम के ही लिये सतत् पुरुषार्थ करते हैं। साधारणतः भौतिक वाद की दृष्टि से आप यह जानते हैं कि यदि धन दौलत से खूब भरपूर हो जावें, हमारे पास आलीशान कोठियां, चमचमाती कारें, पुत्र-पौत्रादि परिवार हो, तब हमें आराम मिलेगा। जरा विचारो ! क्या वस्तुतः इस भौतिक सुख सामग्री को प्राप्त कर के, हमारे को सुख की उपलब्धि हो जाती है ? क्या हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है ? कभी नहीं।

आज इस विषय पर ही कुछ निर्णय होगा। विचार करें, प्रथम बालक जन्म लेते ही आराम की भावना से माता के स्तन पान में प्रवृत होता है। तत्पश्चात् खेल-कूद में प्रवृत्त हो जाता है। रंगीले खिलौनों में तथा मित्रों के संग खेलने में आराम मानता है। क्या उसे आराम मिल गया ? नहीं ! पढ़ाई के बिना जीवन निरर्थक है, इसलिये फिर पढ़ाई लिखाई में प्रवृत्त होता है। क्या पढ़ना

आसान है? नहीं, जी जान से पुरुषार्थ करके बी. ए., एम. ए. की डिग्री लेता है। क्या बी. ए., एम. ए. की डिग्री हासिल करके सुख प्राप्त हो गया? नहीं, फिर समझता है, कि धन के बिना आराम नहीं मिल सकता है। इसलिये अब धन कमाने के लिये देश विदेशों में दौड़ता है; पसीना बहाकर धन उपार्जन करता है। क्या धन के एकत्र होने से सुख मिल गया? नहीं, फिर आराम कहाँ पहुँचा, बिल्डिंग में, लाख दो लाख रुपये लगाकर खुब सुन्दर हवादार कोठी भी बनवा ली, तो क्या सुखो हो गया? पुनः लौकिक गुरुओं द्वारा आवाज आई, कि स्त्री के बिना घेर श्मशानवत है। अब तुम्हारा सुख कहाँ चला गया? स्त्री में। फिर शादी के लिये परेशान रहा, खैर सुन्दर से सुन्दर स्त्री भी घर में आ गई। परन्तु कुछ समय बाद ही वह सुख लोप हो जाता है। तब इच्छा होती है, कि एक पुत्र घर में हो जावे तो हमको सुख प्राप्त हो। जब तक पुत्र उत्पन्न नहीं होता, तब तक सब पदार्थ नीरस प्रतीत होते हैं।

प्राचीन काल का इतिहास है। राजा चित्रकेतु धन धान्य से सम्पन्न था। एक करोड़ रानियां भी थीं, किसी बात की कमी नहीं थी। अर्थात् सुन्दरता, उदारता, युवावस्था, कुलीनता, विद्या आदि सर्व गुणों से सम्पन्न थे। फिर भी उनके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये वे बहुत ही चिन्तातुर और दुःखी, उदास रहते थे कि पुत्र की प्राप्ति कैसे हो? पुत्र के बिना उन्हें कोई भी वस्तु आरामदायक प्रतीत नहीं होती थी। परन्तु राजा चित्रकेतु को भी अज्ञानता के कारण यह विवेक नहीं था कि पुत्र प्राप्ति के बाद भी मुझे सन्तोष नहीं हो सकेगा। अतः पुत्र प्राप्ति के बाद आराम न मिलकर उसके चित्त की क्या दशा हुई? इसका विस्तार "श्रीमद् भागवत" में जिस प्रकार से है। उसी प्रकार आपको सुनाते हैं।

जब कि राजा चिन्तातुर थे। उस समय विचरते हुए वर शाप देने में सामर्थ अंगिरा ऋषि चित्रकेतु के महल में पहुँच गये। राजा ने ऋषि का स्वागत सत्कार किया। महर्षि अंगिरा ने कहा—राजन्! तुम्हारे पास सुख

सामग्री वैभव आदि सभी है। परन्तु मैं देखता हूँ कि तुम स्वयं संतुष्ट नहीं हो। तुम्हारे मुँह पर उदासी झलक रही है। मालूम पड़ता है, कि तुम्हारी कोई कामना अभी भी अपूर्ण है। कहो राजन्! तुम्हारे इस असन्तोष का क्या कारण है? ऋषि राजा के मन की चिन्ता के कारण को तो जानते थे। फिर भी उन्होंने चिन्ता के सम्बन्ध में अनेकों प्रश्न पूछे। राजा चित्रकेतु ने कहा—हे भगवन आप त्रिकालज्ञ हैं। फिर भी आप पूछ रहे हैं। तो मैं आपकी आज्ञा से अपनी चिन्ता को आपके चरणों में निवेदन करता हूँ।

हे प्रभो मुझे पृथ्वी का साम्राज्य, ऐश्वर्य, सम्पत्तियाँ सभी प्राप्त हैं। परन्तु सन्तान के न होने के कारण से मुझे इन भोग पदार्थों में लेशमात्र भी सुख आनन्द प्रतीत नहीं होता है। हे मुने! मैं पुत्र बिना महान ही दुःखी हूँ। जैसे भूखे को भोजन के बिना कोई वस्तु नहीं सुहाती, ऐसे ही हे ऋषि मुझे भी पुत्र के बिना कोई वस्तु नहीं सुहाती। पुत्र के बिना मेरे पितर भी पिण्डदान न मिलने की आशंका से दुःखी ही रहेंगे और दुःखी हो रहे हैं। अब आप हमें सन्तान दान करके नरकों से बचाइये।

अंगिरा ऋषि ने सोचा कि यदि इस समय राजा को आत्म विद्या का उपदेश दिया भी जायगा, तो राजा नहीं मानेगा। ऐसा सोचकर ऋषि ने राजा से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। राजा चित्रकेतु की रानियों में सबसे बड़ी रानी कृतद्युति थी। महर्षि ने यज्ञ का अवशेष प्रसाद उसी को दिया, और राजा से कहा—राजन् तुम्हें एक पुत्र अवश्य होगा। किन्तु तुम्हें आराम नहीं मिलेगा। अविद्याग्रस्त राजा इन गूढ़ रहस्य भरे बचनों को न समझ पाया।

रानी कृतद्युति के गर्भ से कुछ समय बाद ही पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। जैसे कंगाल को कुछ धन मिल जाने पर उसमें आसक्ति हो जाती है। वैसे ही बहुत कठिनाई से प्राप्त हुए उस पुत्र में राजा की आसक्ति हो गई।

महाराजा का अब जितना प्रेम बच्चे (राजकुमार) की मां कृतद्युति में था। उतना दूसरी रानियों में न रहा। इसलिये अन्य रानियों के मन में रानी के प्रति ईर्षा और जलन रहने लगी। कारण, एक तो वे रानियाँ पुत्र न होने से दुःखी थीं। दूसरा राजा के द्वारा सम्मान न मिलने पर जलने लगी। अतः वे डाह से मन ही मन अपने को धिक्कारने लगीं। जैसे।

छंद—

मस्तर जलावे चित्त को, लखि अन्य की ऐश्वर्यता।
अपना न कुछ भी सिद्ध हो, तो भी करे मात्सर्यता॥
क्षय रोग मत्सर दुखद् अति, तन को सूखा पिंजर करे।
त्रियलोक विजयी जानिये, जो होय मत्सर से परे॥

वे रानियाँ भी अपनी सौत की गोद भरी देख कर सहन न कर सकी। इसलिये उन्होंने चिढ़ कर ईर्षा से राजकुमार को विष दे दिया। यह समाचार राजा को मिला, तब राजा के आँखों के सामने अंधेरा छा गया। महल में कोलाहल मच गया। रानी तथा प्रजा भी व्याकुल हो गई। राजा चित्रकेतु मूर्छित हो गया। लम्बी-लम्बी साँसें लेने लग गया।

दो—

अति दुःख से एक सुत भयो।
सोऊं लीन्ह विधि छीन॥
चित्रकेतु बिलखत फिरे।
जैसे जल बिन मीन॥

उसी समय देवर्षि नारद और अंगिरा ऋषि आये। और राजा को ज्ञान उपदेश देकर सुखी किया।

जेते सुख सतलोक लौं, तेते देत क्लेश।
आत्म सुख ते ऋते सुख, किते नहीं लब लेश॥

अन्त में राजा को आत्म ज्ञान द्वारा ही शान्ति मिली। इस इतिहास से प्रिय बन्धुओं ! हमें निर्णय हो जाना चाहिये कि भौतिक पदार्थों में सुख नहीं है। भ्रान्ति करके जीव आराम के लिये धन, स्त्री, पुत्रादिकों में आसक्त होता है।

इस संसार में अवतारों को भी शान्ति नहीं मिली। इस पर प्रमाण :—

जिंह नाम उचारत दुःख मिटे, वह राम गये पदस्यों बन मांहि।
मथुरा तज कान्ह बनि अपदा, मुचकंद हरि तिनकी गिरि मांहि॥
रघुवीर पिता बलवीर पिता, दुःख लोग समान लहे भव मांहि।
कहो रे मन जग में कौन सुखी, तन धार कर जो दुःख पावत नांहि॥

महर्षि एवं जनता जिस राम के नाम का उच्चारण करते हैं। वे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम भी बन में नंगे पैरों गये, और जब माता सीता का हरण हुआ, तथा लक्ष्मण को शक्ति बाण लगा, तब उनके वियोग में भगवान भी रोये। भगवान कृष्ण को भी काल यवन से भयभीत होकर कष्ट उठाना पड़ा। अर्थात् उनके भय से भागते-भागते पहाड़ की कंदरा में जहाँ राजा मुचकन्द सोया हुआ था, वहाँ आकर प्राण रक्षा की। राजा दशरथ भी राम के वियोग में रोये, अर्थात् तड़फ-तड़फ कर प्राण गँवाये। कृष्ण के पिता बासुदेव को भी जिस दिन से कृष्ण देवकी के गर्भ में आये, उसी दिन से जेल का कष्ट भोगना पड़ा। अर्थात् दुःखी होकर रोये।

जब कि हमारे अवतारियों की ही यह दशा है, तो हम सब अस्मदादिक जीवों की दुर्गति का क्या ठिकाना ? अर्थात् संसार में शरीर धार कर किसी को भी सुख प्राप्त नहीं हुआ।

दारा सुतादिक से भी,
होते सदा देखे दुःखी।

कोई नहीं है आज तक,

इनसे हुआ सम्यक् सुखी ॥

फिर भी इन्हीं हित छटपटाता,

हो रहा जग व्यथित है।

यह देख अज्ञानी चरित,

ज्ञानी बड़ा ही चकित है ॥

अज्ञानी जीव देखते हुए भी नहीं चेतने। वापिस इन्हीं दुःख रूप पदार्थों की इच्छा करते हैं। यह अज्ञानी का दृश्य देखकर ज्ञानवान आश्चर्य चकित होते हैं।

हमें संसार में सुख क्यों नहीं मिलता, इसी पर भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन के प्रति कहा है। कि "हे अर्जुन", यह संसार दुःखरूप और नाशवान है।

("दुःखालय मशाश्वतम्")

दुःखमय जग में सुख कैसे प्राप्त हो—

अब प्रश्न होता है कि आराम किसमें है ?

इस पर श्रुति भगवती कहती हैं।

("भूमैव सुखम्, नाल्पे सुखमस्ति)

एक ब्रह्म ही सुख स्वरूप है। वह कौन है ? वह तुम्हारा अपना आप है।

हे प्यारे आत्मन् ! तू आप ही सुखों का भंडार है। भ्रान्ति से बाहर सुख खोजता फिरता है। वास्तव में सुख की चाहना ही तुमको सुख से वंचित कर रही है।

छंद—

सुख को कहाँ है ढूंढता, बाह नहीं है सुख कहीं।

तू आप सुख का सिन्धु है, इसकी खबर तुमको नहीं ॥

आनन्द रख इच्छा न कर, इच्छा बड़ी ही दुष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, पर तू चाह करके भ्रष्ट है॥

शंका :—फिर आनन्द मिलता क्यों नहीं है ?

उत्तर—छंद—

पानी लबालब है भरा, ना मत्स्य पीने पाय है।
उल्टा जभी हो जाय है, तब बूंद मुख में जाय हैं॥
सुख ईष्ट है तो मित्र, मुख शब्दादि से ले मोड़ रे।
आशा जगत की त्याग, मन जगदीश मांहि जोड़ रे॥

हे सज्जनों,

आनन्द स्वरूप आत्म तत्व की प्राप्ति में हमारे शास्त्रकारों ने ४ कृपा सहायक बतलाई है।

(१) ईश्वर कृपा (२) गुरु कृपा (३) शास्त्र कृपा और (४) स्वकृपा ये चार कृपा है।

जब तक इस जीव पर चारों कृपा नहीं होती है। तब तक जीव अविधा आदि नाना बन्धनों में उलझ कर कष्ट उठाता है।

"भ्रमते जगत में जीव बहु, चारों कृपा जब तक न हों।"

अब नीचे चारों कृपाओं का स्वरूप वर्णन करते हैं—

छंद—

हो प्रथम ईश्वर की कृपा, सद्बुद्धि सद् साधन मिले।
दुजी कृपा गुरुदेव की, दे ज्ञान हत पंकज खिले॥
तिजी कृपा सत शास्त्र की, दुविधा निवारण जो करे।
चौथी कृपा निज की कही, ला आचरण भव से तरे॥

१ ईश्वर कृपा

"हो प्रथम ईश्वर की कृपा, सद्बुद्धि सद् साधन मिले ॥"

भारतवर्ष में मानव शरीर का प्राप्त होना, श्रेष्ठ बुद्धि का प्राप्त होना, उच्च कुल में उत्पन्न होना और पूर्ण सतगुरु देव का प्राप्त होना, यही ईश्वर कृपा है।

ईश्वर की कृपा के बिना साधन रूप मानव शरीर की प्राप्ति नहीं हो सकती।

चौपाई :—(श्री रामायण)

कबहुँक करि करुणा नर देही। देत ईश बिन हेतु सनेही ॥

हे प्यारे ईश्वर के समान तेरा सुहृद मित्र कोई नहीं है। जिसने अकारण ही कितनी दया बरसाई है।

चौपाई :—(श्री रामायण)

कोमल चित अति दीन दयाला। कारण बिनु रघुनाथ कृपाला ॥

यदि प्रभु दया करके मानव शरीर नहीं देते ? तो क्या पशु पक्षी योनियों में जीव अपना कल्याण कर सकता था ? अर्थात् नहीं कर सकता था। इसलिये कहा है :—

पशु पक्षी आदिक योनियों में, क्षुद्र बुद्धि है मलिन।
अति सूक्ष्म ईश्वर मार्ग में, चलना ही उनको है कठिन ॥

एक मात्र मानव शरीर ही एक रत्न है। जिसमें यह जीव पुण्य कर्म करके स्वर्गादिक सुखों की प्राप्ति कर सकता है। एवं ज्ञान सम्पादन करके मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। इसलिये कहा है।

चौपाई—(श्री रामायण)

नरतन सम नहीं कवनऊ देही। जीव चराचर जाचत जेहीं ॥
स्वर्ग नर्क अपवर्ग निषैणी। ज्ञान वैराग्य भक्ति सुख देनी ॥

मनुष्य शरीर में होनेवाला कार्य देव शरीर में भी नहीं हो सकता। इसलिये देवता भी इसकी वांछा करते हैं।

छंद—

स्वर्गादि में है दिव्य तनु। ऐश्वर्य की है अधिकता॥
सुख भी अधिक है इसलिये। नहीं मोक्ष पद तंह सूझता॥
नर देह सूर भी चाहते। विरला ही कोई पाय है॥
अनमोल मानुष देह को। क्यों व्यर्थ मूढ़ गवाँय है॥

इससे सिद्ध होता है कि मानव देह जलचर नभचर और थलचर आदि सर्व योनियों में उत्तम है। इसका एक-एक अंग अमूल्य है। जैसे किसी एक करोड़ पति सेठ के यहाँ यदि नेत्रहीन बालक उत्पन्न होता है। पिता उस पर लाखों रुपये लगाने को तैयार है। फिर भी उसके पुत्र को डॉक्टर आँख नहीं दे सकता। प्लास्टीक या पत्थर की आँख भले ही चढ़ा सकता है। पर वह असली नेत्र ज्योति नहीं दे सकता। इसलिये यह मानव शरीर पारस से भी अधिक मूल्यवान है। क्योंकि पारस पत्थर तो लोहे को सोना ही बनाकर भौतिक सम्पत्ति ही बढ़ायेगा। परन्तु मनुष्य देह की रगड़ से जीव जन्म जन्मांतर के पापों से छूटकर, संसार बन्धन से मुक्त हो सकता है। यदि इसे सारी सृष्टि का मूल्य कह दिया जाये, तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। परन्तु चौरासी लाख योनियों के बाद ही इस मानव देह की प्राप्ति होती है। इसलिये परम दुर्लभ है कहा भी है—

(लख चौरासी भटकत-भटकत, मिनखा देह पाई)

अहो महान् भाग्य हैं, हमारे जो कि आज हमें परम दुर्लभ, अमूल्य, महान् उत्तम मानव शरीर की प्राप्ति हुई है। इतना ही नहीं, ईश्वर के अनुग्रह से हमारा जन्म भारत देश में हुआ है। क्योंकि यह देश आध्यात्मिक तत्वज्ञान का प्रधान क्षेत्र है। इस देश की कई विशेषतायें हैं। जैसे कि भगवान का स्वयं अवतार

लेकर आना, यहीं पर होता है। अन्य देशों में नहीं।

श्लोक :—

यदा यदाहि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानम् धर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

गीता आदि सद्ग्रन्थों का पाया जाना, गंगा जल का प्राप्त सोना, पतिव्रता स्त्रियों का होना, ज्ञानी गुरु का मिलाप होना इस देश में ही सम्भव है। भारतवासियों को देवता भी धन्य-धन्य करते हैं।

गायन्ति देवाः किल गीत कानि।

धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे॥

परन्तु यह सब कुछ ईश्वर की देन है। जो मानव इस ईश्वरीय देन को पाकर इससे उचित लाभ नहीं उठाता है। वह प्रभु की कृपा का अनादर करता है। इस जीव का परम उद्देश्य खान पान आदि ही नहीं है। इसपर भरतहरि (भरथरी) जी आदेश देते हैं।

चौपाई—

तनु चेतन-चेतन हेतु भयो। भव भोगन हेतु न देव दयो॥

हे प्यारे आत्मन्, भोग विलास में बर्बाद करने के लिये इसकी दुर्लभता उत्तम नहीं कही गई है। यदि इसको पाकर मानव परमेश्वर परायण नहीं होता तो फिर इसके बड़प्पन की इमारत टिकेगी कैसे?

देह साध्य नहीं है। बल्कि साधन है। अविद्याग्रस्त प्राणी "देह ही मैं हूँ", यह मानता है। फलस्वरूप देह पुष्टि के लिये नाना साधन जुटाता है। दिन रात इस देह की ही चिन्ता करता है। कहते हैं, इस देह की रक्षा के लिये मांस खाने में भी कोई हर्ज नहीं हैं। क्या इसलिये ही मनुष्य देह कीमती बतलाई

है ? कि इसके बचाने और देह को पुष्टि बनाने के लिये मांस खाया जावे। इस दृष्टिकोण से तो पशु की देह क्या कुछ कम कीमतवान है ? मनुष्य देह ही क्यों कीमती है क्या कारण है ? पशु चाहे जिसे खाते हैं। सिवाय स्वार्थ के अन्य कोई विचार ही नहीं कर सकते। मनुष्य ऐसा नहीं करता, वह आसपास की सृष्टि की रक्षा करता है। इसी लिये मानव देह का मोल है। इसे ठीक रखने के लिये सात्विक भोजन करना चाहिये। फिर सजाना भी इसका लक्ष्य नहीं है। भोला जीव चाहता है। वस्त्र नर्म मुलायम हो, उनका बढ़िया रंग हो। सुन्दर छपाई, अच्छे किनारे तथा बेलबूटे तथा कलबूत हो। इसके लिये हम अनेक लोगों से तरह-तरह की मेहनत भी कराते हैं। ये सब क्यों ?

हे प्यारे आत्मन् ! यदि इस देह की सुन्दरता के लिये सुन्दर बेल बूटों को नक्शों की जरूरत होती तो सर्व समर्थ प्रभु क्या हमारे शरीर पर मोर की तरह सुन्दर पंख एवं बाघ के शरीर जैसी धारियाँ नहीं लगा देता ? क्या उसके लिये यह असम्भव था ? परन्तु ईश्वर ने मनुष्य को एक ही रंग दिया है। उसमें जरा सा भी दाग पड़ जाता है तो शरीर का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। मनुष्य जैसा है वैसा ही सुन्दर है। इसको ढकने के लिये सादा कपड़ा ही काफी है। जो मानव प्रभु का चिन्तन छोड़ कर शरीर एवं इन्द्रियों के द्वारा विषय रस लेने में ही व्यस्त रहता है। वह कुबुद्धि वाला है। जैसे कहा है।

चौपाई :—(श्री रामायण)

उमा ते नर लोग अभागे। हरि रस छोड़ विषय अनुरागे ॥
जिन हरि कथा सुनि नहीं काना। श्रवण रन्ध्र अहि भवन सामना ॥
नैनन संत दरश नहीं देखा। लोचन मोर पंख करि लेखा ॥
ते सिर कट तुम्बरि सग तूला। जे न नमत हरि गुरु पदमूला ॥
जिन हरि भक्ति हृदय नहीं आनी। जीवत शव समान तेही प्राणी ॥

जो न करई राम गुण गाना। जिह सो दादुर जीह समाना ॥
कुलिस कठोर निठुर सोई छाती। सुनि हरि चरित न जो हर्षाति ॥

जो ऐसी ईश्वरीय देन को प्राप्त करके प्रमाद करता है। अर्थात् बुद्धि का सदुपयोग नहीं करता है। इसपर दृष्टान्त :

प्राचीन समय की बात है। राजा भोज की सभा में एक कीमती लाल बिकने आई। राजा ने सभास्थित सभी बुद्धिमान जौहरियों से लाल की कीमत बताने को कहा। राजा की आज्ञा पाकर सभी ने अपनी-अपनी बुद्धि अनुसार लाल की कीमत बताई। परन्तु राजा सन्तुष्ट न हुआ। अतएव राजा के राज्य में ही रहने वाले एक वृद्ध जौहरी को बुलाया गया जो कि अपूर्व बुद्धिमान था। जिसने अपना सारा जीवन लालों की परख में बिताया था। अतः उसने लाल को देखते ही कहा—हे राजन ये लाल ९९ हजार रुपये की है।

राजा—हे जौहरी हमें कैसे विश्वास हो, कि ये लाल ९९ हजार रु० की है। किसी युक्ति द्वारा हमें विश्वास दिलाओ कि ये लाल ९९ हजार रु० की है।

जौहरी—हे राजन राज्य कोष से सौ चुन्नियाँ मंगवाइये। राजा ने राज्य कोष से तत्काल ही सौ चुन्नियाँ मंगवाई। जौहरी ने चुन्नियों को लाल के चारों ओर रख दिया। फिर कहा, देखिये राजन् लाल का प्रकाश ९९ चुन्नियों पर पड़ रहा है, पर एक चुन्नी पर प्रकाश नहीं पड़ रहा है। इसलिये यह लाल ९९ हजार की है।

राजा—एक चुन्नी पर लाल का प्रकाश क्यों नहीं पड़ता ! जौहरी—हे राजन् जब यह लाल पृथ्वी में बन रही थी। तब इसको जल्दी ही निकाल लिया गया। इसलिये इसकी एक रंग मारी गई। यदि यह पृथ्वी से पूरी तैयार होने पर निकाली जाती, तो इसका प्रकाश सौवों चुन्नियों पर पड़ता और इसका मूल्य भी एक लाख रुपये होते। जौहरी की इस युक्ति के द्वारा राजा एवं सर्व सभासदों को पूरा-पूरा विश्वास हो गया और सभी बड़े प्रसन्न हुए। राजाने

जौहरी को इनाम देने के लिये सोचा, कि जौहरी को क्या इनाम देना चाहिये। इस विषय में सभी विद्वानों से पूछा। किसी ने कहा ५ गाँव का पट्टा लिखा दो। कोई कहता है हीरे जवाहरातों के थाल भेंट में दे दो। परन्तु उचित इनाम कोई न बता सका। तब राजा ने एक बूढ़े मंत्री से पूछा, जो कि रीटायर हो चुका था। कि हे मंत्री ! तुम बताओ इस जौहरी को उचित इनाम क्या देना चाहिये।

मंत्री—हे राजन् यदि आप मेरी बात मानें, तो उचित ही कहूँगा, पर पहिले वायदा करो, लिखो कि मेरी बात सुनकर सभा में हलचल भी ना हो, एवं कहे अनुसार इनाम भी दिया जाये। राजा ने सोचा मंत्री बुद्धिमान है। इतना ही नहीं परमेश्वर का भक्त भी है। इसलिये राजा ने मंत्री से कहा, कि जो उचित इनाम हो वही बताओ, मैं अवश्य दूंगा। मंत्री—हे राजन् इस जौहरी का मुँह काला कर के गधे पर चढ़ा कर, गले में जूतों की माला पहिना कर पूरे नगर में घुमाया जाये। इसको यही इनाम दिया जाये। मंत्री के इस प्रकार वचन सुनकर सारी सभा विस्मित हो गई। राज दरबार में सन्नाटा छा गया। इतने बुद्धिमान जौहरी के विषय में यह कहना अयोग्य समझा गया। सभी ने मंत्री को गँवार जाना। राजा ने मंत्री से पूछा, कि इस प्रकार के इनाम देने का क्या कारण है ? सो बताओ ?

मंत्री—हे राजन्, इसको, प्रभु कृपा से ऐसा सुन्दर बुद्धि को प्राप्त करके आत्म लाल की पहिचान करनी थी।

शास्त्र में भी कहा है :—

श्लोक :—

मेधावी पुरुषों विद्वान्हर पोह विचक्षणः।
अधिकार्यात्म विद्याया, मुक्तलक्षण लक्षितः॥

हे राजन् तीक्ष्ण बुद्धि वाला गुरु द्वारा आत्म विद्या को सुन कर शीघ्र धारण कर सकता है। इसलिये वह अधिकारी माना गया है। परन्तु इस मूढ़ जौहरी-

ने तो सुन्दर बुद्धि को झूठे लालों की परख में ही खो दिया। और वृद्ध अवस्था आ गई पर अभी तक नहीं चेतता है।

दोहा—

सिर कंपै पग डगमगे, नैन ज्योति ते हीन।
कह नानक इस विध भई, तऊ न हरि रस लीन ॥

हे राजन् इसने ईश्वर देन का दुरुपयोग किया है। इसलिये यह अन्तर्यामी प्रभु के कोप का पात्र है। फलस्वरूप ईश्वर दरबार में इसका मुँह काला किया जायेगा। गधे की सवारी के समान नीच योनियां मिलेंगी। जूतों की माला के समान अनेक शरीरों को धारण करेगा। इसलिये मैंने सोचा, राज दरबार ही ईश्वर दरबार के समान है। इसलिये उचित है कि इसका इसी दरबार में मुँह काला करवा दिया जाये, ताकि इसे देखकर अन्य बुद्धिमानों को होश आ जावे। जौहरी सब सुन रहा था। उसने तत्काल ही राज सभा में अपनी भूल स्वीकार कर ली। क्योंकि जौहरी भी सज्जन था। फिर शेष आयु को परमेश्वर की भक्ति करके सफल किया।

इस दृष्टान्त से हमें यह निश्चय होता है, कि जो इस बुद्धि द्वारा आत्म लाल की पहिचान नहीं करता और लौकिक कार्य करने में ही समय खो देता है। वह पुरुष निन्दा के योग्य है। इसलिये हमें चाहिये, जो आयु बीत गई सो तो बीत गई। बाकी शेष आयु द्वारा परमात्मा को तात्विक रूप से जानकर जीवन का उत्तम लाभ उठावें।

"जाना नहीं आपको तो बुद्धिमत्ता क्या ?"

ऐ इन्सान अपने आप को पहिचान, यही है भक्ति यही है ज्ञान।

-- :o:--

२ गुरु कृपा

दूजी कृपा गुरुदेव की, दे ज्ञान हृत पंकज खिले।

श्रोतिय ब्रह्मनिष्ठ पूर्ण गुरु की कृपा द्वारा ही जिज्ञासु के हृदय में ज्ञानरूपी कमल प्रफुल्लित होता है। परमेश्वर की कृपा से किसी को परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होती, किन्तु गुरु की कृपा से ही परमेश्वर की प्राप्ति होती है। तीन शरीर पाँच कोषों में छिपे हुए आत्म स्वरूप को गुरु विवेक द्वारा प्रत्यक्ष करा देते हैं। सतगुरु कहते हैं। "सो प्रभु दूर नहीं है, प्रभु तू है।" "तत्वमसि" "तू वह है।" यह महावाक्य शिष्य के जन्म जन्मान्तरों के अज्ञान का वेधन करके, उसे आत्मानन्द की मस्ती में डुबो देता है। जिस पद को पाने के लिये योगी महर्षि वन में जाकर सहस्र वर्षों तक तपस्या करते हैं, वह पद गुरु भक्त गुरु कृपा के संकेत मात्र से प्राप्त कर लेता है। गुरु के समान करुणा सागर कोई नहीं है।

दोहा :—

पुरुषोत्तम करुणा भवन, दयासिंधु गुणमूल।
जाके वाक्य विचारते, नाशत भव दुःख सूल।
प्रगट अवनि करुणार नव, रत्नज्ञान विज्ञान।
वचन लहरी तनु परसते, अज्ञों होत सुजान॥

अज्ञानी जीव भी गुरु कृपा से परमेश्वर स्वरूप हो जाते हैं। बाईबल, वेद, कुरान आदि पढ़कर मानव विद्वान भले ही बन जाये, परन्तु ज्ञानी नहीं बन सकता।

छन्द :—

निर्जीव सारे शास्त्र सच्चा, मार्ग हो दिखलाय हैं।
दृढ़ ग्रन्थ चिज्जड़ खोलने की, युक्ति ना बतलाय हैं॥
निस्संग होने के सबब से, ईश भी रुक जाय है।
गुरु गांठ खोलन रीति तो, गुरुदेव ही बतलाय हैं॥

भानु विन शशि तारगण, टार सके न रात है।
बिन सतगुरु सब वेदगण, करे न ज्ञान प्रभात है॥

भगवान राम ने प्रजावासियों को यही उपदेश देते हुए कहा— कि हे भाईयो!

चौपाई :—

नरतन भव वारिध कहूँ वेरो, सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।
करणाधार सतगुरु दृढ़ नावा, दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

(संसार से पार करने हारे एकमात्र गुरु ही केवट हैं।)

गुरु :- पामर, विषयी, संस्कारी, जिज्ञासु इन सब पर अपनी कृपा करते हैं। अर्थात् पामर को सदाचार, विषयी को वैराग्य, संस्कारी को त्याग, जिज्ञासु को ज्ञान प्रदान करते हैं।

संस्कारी को कैसे त्याग सिखाते हैं? इसी विषय पर दृष्टान्त :—

सहजो बाई गुरुभक्ता थी। शादी के बाद जब मुकलावा लेकर ससुराल जा रही थी। तब घर में मेहमान आये हुए थे। घर वाले सब तैयारी में लगे हुए थे। कोई सहजो के लिए वस्त्र भूषण से ट्रंक सजा रहे थे। कोई मिठाई बना रहे थे। सहजो बाई शीश गुंथा रही थी। पुण्यों ने साथ दिया, कि अचानक उसके गुरुदेव संत चरणदास जी पहुँच गये। भारत की लाल को संसार में कुचलते देखकर बोल उठे।

दोहा :—

जाना है रहना नहीं, जाना विश्वाबीस।
सहजो तनिक सुहाग पै, कहाँ गुंथावे सीस॥

इस एक पद से सहजो के कपाट खुल गये। दीपक तेल बत्ती में सिर्फ

सलाई की ही जरूरत रहती है। दियासलाई लगते ही दीपक जगमगा उठता है। सहजो बाई का बचपन के सत्संग के प्रभाव से मन तो विशुद्ध ही था। बस, गुरु वाणी मोह निद्रा को उड़ाती हुई, हृदय में पहुँच गई। विवेक चक्षु खुल गये। और विभोर होकर इस पद का उच्चारण करने लगी।

निश्चय जाता डूब मन, लोभ मोह की धार।
सहजो गुरु कृपा करी, वेग ही लई उबार॥
हरि कृपा जो होय तो, नहीं होय तो मनांय।
पै गुरु कृपा बिन, सकल बुद्धि वह जाय॥
सहजो गुरु कृपा करी, कहा कहूँ मैं खोल।
रोम-रोम पुलकित हुए, मुख नहीं आवे बोल॥

आगे चलकर वह एक महान आत्मा हुई। गुरु में ईश्वर से भी अधिक विशेषता दिखाते हुए कहा है :—

चौपाई :—

गुरु के सम हरि को न निहारूं, गुरु न तजूँ हरि को तज डारूँ।
हरि ने जगत जाल में गेरी, गुरु ने काटी ममता बेरी॥
हरि ने रोग भोग उरझायो, गुरु ने सब मिथ्या दरसायो।
हरि की माया तरी न जाई, गुरु कृपा से सो तर जांही॥

क्योंकि कहा है :—

दोहा :—

गुरु गोविन्द दोनुं खड़े, किसके लागुं पांय।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविन्द दिया मिलाय॥

इसी प्रकार संत रज्जब जी को भी एक पद सुनाकर ही उनके गुरुदेव ने जगाया था। रज्जब जी जब शादी करने जा रहे थे, तब जाते समय अपने गुरुदेव

के चरणों में नमस्कार करने गये। तब गुरुदेव जी ने उसे एक संस्कारी आत्मा जानकर कहा :—

दोहा :—

रज्जब तैं गज्जब किया, माथे बांध्यो मोड़।
आया था हरि भजन को, करी नरक में ठोड़॥

इतना सुनकर रज्जब सजग हो गया। बोला - हे प्रभो मुझे अपना कृपा-पात्र जानकर अपने श्री चरणों में स्थान दो। गुरुदेव कहते हैं - रज्जब मन को पूछ लो, नई दुनियां को देखकर मन फिर न तुझे बहा दे।

रज्जब ने कहा :—

रज्जब निज धरनी तजे, पर धरनी न सुहाय।
अहिं तज कांचुल अपनी, कांकी पहिरे जाय॥

इस प्रकार गुरु और क्या-क्या कृपा करते हैं।

मान सम्मान की चाहना को चकनाचूर करते हैं। किसी प्रकार के सतोगुणी अभिमान को भी प्यार नहीं देते। क्योंकि गुरु अभिमान निवर्तक हैं। इस पर एक दृष्टान्त :—

किसी समय एक शिवली नाम का गुरु भक्त गुरु दरबार में पहुँचा। सारे गुरु भाई उसके गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। बस तत्काल गुरु ने कहा, इस पापी को बाहर निकालो। यह सुनकर सभा स्तब्ध हो गई और उसे बाहर भेज दिया। पश्चात् गुरु की इस क्रिया को देखकर गुरु दरबार में स्थित संगतों के मन में शंका हो गई कि गुरुदेव ने अकारण ही शिवली को क्यों डाँटा? गुरु उनके मन की शंका को जानकर बोले, कि सुनो, यदि मैं ऐसा न करता तो वह बड़ाई उसके जीवन पर तलवार का काम करती, किन्तु मैंने अपमान रूपी ढाल से उसकी रचा की।

दोहा :—

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है, घड़-घड़ काढ़े खोट।
भीतर हाथ सहार दे, ऊपर मारे चोट॥

ऐसे अनेक इतिहास शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। जैसे :—एक जोगा नाम करके भी गुरु भक्त हुआ है। जिसका भी अभिमान गुरु ने तोड़ा।

पुनः गुरुदेव क्या दया करते हैं सो सुनो, क्या जन धन की प्राप्ति गुरु कृपा है? नहीं, पर भूले हुए प्राणी कहते हैं, कि गुरु महाराज जी की दया से हमें निरोगता की प्राप्ति हुई है। परीक्षा में पास हो गया, पुत्र रत्न की प्राप्ति हो गई। इत्यादिक भौतिक पदार्थों को प्राप्त करने में ही गुरु कृपा नहीं है।

दोहा :—

गुरु कृपा तब जानिये, फीके लागे भोग।
जितने जग के भोग हैं, सब ही दीखे रोग॥

अस्तु ज्ञान वैराग्य की प्राप्ति ही गुरु कृपा है। फिर कोई-कोई ऐसा भी कहते हैं, कि गुरुदेव (संत) धन, स्त्री, पुत्रादि छुड़ाते हैं। यह भी परम भूल है। धनादि पदार्थों से, स्त्री पुत्रादि से विच्छेद गुरु नहीं कराते, यह ड्यूटी (कार्य) तो यमराज की है। यमराज हमें प्यारे सम्बन्धियों से छुड़ाकर ले जाता है। हम कुछ नहीं कर सकते। सतगुरु केवल दुःखदायक आसक्ति का त्याग व ममता का दान करवाते हैं।

गुरु कृपा से जिज्ञासु दुर्लभ वस्तु को भी पा लेता है।

श्लोक :—

दुर्लभो विषयः त्यागो, दुर्लभं तत्व दर्शनम्।
दुर्लभाः सहजावस्था, सद्गुरो करुणां बिना॥

शब्दादिक विषयों का त्याग दुर्लभ है। तत्व दर्शन भी दुर्लभ है। एवं सहज समाधि भी दुर्लभ है। परन्तु इनकी दुर्लभता सतगुरु की कृपा न होने से ही है। अर्थात् सतगुरु की कृपा होने से यह दुर्लभ चीजें भी सुलभ हो जाती हैं। शास्त्र कृपा भी गुरु कृपा के होने पर ही होती है।

अतः जिज्ञासु को चाहिये कि गुरु शरण जाकर सेवा भक्ति द्वारा उन्हें प्रसन्न करके गुरु कृपा को सम्पादन करना चाहिये।

दोहा :---

ब्रह्म विद्या है ब्रह्म वली, ब्रह्म विद्या हैं भार।
बिन सतगुरु की कृपा, होय न तत्व बिचार॥

गुरु कृपा हो जाने पर ही ईश्वर कृपा सफल होती है। तथा शास्त्र कृपा भी गुरु कृपा होने से ही होती है। बिना गुरु के शास्त्रों द्वारा जिज्ञासु ज्ञान उपलब्ध नहीं कर सकता। जैसे :---

दोहा :---

वेद उदधि बिन गुरु लखे, लागे लवन समान।
बादर गुरु मुख द्वार व्है, अमृत ते अधिकान॥

इसलिये वेदान्त शास्त्रों का अध्ययन ज्ञानी गुरु के ही द्वारा करना चाहिये। अपने आप या भेद वादी गुरुओं के द्वारा अध्ययन करने से भेद बुद्धि दूर नहीं होती है। जैसे लोहे का गोला एक दीवाल को भी नहीं तोड़ सकता, पर वही गोला जब तोप के मुख द्वारा छोड़ा जावे, तो पूरे शहर को उड़ा देता है। इसी प्रकार ज्ञानी गुरु के मुख द्वारा श्रवण किया हुआ शास्त्र का बचन अज्ञान रूपी किले को उड़ा देता है। इसलिये गुरु कृपा के बाद ही शास्त्र कृपा बतलाई है।

—:०:—

३ शास्त्र कृपा

"तीजी कृपा सत शास्त्र की, दुविधा निवारण जो करे॥"

गुरु मुख द्वारा तत्वमसि महावाक्य श्रवण कर लेने के पश्चात भी यदि जीव ब्रह्म की एकता के विषय में जो संशय रह जाते हैं। वह शास्त्र के पठन-पाठन करने से दूर हो जाते हैं। इस लिये जिज्ञासु को गुरु मुख द्वारा ही वेदान्त शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये। साधारणतः भी हमारे दैनिक जीवन का स्वाध्याय एक अंग होना चाहिये। ["सर्वस्व लोचनं शास्त्रम्"] सर्व को आँख शास्त्र है। "विद्या स्फीयते ज्ञानम्" विद्या से अनुभव बढ़ता है।

"स्वाध्यायान् न प्रमादितव्यम्"

स्वआत्म चिन्तन करने में और शास्त्रों का अध्ययन करने में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

दृष्टान्त :—नारायण हरि नाम करके एक ब्रह्मनिष्ठ संत हुए हैं। जो अपने माता पिता के इकलौते पुत्र थे। वे बचपन काल से ही गुरु वाणी का पाठ किया करते थे। फलस्वरूप उन्हें परम वैराग्य की प्राप्ति हुई। आत्म ज्ञान प्राप्त करके जीवन मुक्त होकर विचरे। पुनः अनेकानेक जीवों को जगाया, ये भी शास्त्र कृपा ही है। ऐसे कई इतिहास मिलते हैं। जिन्होंने शास्त्रों को पढ़कर श्रेय मार्ग को अपनाया है। परन्तु साधक को उन ग्रन्थों का अध्ययन नहीं करना चाहिये। जो कि व्यवहार और परमार्थ में उपयोगी न हो।

दोहा :—

व्यवहार और परमार्थ में, जो पुस्तकें नहीं काम की।
उनका पठन करिये नहीं, यद्यपि मिले बिनु दाम की॥

मानव जीवन की सफलता बताते हुए, हमारे शास्त्रकारों ने कहा है :—

छंद :—

दुस्संग में जाता नहीं, सतसंग करता नित्य है।
दुर्ग्रन्थ ना पढ़ता कभी, सद्ग्रन्थ पढ़ता नित्य है।।
शुभ गुण बढ़ाता है सदा, अवगुण घटाने में कुशल।
मन शुद्ध है बस इन्द्रियां, नर जन्म उसका है सफल।।

—:०:—

४ स्वकृपा

"चौथी कृपा निज की कही, ला आचरण भव से तरे।।"

गुरु के बताये हुए उपदेश को मनन करना, तीव्र जिज्ञासा का होना अपनी कृपा है। चारों कृपाओं में अपनी कृपा ही प्रधान है। यदि मनुष्य अपने पर अपनी कृपा नहीं करता है तो वह आत्म प्राप्ति नहीं कर सकता है।

विवेक वैराग्यादि षट सम्पत्तियां, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, तत् और त्वं पद के शोधन आदि साधनों के लिये अपनी कृपा का होना परम अनिवार्य है।

छंद।—

आतम कृपा बिनु गुरु कृपा, नहीं काम में कुछ आय है।
आसक्ति हो निर्मूल तब ही, बोध सम्यक् पाय है।।
चातुर्यता इस जगत की, नहीं बोध में कुछ काम की।
कौशल्य। आतम बोध ही, है वस्तु एक आराम की।।

अर्थ :—

अपनी कृपा के बिना गुरु की कृपा, ईश्वर की कृपा, शास्त्र कृपा कुछ काम में नहीं आती है। जब जिज्ञासु विवेक, वैराग्य के द्वारा पंच भौतिक देह की एवं

परिवार की, अनित्य पदार्थों की अहं मम् रूप आसक्ति का परित्याग कर देता है। तभी ज्ञान का अधिकारी माना जाता है।

उसी को हरि भक्त कहा है :— (श्री रामायण में)

दोहा :—

वृति चरम असि ज्ञान मद, लोभ, मोह रिपु मार।
विजय पाय सो हरि भगत, देख खगेश विचार॥

मनुष्य बातें तो लम्बी-लम्बी करे। किन्तु साधना कुछ भी न करे, तो ऐसे मनुष्य को बातें ही प्राप्त होगी, लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी। लक्ष्य की प्राप्ति के लिये तीव्र जिज्ञासा के साथ सतत् पुरुषार्थ करना आत्म शक्ति का अधिकार प्राप्त करना अपने ही हाथों में हैं।

अतः जब तक निज आनन्द की प्राप्ति न हो जाय, तब तक जिज्ञासु को सतत् पुरुषार्थ करना चाहिये। इसी पर कहा है :—

छंद :—

भीतर मिले जब तक न सुख, तब तक निरन्तर यत्न कर।
आलस्य तज पुरुषार्थ कर, निर्द्वन्द्व हो मत धैर्य धर॥
जो कुछ मिले पुरुषार्थ से, ना देव आ दे जाय है।
चाबे बिना मुखग्रास भी, भीतर नहीं जा पाय है॥

इसी पर भर्तहरिजी ने भी कहा है :—

छंद :—

निज देह अरोग सभोग लखो, न पिखो जब तीक समीप जरा।
गुणमो शक्ति जब लौंन गति, दरशे न हतिजु सभी उमरा॥

जरते गृह कारण कूप खने, बहु उद्यम तो अंध कूप परा।
निज श्रेय निमित अमित करो, पुरुषार्थ को सु नरो उचरा॥

हे जीवों जब तक देह नीरोग है। इन्द्रियों को बलिष्ठ देख रहे हो, तो अपने कल्याण के लिये पुरुषार्थ करो। क्योंकि वृद्ध अवस्था के आ जाने पर रोगों का भजन होगा। आत्म भजन नहीं होगा। इसलिये ईश्वर भजन में प्रमाद नहीं करना चाहिये। जैसे :—

दोहा : -

कालि करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करेगो कब॥

बड़े खेद एवं लज्जा की बात है कि प्रमाद के कारण विषयासक्त जीव कहते हैं, कि काफी लम्बा जीवन है। अभी खाने पीने, मौज उड़ाने के दिन हैं। भजन भक्ति के लिये वृद्ध अवस्था होती है। उनके मगज पुराण का यह ख्याल होता है :—

दोहा :—

आज करे सो काल करे, काल करे सो परसों।
इतनी जल्दी क्या पड़ी, जीना तो है बरसों॥

परन्तु यदि गम्भीर मन से विचार करें तो क्या हम अपने जीवन का ठेका लेकर कह सकते हैं कि हम सौ साल तक अवश्य जीयेंगे ? या कल तक तो अवश्य जियेंगे ? नहीं कह सकते। यदि कहें भी तो हमारा कहना भ्रान्तियुक्त माना जायेगा। अस्तु, ऐसे शुभ अवसर को पाकर आत्म कल्याण के लिये पुरुषार्थ करने में प्रमाद नहीं करना चाहिये। पुरुषार्थी मानव व्यवहार और परमार्थ दोनों में विजय प्राप्त कर लेता है। इस पर परम पुरुषार्थी राजा विक्रम का इतिहास लिखते हैं :—

प्राचीन काल में विक्रमादित्य नाम के प्रसिद्ध महाराजा हुए हैं। वे एक समय शिकार खेलने गये। वहाँ उन्हें एक मृग नजर आया। राजा उस मृग के पीछे-पीछे घोड़ा दौड़ाकर गये। अंत में वह मृग इधर उधर झाड़ियों में छिप गया। राजा के नेत्रों से ओझल हो गया। राजा ने उसको खोजने के लिये इधर उधर घोड़ा दौड़ाया, परन्तु वह न मिला। उस वन में एक ब्राह्मण लकड़ियों का भार बाँध कर खड़ा था। किसी उठवाने वाले की प्रतीक्षा कर रहा था। इतने में महाराजा विक्रम वहाँ पर आ गये। उनसे उसने कहा—हे क्षत्रिय कुमार यह बोझ मेरे सिर पर रखवा दो। महाराजा विक्रम ब्राह्मण के वचन सुनकर बहुत हँसे और बोले, कि तू ब्राह्मण होता हुआ इतना दुर्बल क्यों है? जो तू लकड़ियों का भार भी स्वयं नहीं उठा सकता है। तुम्हारे में तो ब्रह्म तेज अधिक होना चाहिये।

तब ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् मैंने व्रत करते-करते देह को सुखा दिया है। इस पर भी तू हँसी करता है। परन्तु मैं भी तुम को बलवान क्षत्रिय कुमार तब तक नहीं समझूंगा, जब तक अनबोला राजकुमारी के साथ शादी नहीं कर लोगे। महाराजा ने कहा—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि जब तक मैं अनबोला राजकुमारी के साथ शादी नहीं करूँगा तब तक मैं भी अपने को शूरवीर नहीं समझूंगा। परन्तु अनबोला राजकुमारी का सब पता मुझे समझा दो। मैं उसके देश का रास्ता नहीं जानता हूँ। तब ब्राह्मण हँसा। राजा ने उससे हँसने का कारण पूछा।

ब्राह्मण ने कहा— बड़े-बड़े चक्रवर्ती महाराजा जाकर उसके दास बन गये हैं। परन्तु उसके साथ अब तक कोई भी शादी नहीं कर सका है। तो क्या तुम कर सकोगे? तुमने मेरी हँसी करी, इसलिये मैंने भी हँसकर कह दिया, परन्तु राजा अपने प्रण से न हटा। ब्राह्मण को घोड़े पर बैठाकर उसके आश्रम पर ले गये, और छोड़ दिया। फिर अनबोला राजकुमारी के देश का रास्ता पूछा।

तब ब्राह्मण ने कहा—राजन् उत्तर दिशा की ओर चले जाओ। हजारों

योजन दूर जाने पर एक वृक्ष पर चार सिर लटके हुए मिलेंगे। जो सिर कभी रोयेंगे, कभी हँसेंगे। तुम उनसे अनबोला राजकुमारी के देश का रास्ता पूछ लेना। राजा सत्य वचन कह कर अपने शहर में आ गये। सब राज्य का कार्य मंत्रियों को सम्भला कर, कुछ धन साथ में लेकर, घोड़े पर सवार होकर उत्तर दिशा की ओर चल पड़े। काफी दिन चलते-चलते राजा उसी वन में पहुँचे जहाँ चार सिर एक ही वृक्ष पर लटक रहे थे। वे चारों सिर राजा को देखकर प्रथम तो हँसे, फिर वे रोने लगे। राजा ने उनके रोने और हँसने के कारण पूछा। उन्होंने कहा—हे राजन् हमारे हँसने का कारण यह है, कि तुम मर कर हमारे पास आ जाओगे। तब हम चार से पाँच अनाचारी हो जायेंगे। रोये इसलिये कि तुम परोपकारी राजा हो, आपके मरने के बाद देश बिगड़ कर अनाचारी हो जायेगा। आप अनबोला राजकुमारी के पास मत जाओ, नहीं तो हमारी जैसी दशा आपकी भी होगी।

यह सुनकर महाराजा विक्रम ने कहा—मेरी प्रतिज्ञा है कि अनबोला राजकुमारी के साथ शादी करके ही शूरवीर कहलाऊंगा, यह मेरी अटल प्रतिज्ञा है। अगर आपको मेरे पर दया आ रही है, तो आप हमारी मदद करो, तथा रास्ते के विघ्न को दूर करने की युक्ति बताओ। तब उन चारों सिरों को राजा के वचन सुनकर दया आई, और कहा कि अगर आप एक काम करो, तो हम आपकी मदद कर सकते हैं। महाराजा ने कहा—मैं तैयार हूँ। तब उन्होंने कहा—जब आप इस रास्ते से चलते हुए कुछ दूर जायेंगे, तब आपको इन्द्र के नन्दन वन जैसा एक रमणीय आश्रम दिखाई देगा। जब आप उस आश्रम में जायेंगे, तो उसको देखकर आप का चित्त उस पर मुग्ध हो जायेगा। फिर ऐसा संकल्प होगा, कि पूर्ण आयु यहीं रहकर व्यतीत करूँ। परन्तु उस आश्रम में एक योगी रहता है। जो कि अपना शिष्य बनाये बिना किसी को भी रहने नहीं देता है। आपका भी दिल ललचायेगा, कि मैं भी इनका शिष्य बनूं, और आप उनसे शिष्य बनने की

प्रार्थना भी करेंगे। तब वह योगी बनावटी भाव से आप को निषेध करेगा। परन्तु आप उस पर मोहित हो जायेंगे। तब वह योगी तेल का कड़ाहा अच्छी तरह तपा कर आप को कहेगा, कि इसको चार परिक्रमा करो। फिर मेरे को दण्डवत प्रणाम करो। तब मैं आपको अपना शिष्य बनाऊंगा। परन्तु आप दण्डवत प्रणाम नहीं करना, वह योगी नहीं, बल्कि धूर्त ठग है। इसलिये हम आपको आपके हित की बात कहते हैं। यदि आप उसको दण्डवत प्रणाम करेंगे, तो वह आपको पकड़ कर तेल के तप्त कड़ाहे में डाल देगा। तब आपका मस्तक तो हमारे पास आ जायेगा, और धड़ को वह भून कर खा लेवेगा। इसलिये जब वह आप से कहे कि, मुझे दण्डवत प्रणाम करो। तब आप कहना कि मैं चक्रवर्ती राजा हूँ। मैंने आज तक किसी को दण्डवत प्रणाम नहीं किया। इसलिये आप ही मुझे दण्डवत प्रणाम करके बताओ, कि किस प्रकार दण्डवत प्रणाम किया जाता है। फिर मैं दण्डवत प्रणाम करूंगा। जब वह आप को दण्डवत प्रणाम करके दिखलाने लगे, तब आप पकड़ कर उसको, उसी तेल के कड़ाहे में डाल दीजियेगा। जब वह जल भुन जावे, तब उस कड़ाहे के तेल को लाकर हमारे ऊपर छिड़क देना। तब बाद में हम देवता बन जायेंगे। फिर हम आप की हर तरह से सेवा मदद करेंगे।

राजा ने यह बात सुनकर उनसे कहा—ठीक है, मैं ऐसे ही करूँगा। फिर वे नमस्कार करके आगे चल पड़े।

तो रास्ते में राजा को बड़ा ही सुन्दर बाग दिखाई दिया। जिस बाग में अनेक प्रकार के फूल फल लगे हुए थे। अनेक प्रकार के पत्ती किलोल कर रहे थे। राजा ऐसे रमणीक स्थान को देखकर रह न सका, और उस उपवन को देखने के लिये उसके भीतर चला गया। वहाँ पर एक योगी को देखा, जिसकी अपसराओं के सहित देवता भी पूजा कर रहे हैं। अणिमा, महिमा आदि आठ सिद्धियाँ हाथ जोड़े खड़ी हैं। इस प्रकार से योगी का प्रताप तथा उपवन को देखकर राजा का विचार हुआ, कि मैं भी इसी जगह रह जाऊं। राजा ने बड़ी

श्रद्धा के साथ कहा—हे भगवन ! आप मुझे शिष्य बना लीजिये, तो मैं यहाँ पर आपके पास रह कर आप की सेवा सुश्रूषा करूँगा। योगी ने बनावटी भाव से मना किया, परन्तु राजा के बहुत आग्रह करने पर तेल का कड़ाहा तपा कर राजा से कहा—हे राजन् इसकी चार परिक्रमा करके मुझे दण्डवत प्रणाम करो। फिर मैं तुमको शिष्य बना लूंगा। तब राजा को वृक्ष वाले सिरों की स्मृति आई। राजा ने योगी को कहा—महाराज मैं दण्डवत प्रणाम करना नहीं जानता हूँ। कृपा कर के आप ही मुझे दण्डवत प्रणाम करके बतावें। जब योगी राजा को दण्डवत प्रणाम करके दिखलाने लगा, तब राजा ने झटपट उसे पकड़ कर, तप्त तेल के कड़ाहे में डाल दिया। जब वह तेल में जल गया, तो राजा ने तेल लेकर उन चारों सिरों पर छिड़क दिया, तब वे चारों सिर देवता बन गये। कहा—कि महाराज! अब हम आपके चार वीर हो चुके हैं। जहाँ भी आपको हमारी आवश्यकता हो, वहाँ हमको याद करना। हम उसी समय आपकी सेवा मदद में उपस्थित हो जायेंगे। तथा अनबोला राजकुमारी के साथ आपकी अवश्य ही शादी करवा देंगे।

अब हम जाते हैं। आपको हजारों कोस चलने के बाद अनबोला रानी का चतुष्कोण गढ़ दिखाई देगा। वहाँ शान्त सच्चा योगी बैठा होगा। उनको श्रद्धा और प्रेम के सहित सेवा करके प्रसन्न करना, फिर आगे जाने का उपाय पूछना। तब वह कहेंगे कि ये मरी हुई पाँच चिड़ियों को उठाकर हमारे पास रख दो, और भीतर चले आओ। आप कितना भी जोर लगावोगे, परन्तु आप एक चिड़ियाँ को भी न उठा सकोगे तब आप हमको याद करना। हम चिड़ियों को उठाकर योगी के पास रख देगें। फिर आप भीतर चले जाना। महाराज विक्रम ने ऐसा ही किया, और उनसे आज्ञा लेकर आगे को चला तो उसी जगह एक गढ़ दिखाई दिया। राजा अन्दर गये और योगी का दर्शन किया, उनको नमस्कार तथा सेवा करके प्रसन्न किया। योगी ने कहा—हे राजन् क्या चाहता है? राजा विक्रम ने कहा कि मैं अन्दर जाना चाहता हूँ। तब योगी ने मरी हुई पाँच चिड़ियाँ दिखलाई और कहा कि इनको उठाकर हमारे पास रख दो और अन्दर चले

जाओ। राजा ने बड़ा जोर लगाया, परन्तु वे न उठी। तब वीरों को याद किया। याद करते ही उनकी मदद से पाँचों चिड़ियों को उठाकर योगी के समीप रख दी और अन्दर जाने लगे, जाते समय योगी तथा वीरों ने कहा—अब अन्दर जाओगे तो एक मंत्री मिलेगा। उसको नमस्कार तथा तन, मन, धन से सेवा करके प्रसन्न करना। वह तुम्हें कठिन से भी कठिन सेवा बतलावेगा। तुम सब सेवा स्वीकार कर लेना, यदि न कर सको तो हमारे को याद करना, हम आपकी सहायता करेंगे। कारण मंत्री की प्रसन्नता बिना अन्दर नहीं जा सकोगे, क्योंकि अनबोला राजकुमारी का पिता तो विरक्त होकर एकान्त में बैठा हुआ है। इसलिये अनबोला राजकुमारी की शादी करना मंत्री के आधीन है। मंत्री ने ही इसकी शादी के नियम बनाये हैं। इसलिये प्रथम मंत्री को प्रसन्न करना चाहिये। इस प्रकार वीरों ने राजा को समझाकर मंत्री के पास भीतर भेज दिया। जब महाराजा किले के अन्दर गये, तो क्या देखते हैं, कि अनबोला राजकुमारी की इच्छा से हजारों राजकुमार मंत्री की कठिन से कठिन आज्ञाओं का पालन कर रहे हैं। परन्तु अभी तक अनबोला राजकुमारी को कोई भी प्राप्त नहीं कर सका था। राजा विक्रम भी सबको देखता हुआ भयभीत होकर मंत्री के समीप पहुँचा और प्रार्थना की, कि मैं भी अनबोला राजकुमारी की प्राप्ति की इच्छा करता हूँ। आपके ही द्वारा उसकी प्राप्ति होगी। मंत्री ने कहा—अनबोला राजकुमारी की प्राप्ति के बड़े कठिन नियम हैं। जो उन नियमों को पूर्ण करेगा। वही उसके साथ शादी कर सकता है। राजा ने स्वीकार किया। तब मंत्री ने बड़ी कठिन-कठिन परीक्षाएँ लीं। परन्तु महाराजा विक्रम चारों वीरों की सहायता से सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गये। तब मंत्री प्रसन्न होकर अपने चित्त में विचार करता है कि नया राजकुमार बड़ा शूरवीर, बुद्धिमान तथा उपासक है। देवता लोग इसकी सहायता भी करते हैं। यह राजकुमार अनबोला राजकुमारी के योग्य वर भी है। इसलिये इसको कुछ अपना भेद भी बतला देना चाहिये। ऐसा विचार कर राजकुमार को कहा कि अब केवल एक और प्रतिज्ञा रह गई है। वह यह है कि रात्रि के चार पहरों में प्रति पहर में एक

बार अगर किसी भी उपाय से तुम अनबोला राजकुमारी को बुलवा दोगे। तो बस उसके साथ तुम्हारी शादी हो जायगी। इसलिये मैं भी तुमको युक्ति बतलाता हूँ। कि तुम अपने मित्रों तथा देवताओं के सामने प्रश्न रख देना। उन प्रश्नों का उत्तर अन्याय से देना, तब वह क्रोध में आकर एकदम बोल पड़ेगी। इसी प्रकार प्रत्येक पहर में उसे बुलवा लेना। अगर तुम्हारे से न बोलेगी, तो मैं अवश्य बुलवा दूँगा। तब तू मेरी कृपा से अनबोला राजकुमारी को अवश्य प्राप्त कर लेगा।

इतना कह कर मंत्री ने रात्रि के समय, राजा विक्रम को अनबोला राजकुमारी के समीप ले गया। कहा, यह रात्रिभर सोती नहीं है। बैठी ही रहती है। जो कोई इसको रात्रि में चार बार बुलवा देगा वह ही इसका पति बनेगा।

महाराजा ने अनेक हो युक्तियों तथा चतुरता से बुलवाना चाहा, परन्तु वह न बोली। तब मन्त्री ने संकेत किया, कि देवताओं को बुलाओ। तथा राजनैतिक वार्ता सुनाओ, तब यह बोलेगी। महाराजा विक्रम ने संकेत समझ कर वीरों को याद किया। वे तत्काल ही उपस्थित हो गये। तब उनसे कहा कि तुम महल के भिन्न-भिन्न स्थानों पर बैठ जाओ। आपस में राजनैतिक वार्तालाप करो।

वे चारों ही आज्ञा को शिरोधार्य करके एक तो दीपक में बैठ गया। दूसरा अनबोला राजकुमारी की छाती पर लटकते हुए हार में, तीसरा पलंग के पावे में, चौथा घड़े में बैठ गया। महाराजा विक्रम ने दीपक में बैठे हुए वीर से पूछा। अरे दीपक! तू अनबोला राजकुमारी के पास रहकर प्रसन्न तो है? तब दीपक राजकुमारी की निंदा करते हुए कहने लगा, कि मैं इसके पास रह कर अत्यन्त ही दुःखी हूँ। क्योंकि आठो पहर जलता रहता हूँ। यद्यपि मैं अग्नि हूँ। सूर्य, चन्द्र, तारे, बिजली सर्व मेरे ही स्वरूप है। परन्तु जो दिन को काम करता है, वह रात्रि को काम नहीं करता है। जो रात्रि को काम करता है, वह दिन में विश्राम कर लेता है। परन्तु मुझे तो इस पत्थरवत कठोर हृदय वाली

राजकुमारी की आठों पहर सेवा करनी पड़ती है। इसलिये अपना दिन का भी आराम छोड़ कर आठों पहर जलता हूँ। इसलिये मैं महान ही दुःखी हूँ। दूसरी यह बात है कि इसने मेरे पर ऐसी जाली रूप उपाधि डाल रखी है जो कि मेरे प्रेमियों को भी मेरे से नहीं मिलने देती है। मेरे प्रेमी पतंगे हैं। वे इस जाली के प्रतिबन्धक होने से मुझसे मिल नहीं सकते हैं। यह दूसरा दुःख है। तीसरी बात यह है, कि मेरा साथी जो धूम है। मेरे को उसके पास भी नहीं जाने देती है। ऐसा इसने मुझे बाँध रखा है। मैं तो इसको यही शाप दूँगा, कि यह नष्ट हो जावे। इसका खाना खराब हो जाय। इस प्रकार के अनेकानेक दुर्वचन कहे। परन्तु अनबोला राजकुमारी न बोली, तब दीपक कहने लगा, अरे राजा विक्रम! मैं आपसे कोई राजनीति की बात पूछना चाहता हूँ। क्योंकि मैंने राजनैतिक नक्शे देखे सुने हैं। आप तो राजा ही हो। "राजा चुली न्याय की" राजनीति अनुसार न्याय करते हो, इसलिये मेरी बात का भी इन्साफ करिये। आप मुझे सन्तोषपूर्ण उसका उत्तर देंगे। राजा ने कहा—पूछो, तब दीपक ने कहा—

हे राजा विक्रम! एक ब्राह्मण था, उसके यहाँ एक अति रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। जब वह कन्या वर के योग्य हुई तब उसके माता पिता तथा भाई ने आपस में विचार किया, कि इस कन्या के लिये कोई अति सुन्दर तथा विद्वान, सर्व गुण सम्पन्न वर होना चाहिये। इस प्रकार सम्मति करके तीनों ही वर की तलाश में निकल पड़े। तलाश करते-करते लड़की के पिता ने योग्य वर देख कर अपनी लड़की की सगाई कर दी उस कन्या की माता ने किसी और के साथ सगाई कर दी। उसका भाई भी तीसरी जगह सगाई करके आ गया। अर्थात एक लड़की की तीन लड़कों के साथ (मंगनी) सगाई हो गई। तीनों की बारात आ गई। आपस में झगड़ा होने लगा। एक कहे कि शादी मेरे साथ होगी, दूसरा कहे कि शादी मेरे साथ होगी, तीसरा कहे कि शादी मेरे साथ होगी। तब वह कन्या यह वार्ता सुनकर बहुत ही लज्जित हुई, और अन्दर जाकर हीरा चाट कर

मर गई। उस कन्या के मरने के पश्चात् एक वर तो उसके साथ ही चिता में जल गया। दूसरा उन दोनों की हड्डियों को इकट्ठी करके उनके ऊपर मठ बनाकर रहने लगा।

तीसरा उनको जीवित करने के लिये संजीवनी मंत्र ढूंढने लगा। इधर-उधर खोज करता हुआ एक ब्राह्मण के घर पहुँचा। उसे भूख अधिक लगी थी। वह ब्राह्मण भोजन कर चुका था। तब उन्होंने कहा—बैठो, अभी आपके लिये भोजन तैयार कर देते हैं। ब्राह्मणी तो भोजन बनाने लगी और उसका पति दही लाने के लिये बाजार में गया। वर्षा के दिन थे, लकड़ियां बहुत गीली थीं। इसलिये अग्नि नहीं जल रही थी। उस ब्राह्मणी का एक वर्ष का बालक बहुत रोता तथा उसे तंग करता था। उधर वह अतिथि ब्राह्मण कह रहा था, कि भोजन शीघ्र बनाओ, मुझे भूख लग रही है। परन्तु बालक कार्य नहीं करने देता था। तब ब्राह्मणी ने अतिथि सेवा को मुख्य समझ कर अपने बालक को अग्नि में डाल दिया। वह जल कर मर गया। अतिथि ब्राह्मण बड़ा भयभीत हुआ। जब कि इसने अपने बालक को अग्नि में जला दिया है तो मुझे कब छोड़ेगी। यह तो कोई राक्षसों का घर है। ऐसा विचार करके वह वहाँ से भाग निकला, थोड़ी ही दूर पर उसे घर वाला ब्राह्मण मिला और उससे भागने का कारण पूछा। उसने सर्व हाल कह सुनाया, तब उस ब्राह्मण ने अतिथि को संतोष दिया, और कहा, कि डरो मत, हम प्रथम तो बालक को जीवित कर देंगे, फिर आप भोजन करना। ऐसे कह कर अतिथि को वापिस घर ले आया। तब ब्राह्मण ने संजीवनी विद्या द्वारा बालक को जीवित कर दिया। वह अतिथि मृत बालक को जीवित किया देख कर कहने लगा, कि मैं तो भोजन तब ही करूंगा, जब प्रथम मुझे यह विद्या सिखलाओगे। क्योंकि मुझे भी अपनी स्त्री को जीवित करना है। उस ब्राह्मण ने अतिथि का वचन मान कर प्रथम संजीवनी विद्या सिखलाई, फिर भोजन कराया।

उस अतिथि ने घर वापिस आकर उसी शहर में अपनी स्त्री के माता पिता

तथा भ्राता को बुलाया और पंचायत इकट्ठी की, और मठ वाले संत के समीप आ गये। कहा कि अस्थियों को निकालो, संजीवनी विद्या द्वारा उसको प्रथम जीवित करेंगे। फिर पंचायत जिसको देगी, वही उसको ग्रहण करेगा। तब उसने अस्थियाँ निकाल कर दीं। जब उन पर संजीवनी मंत्र पढ़ा, तब वह कन्या और उसके साथ जला हुआ लड़का दोनों ही जीवित हो गये। अब फिर तीनों का आपस में झगड़ा होने लगा। हर एक कहने लगे, कि इसकी मेरे साथ शादी होनी चाहिये। हे राजन् आप ही न्यायानुसार बताइये, कि कन्या किसको देनी चाहिये ? राजा कहने लगा, इसमें सन्देह ही क्या है ? जो उस कन्या के साथ जल गया था, उसको मिलनी चाहिये। अथवा जिसने जीवित की उसको मिलनी चाहिये।

तब अनबोला राजकुमारी कहने लगी, कि अरे मूढ़ विक्रम ! वह कन्या दोनों को ही नहीं मिलेगी। क्योंकि साथ मरने वाला जो फिर से जीवित हो गया है, वह तो भाई के समान है। जीवित करने वाला पिता के समान है। वह कन्या तो उसको मिलनी चाहिये। जो कि मठ बना कर श्मशान भूमि में बैठा रहता था। अरे मूढ़ ! तुम राज्य कार्य किस प्रकार करते होगे।

तब महाराजा कहने लगे, कि हमें तो तुम्हारे को बुलाने से तात्पर्य था। अब तुम एक बार बोल ही पड़ी हो। शादी में चार लावां (परिक्रमा) होती है। अब एक परिक्रमा तो मेरी सिद्ध हो गई, तीन शेष रहती है। तब अनबोला राजकुमारी कहने लगी—कि मुझे याद नहीं थी, इसलिये मैं धोखे में आकर बोल पड़ी। अच्छा, जब तक चार बार नहीं बुलवाओगे, तब तक शादी नहीं होगी। इसलिये मैं अब नहीं बोलूंगी। इस प्रकार कह कर चुप हो गई। तब महाराजा विक्रम ने उसको दूसरी बार बुलाने के लिये अनेक यत्न किये। परन्तु वह न बोली।

तब अनबोला के हार में रहने वाले वीर से राजा कहने लगा। अरे !

अनबोला राजकुमारी के हार! तू इसके हृदय पर रहता हुआ सुखी है वा दुःखी है? तब हार कहने लगा, कि मैं इस नीच तथा कठोर हृदय वाली अनबोला को स्पर्श करके महान् ही दुःखी रहता हूँ। मेरे को शान्ति नहीं आती। क्योंकि इसने मेरा अपने सम्बन्धियों से वियोग करा दिया है। तथा उनको मारकर अपने कठोर हृदय पर हमें धागे में पिरोकर बन्धन में डाल रखा है। हम अपनी-अपनी जगह में बड़े आनन्द से रहते थे। हमारे में कोई सीप का मोती है, कोई गज का मोती है, कोई किसी पर्वत का माणिक्य है, कोई किसी जगह की मणी है। उन स्थानों से मंगाकर अपने हृदय पर जो कि पत्थर से भी कठोर है। उस पर हमको धारण कर रखा है। हे महाराजा विक्रम! हम आप से चित्त की प्रसन्नता के लिए एक वार्ता कहते हैं। आप उसका यथार्थ उत्तर दीजियेगा। महाराजा कहने लगे—हाँ बड़ी खुशी के साथ पूछो।

तब हार में स्थित वीर ने महाराजा विक्रम से कहा—कि एक चक्रवर्ती राजा बड़ा शूरवीर तथा देवी का उपासक था। वह एक दिन शिकार खेलने गया, वापिस आते समय प्यास की निवृत्ति के लिये एक ग्राम में कुएँ पर गया। वहाँ शूद्रों की कन्यायें पानी भर रही थीं। उनमें एक कुम्हार की कन्या अति सुन्दर तथा युवती थी। राजा उसको देखकर मोहित हो गया। उस कन्या का नाम, घर आदि पूछकर उसके माता पिता के पास पहुँच कर उनसे कन्या मांगी। तथा रुपयों पैसों का लोभ देकर बहुत यत्न किया। परन्तु उन्होंने राजा की एक भी न मानी। कहा, कि हम अपनी समाज बिरादरी के पूछे बिना आप को नहीं दे सकते। तब राजा ने दुःखी होकर देवी के मन्दिर में जाकर आराधना करके देवी को प्रसन्न किया और कहा कि मुझे एक वर्ष पर्यन्त उस कन्या के साथ सुख का अनुभव कर लेने दो, फिर मैं अपना सिर काट कर आपके चरणों में रख दूंगा। तब देवी ने प्रसन्न होकर उसको वर दिया, कि वह कन्या तुमको मिल जावेगी।

तब उधर कुम्हार के मन में ख्याल हुआ, कि हमारे देश का राजा है। यह

जबरदस्ती भी ले सकता है। इसलिये उसको स्वयं कन्या देनी ही उचित है। ऐसी प्रेरणा होते ही कुम्हार अपनी कन्या को राजा के पास ले गया। राजा ने प्रसन्न होकर उसके साथ शादी कर ली। जब एक वर्ष पूरा हो गया। तब एक दिन वह राजा, मंत्री और अपनी नव विवाहित कुम्हार की कन्या को साथ लेकर बाग में भ्रमण करने के लिये गये। रास्ते में देवी का मन्दिर आया। तब राजा को अपनी की हुई प्रतिज्ञा याद आई। मंत्री और स्त्री को कहा—कि तुम दोनों यहाँ ठहरो, मैं देवी को नमस्कार करके आता हूँ। राजा मन्दिर में जाकर अपनी तलवार से अपना सिर काट कर देवी के चरणों में रख दिया। जब बहुत देर हो गई, राजा वापिस न आये, तब मन्त्री ने रानी से कहा, कि आप यहीं पर ठहरे, मैं राजा साहब को बुलाकर लाता हूँ। जब मंत्री ने मन्दिर में जाकर राजा को मरा हुआ देखा, तो सोचा कि कहीं रानी को यह शंका न हो जाये, कि मंत्री ने ही राजा को मार दिया है। इसलिये उसने भी अपना सिर काट कर देवी को भेंट कर दिया।

जब बहुत देर हो गई, मंत्री और राजा दोनों ही वापिस नहीं आये। तो रानी आप मन्दिर में गई, तो वहाँ पर दोनों को मरा देखकर विचार करने लगी, कि अगर मैं अब यहाँ से लौट कर राज्य में जाऊँगी, तो प्रजा मेरी निन्दा करेंगे। कि इसने ही अपने पति देव को तथा मंत्री को मार दिया है। इस प्रकार से मेरे को और माता पिता को कलंक लगेगा। और अपयश वाले का जीना तो मरने के समान है। इसलिये मुझे मरना ही श्रेष्ठ है। ऐसे विचार करके अपने पति वाली तलवार को उठाकर अपना सिर काटने लगी। तब देवी तुरन्त प्रगट होकर उसके तलवार वाले हाथ को पकड़ कर कहने लगी। कि वर मांग। तब रानी ने कहा, कि दोनों को जीवित कर दो। देवी ने कहा कि इनके सिर धड़ पर रख दो। तब मैं इनको जीवित कर दूंगी। रानी ने घबराहट में राजा का सिर तो मंत्री के धड़ पर रख दिया और मंत्री का सिर राजा के धड़ पर रख दिया। देवी ने उनके ऊपर जल छिड़क दिया। तब वे दोनों जीवित हो गये। अब रानी

बड़े आश्चर्य में पड़ गई, और निश्चय न कर सकी, कि किसको पति स्वीकार करूँ। हे महाराजा विक्रम! आप ही बताओ, कि वह किसे पति ग्रहण करे।

तब राजा ने कहा—कि इसमें तो पूछने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि जिस शरीर में राजा का धड़ है और मंत्री का सिर है। वही रानी का पति होना चाहिये। यह वचन सुन कर अनबोला राजकुमारी को बड़ा क्रोध आया। और कहने लगी, कि अरे मूर्ख! धड़ वाला कैसे पति हो सकता है। क्योंकि सर्व शरीर में सिर ही उत्तमांग है, और अग काट जाने पर दूसरे भी लगाये जा सकते हैं। अगर न भी लगावें, तो जीवित रह सकता है। परन्तु सिर कटने पर दूसरा सिर नहीं लगाया जा सकता। क्योंकि पहिचान भी सिर से ही की जाती है। फोटो भी सिर की ही ली जाती है। तथा सन्तान उत्पत्ति का कारण जो वीर्य है, वह भी मस्तक में ही रहता है। इसलिये जिस धड़ पर राजा का सिर है, वही उस रानी का पति हो सकता है। तब महाराजा विक्रम कहने लगे, कि हमारा तो आपको बुलाने का तात्पर्य था। अब तुम बोल ही पड़ी हो। तब अनबोला राजकुमारी कहने लगी, कि तुमने मुझे युक्ति से बुलाया है। अब मैं नहीं बोलूंगी।

तब तीसरी बार राजा विक्रम ने अनेक उपाय किये। परन्तु वह न बोली। तब शीघ्र ही पलंग के पावे में जो स्थित वीर था, उसको महाराजा ने पूछा—कि तू अनबोला राजकुमारी के पास रहता हुआ सुखी है वा दुःखी है? तो वह कहने लगा, कि मैं महान् ही दुःखी हूँ। क्योंकि मैं पहिले मलयगिरि में चन्दन का वृक्ष था, वड़े आनन्द से रहता था, और अपनी सुगन्ध से हजारों वृक्षों को चन्दन के वृक्ष बनाता था। तथा अनेक मनुष्य मुझे घिस कर अवतारों पर तथा संत महात्माओं के मस्तक पर लगाते थे। पूजन में सबसे पहिले मेरी आवश्यकता होती थी। मैं अनेक परोपकार करता था। परन्तु इस कठोर दिल वाली अनबोला राजकुमारी ने मुझे मूल से ही कटवा दिया। फिर पलंग बनवा कर

बन्द स्थानों में रख छोड़ा है। इसलिये मैं महान् ही दुःखी रहता हूँ।

अच्छा महाराजा विक्रम! मैं आप से एक राजनीतिक न्याय पूछता हूँ। आप कृपा करके उसका यथार्थ उत्तर देवें। इस प्रकार वार्तालाप करने से मेरा चित्त प्रसन्न हो जायेगा। महाराजा ने कहा—कि मैं बड़ी प्रसन्नता पूर्वक उसका उत्तर देने के लिये तैयार हूँ। तब वीर ने कहा, कि एक राजा के घर बहुत यज्ञ करने से एक लड़की पैदा हुई। उस कन्या को विद्या पढ़ाकर अत्यन्त ही विदुषी बनाया। जब वह कन्या विवाह योग्य हुई, तब अनेक राजकुमार उसके साथ शादी करने को तैयार हो गये। परन्तु उस कन्या के पिता ने कहा—कि जो अपूर्व गुणवान होगा, उसको ही यह कन्या दी जायेगी। राजा की यह प्रतिज्ञा सर्व देशों में प्रसिद्ध हो गई। कि राजा साहब किसी अपूर्व गुण वाले को कन्या देंगे। तब अनेक पुरुष अपने-अपने गुण दिखलाने के लिये राजा के पास आये। एक बार अपना-अपना गुण दिखाने के लिये आये हुए भिन्न-भिन्न शहरों के तीन पुरुष एक धर्मशाला में इकट्ठे हो गये। राजकन्या से सम्बन्धी वार्तालाप करते हुए परस्पर अपने-अपने गुण सुनाने लगे।

प्रथम ने कहा, मैंने एक ऐसी दूरबीन तैयार की है, कि वह कन्या यदि पाताल में अथवा आकाश में कहीं भी चली जाये, तो उस दूरबीन द्वारा जिस समय चाहूँ, मैं उस कन्या का दर्शन कर सकता हूँ। दूसरे ने कहा—कि मैंने एक ऐसा विमान तैयार किया है, कि जिससे मिलना चाहूँ, चाहे वह कितना भी दूर हो, मैं उससे विमान द्वारा मिनटों में मिल सकता हूँ। तीसरे ने कहा—कि मैंने एक ऐसा धनुष तैयार किया है। जो उस धनुष द्वारा छोड़ा हुआ बाण देवता राक्षस तथा मनुष्य सर्व पर जय प्राप्त करा सकता है। जब तीनों ने अपनी-अपनी विद्या कही, तब दूरबीन वाले को कहा कि तुम अपनी दूरबीन दिखाओ, हम भी देखें कि वह कन्या कहाँ पर है? तब उसने दूरबीन निकाली और तीनों ने यथाक्रम से उस दूरबीन द्वारा देखा, कि राजकन्या को जो कोई राक्षस ले गया है, और अमुक

पहाड़ में उस राक्षस की गुफा में रहती है। तब विमान वाले को कहा कि जल्दी से विमान तैयार करो। उस कन्या के माता पिता को भी साथ लेकर वहाँ चलें। तब वे तीनों विमान में बैठकर उसके माता पिता के पास आये। और पूछा कि कन्या कहाँ है? उन्होंने बड़ा दुःख से कहा, कि पता नहीं कोई राक्षस ले गया, अथवा कोई और चुरा ले गया है। तब वे उसके माता पिता को विमान में साथ बैठा कर, उस राक्षस को गुफा के समीप पहुँचे। तो राक्षस को देखकर उस धनुष बाण वाले को कहा—कि इस राक्षस को मारो। तब उसने बाण द्वारा राक्षस को मार दिया। तब उन तीनों गुणवानों में राजकन्या की शादी के लिये परस्पर विवाद होने लगा। हे महाराजा! अब आप ही बताओ कि राजकुमारी को शादी किसके साथ होनी चाहिये?

तो राजा विक्रम ने कहा—कि इसमें शंका ही क्या है? वह कन्या तो विमान वाले को मिलनी चाहिये। क्योंकि यदि वह विमान द्वारा वहाँ पर नहीं पहुँचाता तो वे दोनों किसी भी तरह से ऐसे दुर्गम स्थान में नहीं पहुँच सकते थे। तब अनबोला राजकुमारी ने कहा—कि विमान बनाने वाले वढ़ई को वह कन्या किस प्रकार मिल सकती है, और न उस दूरबीन बनाने वाले को ही अधिकार है। उसकी तो शूरवीर धनुष चलाने वाले क्षत्रिय राजकुमार के साथ शादी होनी चाहिये। तब राजा विक्रम कहने लगे, कि हमारे को तो तुम्हारे को बुलवाने से तात्पर्य था। अब तुम तीसरी बार बोल ही पड़ी हो। तब वह कहने लगी, कि अच्छा अब मैं चौथी वार तो कभी भी नहीं बोलूँगी। महाराजा विक्रम चतुर्थ पहर में उसको बुलाने के लिये बहुत प्रयत्न किये। परन्तु वह न बोली।

तब राजा विक्रम ने कलश में स्थित वीर को कहा—अरे कलश, तू अनबोला राजकुमारी के पास रहता हुआ सुखी है अथवा दुःखी है। तब वह कहने लगे, कि मैं इसके पास महान् ही दुःखी हूँ। इसने मुझे बड़े असाध्य दुःख दिये हैं। क्योंकि मैं द्वारका के पास गोपी तालाब में रहता था। वहाँ अनेक यात्री आते और

हमारा तिलक बनाकर मस्तक पर लगाते थे। इस राजकुमारी ने मुझे वहाँ से मंगवा कर कूटकर और चाक पर चढ़ाकर अग्नि में जलाया। अब इसके पास रहने से किसी के भी दर्शन नहीं होते हैं। इसलिये मैं बड़ा दुःखी रहता हूँ। इस तरह अनेक प्रकार की अनबोला राजकुमारी की निन्दा करने पर भी वह न बोली। तब कलश में स्थित वीर ने कहा—कि कोई राजनैतिक न्याय सुनाओ। राजा ने कहा—हाँ अच्छी तरह से पूछो।

तब वह वीर बोला—कि एक शहर में भिन्न-भिन्न जाति वाले चार आदमी हरिद्वार कुम्भ के लिये चले, और अपने रोजगार के लिये अपने-अपने काम करने के साधन भी साथ में ले लिये। उनमें एक बढ़ई, दूसरा दर्जी, तीसरा सुनार और चौथा ब्राह्मण था। चलते-चलते रास्ते में एक सघन वन में रात्रि पड़ गई। तब उन्होंने आपस में सलाह की, कि एक-एक पहर चारों जाग कर रात्रि व्यतीत करें। तब प्रथम पहर में बढ़ई जागता रहा, और बैठे-बैठे उसने विचार किया, कि बिना कार्य बैठे रहने से क्या लाभ है? कोई काम करना चाहिये। तो उसने जंगल में से एक लकड़ी लाकर उसमें से एक स्त्री की मूर्ति बना कर खड़ी कर दी। फिर दर्जी को पहरे के लिये जगाकर बढ़ई सो गया। जब दर्जी पहरा देने लगा। तो उस काष्ठ की बनी हुई स्त्री की प्रतिमा को देखकर बहुत ही डरा, और उसको बुलाने लगा। परन्तु वह न बोली, तब उसने अग्नि जलाकर देखा, कि यह बढ़ई की बनाई हुई काष्ठ की स्त्री है, उसने मुझे बतलाया नहीं। तब उसने तुरन्त कपड़े सिलाई करके उसे पहिना दिया। फिर तीसरे में दर्जी सुनार को उठाकर आप सो गया। सुनार ने देखकर उस मूर्ति को भूषण पहिना दिये। फिर चतुर्थ पहर में ब्राह्मण को जगाकर सुनार आप सो गया।

ब्राह्मण ने उन तीनों की रचना को देखकर विचार किया, कि इन तीनों ने तो अपना-अपना काम पूरा करके दिखला दिया है। अगर मैं कुछ करके नहीं दिखलाऊँगा तो ये सब मेरी हँसी करेंगे। मैं ईश्वर का भक्त हूँ। ईश्वर से

प्रार्थना करूँ, कि इस काष्ठ की मूर्ति में जीवन शक्ति आ जावे। तथा मैं अभी तक अविवाहित हूँ। अगर यह जीवित हो गई, तो मैं इसके साथ शादी कर लूंगा। ऐसे कह कर ध्यान में स्थित होकर, प्रार्थना करने लगा। तब भगवान की कृपा से उस काष्ठ की मूर्ति में जीव शक्ति आ गई। तब वे चारों जागने पर आपस में लड़ने झगड़ने लगे, और सब यही कहने लगे कि स्त्री मुझे मिलनी चाहिये। हे महाराजा विक्रम! अब आप ही बताओ कि वह स्त्री किसको मिलनी चाहिये। तब महाराजा विक्रम बोले—कि स्त्री तो सुनार को मिलनी चाहिये। जिसने सुहाग की नथली डाली है।

तब अनबोला राजकुमारी क्रोधयुक्त होकर कहने लगी, कि जिसने ईश्वर की प्रार्थना करके उस जड़ मूर्ति को सजीव किया है, उसका ही अधिकार है। न कि सुनार आदिकों का। तब महाराजा विक्रम ने कहा—कि हमारा तो उसकी शादी से कोई प्रयोजन नहीं, हमारा तो तुमको बुलवाने का ही प्रयोजन था। तब मंत्री ने चारों बार बुलाया देखकर महाराजा विक्रम के साथ अनबोला राजकुमारी की शादी का प्रबन्ध कर दिया। महाराजा विक्रम को कहा कि इन सात तालावों में स्नान कर आओ। जब वह स्नान करके आया, तब अनबोला राजकुमारी ने कहा, कि मेरी एक और प्रतिज्ञा है, उसको भी पूरी करो। तब महाराजा विक्रम ने कहा, वह कौन-सी प्रतिज्ञा है, सो कहो। राजकुमारी ने कहा, मेरे पास एक भेड़ है। उसके अलग-अलग तीन स्तन है। उन तीनों स्तनों का, एक ही गिलास में और एक ही काल में दूध दुह कर, मेरे सामने भर कर पी ले। तब मैं शादी कराऊँगी। राजा ने कहा, लाओ। तब उसने भेड़ मंगवाई। उस भेड़ के अलग-अलग स्तनों को देखकर महाराजा विक्रम ने चारों वीरों को बुलाया। उनकी मदद से भेड़ के तीनों स्तनों का एक ही काल में दूध दुह कर तथा गिलास भर कर पी लिया। तब बड़ी धूम-धाम से अनबोला राजकुमारी की शादी महाराजा विक्रम के साथ हो गई। शादी करा कर उसका राज्य अपने अधिकार में करके, फिर अपने देश में आया, और उस वन में रहने वाले ब्राह्मण के चरणों में भेंट

समर्पण करके प्रणाम किया। फिर आशीर्वाद प्राप्त किया। यह तो है दृष्टान्त, अब दार्ष्टान्त लिखते हैं।

दार्ष्टान्त :—

इसी प्रकार जिज्ञासुरूप विक्रमादित्य, वन की न्याई एकान्त स्थान में काम क्रोधादि मृगों का शिकार खेलने जाता है। किन्तु क्रोधादि विकारी मृग छिप जाते हैं। फिर जिज्ञासु को ब्राह्मणवत, ब्रह्मवेत्ता पुरुष, जो कि शारीरिक क्रिया रूप लकड़ियों के भार को उठाने में असमर्थ है। अर्थात् जो छट्ठी भूमिका में आरूढ़ है। उनसे मिलाप होता है। वे मुमुक्षु को कहते हैं, कि मेरी अमुक क्रिया कर दे। मुमुक्षु को यह बात सुनकर हँसी आई, कि जब ब्रह्मवेत्ता अपनी क्रिया करने में असमर्थ है तो फिर औरों का क्या उपकार कर सकते हैं। ब्रह्मवेत्ता उसको हँसते देखकर कहता है कि मैंने अपनी वृत्ति को परमात्मा के परायण किया है। इस पर भी तू हँसता है।

परन्तु तू भी अपने पुरुषार्थ का अभिमान मत कर। तुझे तभी मैं पुरुषार्थी समझूंगा, जब मन वाणी से परे जो पार ब्रह्म परमात्मा रूप अनबोला राजकुमारी है। उसको तू प्राप्त कर लेगा। यह सुनकर मुमुक्षु ने कहा, अच्छा, अब मैं ब्रह्म को प्राप्त करके ही रहूँगा। परन्तु मुझे आप कृपा करके बतलाओ, किस उपाय से उसकी प्राप्ति हो सकती है। ब्रह्मवेत्ता ने कहा—कुछ सेवा करो, तब बतलायेंगे। मुमुक्षु ने उन्हें सेवा करके प्रसन्न किया। तत्पश्चात् ब्रह्मवेत्ता ने बतलाया, कि उत्तर के रास्ते के समान, संसार की निवृत्ति मार्ग में जाओ। तो तुम्हें चार वेद रूप चार सिर मिलेंगे। उनके द्वारा तुम्हें अनबोला राजकुमारी की प्राप्ति में सहयोग मिलेगा। जिज्ञासु सर्व का त्याग कर निवृत्ति मार्ग में (मोक्ष मार्ग) चल पड़ा। रास्ते में चार वेद मिले, वे प्रथम हँसे, अर्थात् रोचक वचन कहे। फिर रोये, अर्थात् भयानक वचन कहे। तब मुमुक्षु ने कहा, मुझे ब्रह्मरूप अनबोला राजकुमारी का रास्ता बताओ। उसकी दृढ़ता को देखकर वेदों ने कहा, कि अन्तर्मुख होकर प्रथम धारणा के रास्ते जाओ। तुम्हें इन्द्र वन के समान् पाँच

विषय रूपी वन मिलेगा। जिसमें एक धूर्त योगी के समान मन रूपी कपटी योगी मिलेगा। उसको देखकर तुम मोहित हो जाओगे। उसके शिष्य बनना चाहोगे। क्योंकि मन बड़ा प्रबल है। सर्व को अनेक प्रकार से मोहित कर लेता है। औरों का तो कहना ही क्या है ? उसने ऋषीकेश्वर, तपेश्वर शंकर, विधाता आदि सर्व को ठग लिया है। जैसे वैराग्य शतक में कहा है :—

चौपाई :—

काम क्रोध लोभादि रूप धरि, नटवत मोहे तुम को मन अरि।
तुम्हरे सुख को अहर्निश काटे, सत पथते तुमको नित डाटे॥
कीन दीन ते दीन तुम ही मन, जन्म-जन्म को मन तव दुश्मन।
तव आश्रय बल पाय तुम्हारो, हरयो सर्व मन तेज तुम्हारो॥

दोहा :—

मन राजा मन बादशाह, मन चंचल मन चोर।
मन के मतेन चालिये, पलक पलक मन ओर
मन का कहा मत मानिये, बह मन बड़ा ही धूर्त है।
मन के कहे में आन कर, उल्टा टँगे अवधूत हैं॥

इसलिये मन से सावधान होकर रहना, तथा मन को मार कर प्रेमरूपी तेल को हमारे उपर छिड़कना, अर्थात् विषयों से प्रेम हटा कर हमारे में प्रेम करना। तब हम तुमको यथार्थ वचन सुनावेंगे। इस प्रकार सुन कर मुमुक्ष धारणा के रास्ते पर चल पड़ा, और मन का प्रभाव देखा। परन्तु अभ्यास आदि बल से एवं वेद लिखित युक्तियों द्वारा मन को निरोध करके अर्थात् संसार की तरफ से उसको मार कर वेदान्त में प्रेम करता हुआ, अर्थात् वेदानुसार आगे बढ़ने लगा, तब वेदों ने कहा, आपको आगे एक ईश्वर रूपी सच्चा योगी मिलेगा। उसके साथ प्रेम करना, अर्थात् उसकी नवधा भक्ति करना।

श्लोक :—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोस्मरणं पाद सेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ॥

इन भक्तियों के द्वारा ईश्वर को प्रसन्नता लेकर आगे बढ़ना। वो तुम्हारे को जो कार्य कहे, उसको जब नहीं कर सको तब हमारी याद करना। मुमुक्ष धारणा के रास्ते जाता है। ईश्वर रूप योगीराज को प्रसन्न कर लेता है। पाँच मरी हुई चिड़ियों के समान कामादिक जड़ स्वभाव वाली पाँच वृतियों को निरोध करके ईश्वर को प्रसन्न करता है। फिर परमेश्वर की कृपा से सत्संग रूपी किले के अन्दर जाता है। और सतगुरु रूप मंत्री से प्रार्थना करता है। भगवन ईश्वर की कृपा से आपका दर्शन हुआ।

अब मेरे चित्त में आपकी सेवा करने की अभिलाषा है। इसलिये मुझे सेवा प्रदान करो जी। गुरु रूप मंत्री ने कहा, तू यहाँ से लौट जा, तेरे जैसे बहुत आकर लौट गये हैं। क्योंकि सेवा रूप कर्म सबसे कठिन है।

"सबते सेवक धर्म कठोरा" (तुलसी रामायण)

दृष्टान्त :—

जैसे एक डाकुओं के सरदार ने अपने साथियों से मिलकर अनेक बार अनेक राजाओं के कोष लूटे, कितने ही खून किये। एक दिन किसी साहुकार के यहाँ डाका डाल कर दौड़ा जा रहा था। राजा की पुलिस उसके पीछे-पीछे आ रही थी। डाकुओं के सरदार को शौच की इच्छा हुई, तब साथियों से कहा तुम चलो, मैं आ रहा हूँ। वह शौच करके हाथ पाँव धोने के लिये इधर उधर जलाशय ढूंढने लगा। उसी जंगल में एक संत की कुटिया थी। वहाँ पर एक तालाब था। वहीं पर हाथ पाँव धोकर थकावट दूर करने के लिये बैठ गया। तब उस कुटिया वाले महात्मा ने भयानक बचन सुनाये।

पापों का बोझ स्वयं ढोना होगा।
न साथी तुम्हारा कोई साथ देगा॥

जिससे डाकू का चित्त अति भयभीत हो गया। अपने पापों को स्मरण करके रोने लगा। महात्मा से कहा—मैंने बहुत पाप किये हैं। अब मैं पापों की निवृत्ति के लिये हिमालय में जाकर गलूंगा। तब सन्त ने कहा—हिमालय में गलने से इतनी जल्दी पापों की निवृत्ति नहीं होती है। जितनी की सन्त सेवा तथा गुरु सेवा से होती है। इसलिये यहाँ से बारह कोस की दूरी पर छिंटा नाम के शहर में वड़े ब्रह्मवेत्ता शान्त चित्त महात्मा रहते हैं। तुम जाकर उनकी तन मन धन से सेवा करो। परन्तु उनके पास रहने वाले ब्राह्मण तुमको सेवा नहीं करने देंगे। तथा अन्न जल से भी तुमको तंग करेंगे। परन्तु तुम एक रस शान्त चित्त होकर बारह वर्ष सेवा करना। तब वह चित्त को दृढ़ करके उन महात्माओं के पास गया। और जाकर दण्डवत प्रणाम किया। तथा ग्लानि रहित होकर सेवा करने लगा तथा सेवा से सब को प्रसन्न रखता। रात दिन सेवा में पड़ा रहता और पास में जो कुछ भी धन था, उसको सेवा में लगा दिया। इस प्रकार जब तीन वर्ष व्यतीत हो गये, तब अन्दर से तो गुरु प्रसन्न हो गये, पर बाहर से कुछ नहीं कहा। तब ब्राह्मण लोगों ने द्वेष के कारण उसे सारे दिन लकड़ियाँ ढोने में लगा दिया। वह सारे दिन लकड़ियाँ लाता और रात्रि को गुरुजी की सेवा करता था। महात्मा बड़े प्रतिष्ठित थे। राजा महाराजा उनके दर्शनार्थ आया करते थे। अन्न क्षेत्र खुला रहता था। दिन भर बड़ी भीड़ रहती थी। उस डाकू के पास जो पैसे थे, वे सब खत्म हो चुके थे। तब गुरुजी ने कहा कि तुम हमारे अन्न क्षेत्र से भोजन ले लिया करो। रसोइये को कहा कि प्रतिदिन इसको भोजन खिला दिया करो। तब वह ईर्षा करके रोटियों के अन्दर आटे का छानस मिलाने लगा, और बड़े दुर्वचन कह कर अपमान पूर्वक भोजन देने लगा। डाकू गुरु प्रेम में मग्न होकर भोजन तथा कठोर वचनों की परवाह नहीं करता था, रात दिन सतगुरु के दर्शन तथा वचन

सुनने में लगा रहता था। दूसरी ओर ध्यान ही नहीं देता था। इस प्रकार तीन वर्ष तक आटे के छानस की रोटी देते रहे। वह उसी रोटी को खाकर सेवा में रत रहता था। पर गुरु को उनका दोष नहीं बतलाया। तब वे गुरु भाई अधिक नमक डाल कर रोटी पका कर उनको देने लगे। और सारे दिन खटाने लगे। वह नमक की रोटियों को पानी में भिगोकर खा लेता था। फिर भी गुरु भाईयों के मन की ईर्षा बढ़ती ही गई। क्योंकि कहा है :

दोहा :—

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान, बड़ाई, ईर्षा दुर्लभ तजना यह॥

ब्राह्मणों ने देखा कि अब भी यह यहाँ से नहीं जाता है। तब उन्होंने शेर की मूँछ के बाल मंगाकर रोटी में डाल कर उसे रोटी देते कि यह बीमार होकर सेवा न कर सके। डाकू ने विचार किया, कि यदि मैं चला जाऊँगा तो मेरी गुरु सेवा छुट जायेगी। मेरे पापों की निवृत्ति नहीं होगी। इसलिये अपमान को भी सहकर निज कार्य की सिद्धि करनी चाहिये। जैसे कि लिखा है :—

श्लोक :—

"अपमानं पुरुस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।
कार्यं प्रसाधयेद्धीमान् कार्यं हानिस्तु मूर्खता॥

अर्थ :—

अपमान को भी सहन करके कार्य की सिद्धि करना बुद्धिमानों का कार्य है। कार्य की हानि करना मूर्खता है। इस प्रकार विचार कर रोटियों को कूट कर, कपड़े में छान कर, बाल निकाल कर रोटी खाने लगा। उसके गुरु सर्वज्ञ थे। सब बातों को जानते थे। परन्तु यह जान कर कि इसके जन्म जन्मान्तरिय पाप

इस सेवा रूप तितिक्षा से दूर होंगे। इसलिये उसके भोजन में ध्यान नहीं देते थे। इस प्रकार पेट भर भोजन न मिलने के कारण उसका शरीर बहुत दुर्बल हो गया था।

एक दिन लकड़ियों को लाते समय एक बरसाती नदी में गिर गया। तो उसको कुछ अफसोस हुआ कि अभी गुरु द्वारा ब्रह्मानन्द लिया ही नहीं, शरीर प्रथम ही गिर पड़ा। फिर चित्त को आश्वासन देकर लकड़ियों को लेकर गुरु स्थान पर आया। लकड़ियां रख कर बड़ी नम्रता तथा प्रेम के साथ सेवा करने लग गया। तब गुरुजी उसकी सेवा से प्रसन्न हो गये। अपने सर्व शिष्य सेवकों को बुलाकर सभा लगाई। और भरी सभा में डाकू से पूछा, कि आज तुमने नदी में गिरते समय क्या कहा था? तब उसने जो जो शब्द कहे थे, सर्व गुरु जी को सुना दिये। गुरुजी ने सभा के बीच में उसको गले से लगाया। और अपनी गद्दी पर बैठाकर अपने हाथों से तिलक किया। सर्व संगत को उसके चरणों में प्रणाम कराया। और कहने लगे, तेरी सेवा सफल हो गई है। आज से तू सर्व का पूज्य हो गया है। जो शिष्यों के लक्षण हैं, वह सर्व तेरे में पूर्ण हैं। फिर उस डाकू को तीन दिन तक अपने पास बैठाकर सर्व योग क्रिया सिखलाई। तथा अपनी ऋद्धि, सिद्धि, ज्ञान ध्यान सब उसको समर्पण कर अपने तुल्य बना लिया।

दोहा :—

पारस में अरु संत में बड़ो अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करे, यह कर ले आप समान॥

इस प्रकार गुरुओं की सेवा अति कठिन है। तथा मोक्ष रूप श्रेष्ठ फल को देने वाली है।

गुरु पीरां की चाकरी।
महा करडी सुख सार।
"भाई गुरुदास जी"

तब मुमुक्षु कहने लगा, हे गुरो मुझे आपकी सेवा की तीव्र इच्छा है। चाहे सेवा कठिन से कठिन क्यों न हो, आप की कृपा से अवश्य पूर्ण करूंगा। इस प्रकार विनम्र भाव से मुमुक्षु अधिकारियों के लक्षण युक्त प्रेमी बन कर सतगुरु की सेवा करने लगा। सेवा करके सतगुरु रूप मंत्री को प्रसन्न किया।

अब अनबोला राजकुमारी की तरह इधर पार ब्रह्म रूप सतगुरु देव ही हैं। "गुरु साक्षात् परंब्रह्म", जिस तरह महाराजा ने चार बार अनबोला राजकुमारी को बुलवाया था। वैसे ही मुमुक्षु भी पार ब्रह्म रूप जो सतगुरु हैं, उनको बुलायेगा।

सतगुरु का बोलना ही पार ब्रह्म परमात्मा का बोलना है। महादेव जी ने भी पार्वती के प्रति कहा है। प्रमाण :—

श्लोक :—

योऽसावाद्वयानन्दो मनुष्य चर्मणावेष्टितः।
सच्छिष्यानुग्रहार्थाय गूढ़ पर्यटति क्षितौ॥

अर्थ :—

हे पार्वती! जो यह अद्वैत आनन्द स्वरूप पारब्रह्म परमात्मा मनुष्य चर्म में लिपटा हुआ है। वही (मनुष्य शरीर में गुरु रूप धारण करके) उत्तम अधिकारियों पर कृपा करता हुआ, अर्थात् उपदेश करता हुआ गुप्त रूप से पृथ्वी पर विचर रहा है। तथा गुरुओं के शरीर में परमेश्वर ही बोलता है।

अब जैसे अनबोला राजकुमारी वीरों की सहायता बिना नहीं बोली। इसी प्रकार सतगुरु भी वेदों में लिखी हुई ही युक्तियों बिना नहीं बोलते हैं। क्योंकि गुरु निष्काम होते हैं। जैसे शास्त्र में लिखा है। प्रमाण :—

"नापृष्ठः कस्यचिद् ब्रूयान्नया न्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि चमेधावी जड़वल्लोकमाचरेत्॥"

अर्थ :—

बिना पूछे विद्वान किसी से न बोले। और अन्याय से पूछने पर भी न बोले। शंका :—अगर विद्वान नहीं बोलेगा, तो जिज्ञासु को भ्रम हो जायेगा। कि ये मूढ़ है। अथवा अज्ञानी है? समाधान :—जिज्ञासु के भ्रम से विद्वान की कुछ हानि नहीं, परन्तु बिना पूछे अथवा अन्याय पूर्वक पूछने पर न बोले मौन हो रहे। विद्वान सब कुछ जानता हुआ भी जड़ अर्थात् मूढ़ अज्ञानियों की तरह लोगों से व्यवहार करे। कारण उन्होंने ज्ञान रूप मौन धारण की है। इसलिये भी नहीं बोलते हैं, वे निःस्पृह हैं। अर्थात् इच्छा से रहित आप्तकामी हैं। इसलिये भी वे नहीं बोलते हैं। अब जिज्ञासु वेदों में कही हुई श्रद्धा, नम्रता आदि की सहायता से गुरु को बुलवाता है।

जो ऋगवेद का "प्रज्ञान ब्रह्म" रूप महावाक्य है। उस महावाक्य का अर्थ गुरु से पूछता है। तब गुरु न बोले। तब मुमुक्षु "प्रज्ञानं ब्रह्म" रूपी दीपक से पूछता है। हे "प्रज्ञानं ब्रह्म"! यहाँ तू सुखी है अथवा दुःखी? ["प्रज्ञानं ब्रह्म" का अर्थ पंचदशी के पाँचवें प्रकरण में इस प्रकार लिखा है कि जिस चेतन करके देखता है, सुनता है, कथन करता है, जिह्वा से स्वाद लेता है। उसे "प्रज्ञान ब्रह्म" कहते हैं।]

तब "प्रज्ञान ब्रह्म" ने कहा, इसने तो मुझे उपाधि में डालकर महान ही तंग कर दिया है। जब मैं उपाधि रहित था, तब मैं महान् ही सुखी था। अब तो इस पर ब्रह्म ने मुझको अनेक उपाधियों में डालकर तंग कर दिया है। उपाधियों द्वारा अनेक योनियों में भ्रमण करता हूँ। तथा नाना प्रकार के दुःख सुख सहन करता हूँ। हे मुमुक्षु! अब तुम्हारा हमारा मेल हुआ है। वेद अर्थ में मैं तुम्हारे से विचार करता हूँ। वेद में मुक्ति रूपी कन्या के तीन पति हैं। प्रथम तो कर्मी, दूसरा उपासक, तीसरा ज्ञानी। तुम्हीं बताओ, मुक्ति किसको मिलनी चाहिये? मुमुक्षु ने कहा—इसमें शंका ही क्या है! कर्मी तथा उपासक

को मिलनी चाहिये। तब गुरु रूप अनबोला राजकुमारी क्रोध करके बोली— अरे मुमुक्षु ! कर्मी और उपासक को मुक्ति कैसे मिल सकती है ? क्योंकि कर्मी तथा उपासक को तो स्वर्गादि उत्तम लोगों में सुख भुगवाकर नीचे गिराया जायेगा। इसलिये मुक्ति रूप कन्या तो ज्ञानी को ही मिलेगी।

तब मुमुक्षु कहने लगा, अच्छा महाराज ! हमारा तो आपको बुलवाने का तात्पर्य था। तब गुरु बोले, अच्छा अब नहीं बोलूंगा। जिज्ञासु ने गुरु को बुलवाने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु वे नहीं बोले। तब हार की तरह हृदय में रहने वाला जो "अहं" था। उससे पूछा, अरे "अह" तुम सुनाओ, कि हृदय में तुम परमेश्वर के साथ इकट्ठा रहते हुए, यहाँ सुखी है अथवा दुःखी है। "अहं" कहने लगा, मैं प्रथम निरूपाधिक होने पर महान् हो सुखी था। अब उपाधि के सम्बन्ध से महान् ही दुःखी रहता हूँ। यज्ञ दान किये हुए सर्व निष्फल हो जाते हैं। जैसे प्रमाण :—

दोहा :—

> तीरथ व्रत अरु दान करि, मन नै धरै गुमानु।
> नानक निहफल जाति, तिहि जिऊँ कुंचर इसनान॥

इस प्रकार मैं देह इन्द्रिय, मन बुद्धि के संग से महान् ही दुःखी हो रहा हूँ। मुझे इस जगह परमेश्वर के सम्बन्ध से भी कोई सुख नहीं है। कारण साथ रहने पर भी दर्शन नही होता है। और फिर दर्शन बिना आनन्द नहीं आता है। जब मैं साक्षी स्वरूप था, तब परम आनन्द था। अब मैं देह को अपना मान कर महान् ही दुःखी हो रहा हूँ। हे मुमुक्षु ! मेरी ब्रह्म के साथ कौन-सी एकता है ? मैंने दो प्रकार की एकता सुनी है। एक "बाध समानाधिकरण" अर्थात् वेद कहता है कि हे अहं ! तू अपने को बाध कर अर्थात् लीन करके ब्रह्म के साथ अभेद हो सकता है। दूसरी "मुख्य समानाधिकरण" अर्थात् बाध किये बिना भी ब्रह्म के साथ मिल सकता है। इन दोनों में से मेरी कौन-सी

एकता है। जिस प्रकार हार ने राजा को पूछा था, कि धड़ वाला अथवा सिर वाला, कौन-सा रानी का पति होना चाहिए ? वैसे ही "अहं" भी पूछता है। कि मेरी ब्रह्म के साथ "बाध समानाधिकरण" एकता है अथवा "मुख्य समानाधिकरण" एकता है। धड़ रूप तो "बाध समानाधिकरण" है और सिर रूप "मुख्य समानाधिकरण" है।

तब मुमुक्षु कहने लगा, कि आप की ब्रह्म के साथ "बाध समानाधिकरण" एकता है। तब गुरु कहने लगे, अरे मूर्ख ! "बाध समानाधिकरण" एकता कैसे होगी ? क्योंकि "साक्षी" को भी "अहं" कहते हैं। "साक्षी" का कैसे बाध होगा ? यहाँ "अहं" नाम करके "साक्षी" का ग्रहण करना "साक्षी" की ब्रह्म के साथ "मुख्य समानाधिकरण" एकता है। तब मुमुक्षु ने कहा, कि हे गुरो ! मेरा तो आपको बुलवाने का तात्पर्य था। तब गुरुजी बोले, अच्छा अब नहीं बोलूंगा। मुमुक्षु ने तीसरी बार बुलवाने का महान् ही यत्न किया, परन्तु वे नहीं बोले।

तब पलंग के पावे वाले तीसरे वीर की तरह "तत्वमसि" जो तीसरा महावाक्य है। उसको पूछा, कि हे "तत्वमसि" महावाक्य रूप शब्द ! तू दुःखी है अथवा सुखी है ? तब "तत्वमसि" शब्द ने कहा, जब मैं अशब्द था, तब महान् ही सुखी था। परमात्मा ने मुझे शब्द बना कर महान् ही दुःखी कर दिया है। प्रथम मैं आकाश में प्रतिध्वनि रूप होकर रहता था। जैसा कोई बोलता था वैसा ही मैं बोलता था। फिर वायु में आकर मेरा सीं-सीं शब्द हुआ। अग्नि में आकर भुक्-भुक् शब्द हुआ। जल में आकर चुल-चुल शब्द हुआ। पृथ्वी में आकर मेरा कट-कट शब्द हुआ। यहाँ तक भी मैं सुखी ही रहा। जब मुझे परमात्मा ने शरीर में डाल दिया, तब हृदय में जाकर "परा" नाम से रहा, कंठ में "पश्यन्ति" नाम से रहा, ओष्ठों में "मध्यमा" नाम से रहा, जिह्वा में "बैखरी" नाम से रहने लगा। फिर मेरे को शब्द का अनुकरण बनाकर पुस्तकों में, रिकार्डों में तथा रेडियो में डाल कर मेरी महान् ही दुर्दशा की है। परन्तु हे

जिज्ञासु ! मैं जो "तत्वमसि" वाक्य हूँ। मेरा तीन प्रकार से वाक्यार्थ वेद वादी मानते हैं। एक "संसर्ग" वाक्यार्थ "घटमानय", "गामानय"। दूसरा "विशिष्ट" वाक्यार्थ, जैसे "नीलोत्पलम्", "दण्डी पुरुष" इन वाक्यों की तरह। तीसरा 'अखण्ड वाक्यार्थ", "सोऽयं देवदत्त" इस वाक्य की तरह कहते हैं। मैं तुझसे पूछता हूँ। जैसे पलंग के पावे से राजा विक्रम ने पूछा, कि राक्षस को मार कर प्राप्ति की हुई कन्या तीनों में से किसको मिलनी चाहिये। उसी तरह मैं भी तुम से पूछता हूँ। कि मेरा ब्रह्म के साथ कौन-सी "वाक्यार्थ" होना चाहिये ?

तब मुमुक्षु ने कहा, कि हे "तत्वम्" अर्थात् "जीव ब्रह्म" ! तुम्हारा अंशांशी भाव वाक्यार्थ होना चाहिये। जैसे गीता में भगवान लिखते हैं। "ममैवांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः"। तब गुरु को क्रोध आया। कहने लगे, अरे मुमुक्षु ! "तत्वम्" का "संसर्ग" वाक्य, अर्थात् अंश अंशी भाव, हाथ अंगुलियों की तरह विनाशी पदार्थों की तरह ही होता है। अगर इनका अंशअंशी भाव मानोगे तो दोनों विनाशी हो जायेंगे और चेतन स्वरूप होने से दोनों अविनाशी हैं। इसलिये इनका "अखण्ड वाक्यार्थ" ही बन सकता है। तब मुमुक्षु ने कहा—हे गुरो ! हमें तो आप को बुलवाना था। अब आप बोल ही पड़े हैं। तब गुरु कहने लगे, अच्छा अब तुम से नहीं बोलेंगे। अधिकारी फिर बुलवाने लगा, परन्तु गुरुजी न बोले।

तब मुमुक्षु ने चतुर्थ महावाक्य "अयमात्मा" को बुलाकर पूछा—कि तुम सुखी हो अथवा दुःखी हो ? तब कलश में स्थित चतुर्थ बीर की तरह महावाक्य बोला, अरे मुमुक्षु ! मैं "अयमात्मा" अर्थात् साक्षात "अपरोक्ष ब्रह्म" था। वेद भगवान भी कहते हैं।

"यत साक्षादपरोक्षात्ब्रह्म" "जाहरा जहूर है, हाजरा हजूर है" तथा "सो प्रभू दूर नहीं है, सो प्रभू तू है" तथा "सो प्रभू नेरै हूँ ते नेरै"।

समीप होने पर भी अब मुझे "ब्रह्म" दिखाई नहीं आता है। यह माया का प्रभाव है। ब्रह्म को तथा मेरे को लोग जानते ही नहीं हैं। तो फिर साकार पूजन क्या करेंगे। जैसे गीता अध्याय ७ में भगवान लिखते हैं :—

श्लोक :—

अव्यक्त व्यक्तिमापन्नं मन्यते माम बुद्धयः।
परंभावमजानन्तो ममाव्यय मनुत्तमम् ॥ २४ ॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्व योग माया समावृतः।
मूढोऽयं नाभि जानाति लोको माम जमव्ययम् ॥ २५ ॥

अर्थ :—

बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुपम, अविनाशी, परम भाव को और अव्यक्त मन इन्द्रियों से परे को जानते हुए भी मुझ सच्चिदानन्द परमात्मा को व्यक्ति वाला मानते हैं ॥ २४ ॥

अपनी योग माया से छिपा हुआ, मैं सबको प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ। इसलिये यह मूढ़ अज्ञानी पुरुष जन्मरहित अविनाशी, परम भाव को तत्व से नहीं जानते हैं ॥ २५ ॥

परमात्मा को तो कहाँ ? "मैं" अर्थात् अपने आपको भी नहीं जानते हैं। कि मैं कौन हूँ ? अन्धा तो अपने आपको जानता है। परन्तु मैं अपने को भी नहीं जानता। बहुत ही ख्याल करूंगा, तो अपने को यह जान सकूंगा, "कि मैं देह हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं मनुष्य हूँ, गृहस्थी हूँ, साधू हूँ इत्यादि। इस प्रकार अपने को जानता हूँ। जिस प्रकार रस्सी को सर्प आदि समझता है। ऐसे ही अपने को मैं देह आदि समझता हूँ। इसलिये अपने को न जानकर महान् ही दुःखी रहता हूँ। अच्छा अब मेरी और ब्रह्म की चार प्रकार की एकता लिखी है। प्रथम "अध्यस्त" दूसरी "बाध" तीसरी "गौण" अर्थात् विशेषण चतुर्थ

"मुख्य" अर्थात् अखण्ड एकता है। हे मुमुत्तु ! तुम सुनाओ, कि मेरी कौन-सी एकता होनी चाहिये ? जैसे कलश ने महाराजा विक्रम से पूछा, कि बढ़ई, दर्जी, सुनार तथा ब्राह्मण इस चारों में से किसको वह स्त्री मिलनी चाहिये। उसी प्रकार यह भी पूछता है, कि चारों एकताओं में से मेरी ब्रह्म के साथ कौन-सी एकता है ?

तब मुमुत्तु ने कहा, कि तेरी ब्रह्म के साथ "अध्यस्त" एकता ही होनी चाहिये। जैसे रस्सी के साथ सर्प की "अध्यस्त" एकता है। वैसे ही ब्रह्म के साथ तेरी एकता है। तब गुरुजी क्रोध करके कहने लगे। अरे मूढ़ ! आत्मा और ब्रह्म की तो "अध्यस्त" एकता किस प्रकार से होगी ? "अध्यस्त एकता" तो भिन्न पदार्थों की होती है। अभिन्न पदार्थों की "अखण्ड एकता" ही होती है। तब शिष्य बोला कि हे महाराज ! मेरा तो आपको बुलवाने का ही प्रयोजन था। अब आप बोल ही पड़े हैं। जो आप की चार बार बुलवाने की प्रतिज्ञा थी, सो तो पूर्ण हो गई। अब आप कृपा करके हमको "अखण्ड एकता" सिद्ध करके समझाओ। तब गुरु जी कहने लगे, कि हे अधिकारी ! तेरे को सात तीर्थों में अभी स्नान कराना शेष है। प्रथम तुम चार तीर्थों में स्नान कर आओ। फिर तेरे को "अखण्ड एकता" का अर्थ सुना कर पश्चात् शेष तीन तीर्थों में स्नान कराऊँगा। उन सात तीर्थों के क्रम से यह नाम हैं :—

(१) शुभ इच्छा रूपतीर्थ (२) सुविचारणा (३) तनुमानसा (४) सत्वापति (५) असंसक्ति (६) पदार्थाभावनी (७) तुर्या।

यह सात ज्ञान की भूमिका रूप तीर्थ है। अर्थात् सात तालाब है। जैसे तालाब में जल और चार दिशायें होती हैं, वैसे ही इनके भी चार किनारे हैं। एक ओर सोपान (सीढ़ियां) हैं। मध्य भाग में जल है।

(१) "शुभ इच्छा" नाम का तालाब—सत्संग, साधुसेवा, पदार्थों में ग्लानि,

ईश्वर में प्रेम ये चार किनारे हैं। श्रद्धा रूपी सीढ़ी है। निष्कामता रूपी जल है। मल निवृत्ति स्नान का फल है।

(२) "सुविचारणा" नाम का तालाब—श्रवण, मनन, आत्म सत्य निश्चय, जगत मिथ्या निश्चय ये चार किनारे हैं। जगदास्था का त्याग सीढ़ी है। आत्मा में दृढ़, प्रीति रूप जल है। संशय निवृत्ति स्नान का फल है।

(३) "तनुमानसा" नाम का तालाब—पाँच यम, पाँच नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार ये चार किनारे हैं। धारणा रूप सीढ़ी है। ध्यान रूप जल है। चित्त की एकाग्रता स्नान का फल है।

(४) "सत्वापति" नाम का तालाब—ब्रह्मचिन्तन, ब्रह्मकथन, परस्पर बोधन, सर्व में ब्रह्म भाव ये चार किनारे हैं। ब्रह्माकार वृत्ति रूप सीढ़ी है। साक्षात्कार जल है। अज्ञान निवृत्ति स्नान का फल है।

(५) "असंसक्ति" नाम का तालाब—उपरामता, निमानता, प्रवृत्ति अभाव, वाद विवाद भाव ये चार किनारे हैं। दुःख अभाव रूप सीढ़ी है। निरावरणानन्द रूप जल है। वासना अभाव स्नान का फल है।

(६) "पदार्थाभावनी" नाम का तालाब—तत्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय, समदृष्टि ये चार किनारे हैं। ब्रह्म स्थिति रूपी सीढ़ी है। अद्वैत दृष्टि रूपी जल है। आनन्द स्थिति स्नान का फल है।

(७) "तुर्या" नाम का तालाब—सर्व संकल्पाभाव, सर्ववृत्याभाव, हृदय-ग्रन्थि अभाव, ब्रह्माकार वृत्याभाव ये चार किनारे हैं। निरावरणानन्द रूपी सीढ़ी है। चेतनमय रूपी जल है। विदेह मुक्ति स्नान का फल है।

जब शिष्य इन तालाबों में से चार तीर्थों में स्नान करके आया, तब सतगुरुजी ने चार प्रकार के महावाक्यों का अखण्ड अर्थ सुनाया। अनेक युक्ति, प्रमाण, दृष्टान्तों द्वारा जिज्ञासु को अभेद निश्चय कराया। इस प्रकार तत्ववेत्ता की

स्वदृष्टि को श्रवण करके, जिज्ञासु को ऐसा ज्ञान हो जाता है, कि मेरे स्वरूप में तीनों तमोगुण द्वैत का सम्बन्ध नहीं है। मैं एक अखण्ड अद्वित्य हूँ। सर्वदा स्वप्नाकाश स्वरूप से स्थित हूँ। इसमें मन वाणी की गम्यता नहीं है। इस प्रकार मन वाणी से परे अनबोला राजकुमारी की तरह परब्रह्म भाव को अधिकारी प्राप्त होता है।

इस तरह गुरुजी ने महावाक्यों का अखण्डार्थ सुना कर और तीन स्तनों वाली भेड़ जीवन मुक्ति, जिसमें तीन साधन तत्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय ये तीन साधन रूपी स्तनों वाली भेड़ जिनमें अखण्डार्थ रूपी दुग्ध था, वह साधन कराकर मुमुक्षु को दूध पिलाया। और असंसक्ति, पदार्था भावनी, तथा तुर्या रूप तीन तालाबों में स्नान करा कर "पर ब्रह्मभाव" को प्राप्त किया, इसका नाम ज्ञान है। और हंसों की तरह इसका विवेचन किया। विवेचन से अधिकारी को जल की तरह अनात्म पदार्थ का त्याग कराकर दुग्ध अर्थात् परब्रह्म भाव का अनुभव करा दिया। यही दूध पिलाना है। जैसे गौ के चार स्तनों में बछड़े के लिये दूध होता है। वैसे ही वेद रूपी गौ के चार महावाक्य रूप स्तनों में अखण्डार्थ रूप दूध है। विचार द्वारा गुरु लोग जिज्ञासुओं को वह दूध पिलाते हैं। इस प्रकार जिज्ञासु रूपी विक्रमादित्य पारब्रह्म रूप अनबोला राजकुमारी को प्राप्त करके कृत्य-कृत्य हो जाता है। और सतगुरु के प्रति श्रद्धा भेंट समर्पित करते हुए सतगुरु का धन्यवाद करता है।

स्वाराज्य साम्राज्य विभूति रेवा,
भवत्कृपा श्रीमहिमप्रसादात्।
प्राप्तामया श्री गुरुवे महात्मने,
नमो नमस्तेऽस्तु पुनर्नमोस्तु ॥ (विवेक चूड़ामणी)

महास्वप्ने मायाकृत जीन जरामृत्यु गहने।
भ्रमन्तं क्लिश्यंन्तं बहुलतरतापैरनुदिनम् ॥

अहंकार व्याघ्र व्यथितमिममत्यन्त कृपया।
प्रबोध्य प्रस्वापात्परभवितवान्मामसि गुरों॥

(विवेक चूड़ामणी)

फिर उस अधिकारी के लिये कुछ जानना, पढ़ना, लिखना शेप नहीं रहता है।

छन्द :—

ईश्वर कृपा से गुरु कृपा से, मर्म मैंने पा लिया।
ज्ञानाग्नि में अज्ञान कूड़ा, भस्म सब कर है दिया॥
अब हो गया है स्वस्थ सम्यक् लेश नहीं भ्रान्त है।
शंका हुई निर्मूल सब, अब चित्त मेरा शान्त है॥

ॐ शान्ति ! ॐ शान्ति !! ॐ शान्ति !!!

—:o:—

तत्वज्ञान का फल

एक संत और शिष्य का संवाद (संक्षेप से)

प्रश्न :—हे सतगुरु ! ज्ञान का क्या फल है ?

उत्तर :—हे शिष्य ! दुःख सुखादि में समान रहना ही ज्ञान का फल है।

चौपाई :—

सुख दुःख दोनों सम करि जाने, अरु मान अपमाना।
हर्ष शोक से रहे अतीता, तिन जग तत् पिछाना॥

प्रश्न :—हे भगवन जी ! सुख दुःख कैसे सहें ? क्योंकि सुख दुःख तो प्रकाश

अंधकार की न्याईं विरोधी पदार्थ है। इनमें समान कैसे रहें? सुख आता है तो मन फूल जाता है। दुःख आता है तो मन रो देता है। इसलिये आप ही कृपा करके कोई ऐसा सुगम उपाय बताओ, जिसकर के सुख दुःख में चित्त अडोल रहे।

उत्तर :—हे प्यारे, सुख दुःख में समान रहने की ८ युक्तियाँ महापुरुषों ने बतलाई हैं। सो संक्षेप से कहते हैं।

(१) ब्रह्मदृष्टि :—अर्थात् ब्रह्म ज्ञानी की बुद्धि सबको ब्रह्म रूप निश्चय करती हैं।

जैसे सुनार (सर्राफ) की सर्व स्वर्ण भूषणों में स्वर्ण दृष्टि ही रहती है। भूषण दृष्टि नहीं रहती है। तैसे ही ब्रह्मवेत्ता की ब्रह्मदृष्टि रहती है। भेद रूप जगत दृष्टि नहीं रहती है। इसलिये उसकों ज्ञान काल में सुख, दुःख ब्रह्म रूप होने से सम दिखाई देते हैं। और ब्रह्मज्ञानियों के लक्ष्य में भी लिखा है :—

उस्तति निंदिया नाहि जिंव कंचन लोह समान।
कहु नानक सुन रे मना मुक्त ताहि तै जान॥

गीता में :—

समः शत्रौ च मित्रे च तथामानापमानयोः।
शीतोष्ण सुखदुःखेषुसमः संग विवर्जितः॥

अर्थ :—

जो शत्रु मित्र में मान अपमान में सम है तथा सर्दी गर्मी सुख दुःखादि द्वन्द्वों में सम है। और संसार की आसक्ति रहित है। वह ज्ञानी कहा जाता है।

जिज्ञासु भी ब्रह्म दृष्टि द्वारा सम अवस्था को प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मदृष्टि की श्रेष्ठता बताते हैं।

श्लोक :—

दृष्टि ज्ञानमयीं कृत्वापश्येद् ब्रह्ममयं जगत।
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्राव लोकिनी॥

अर्थ :—

ज्ञानमय दृष्टि करके सब जगत को ब्रह्म रूप देखे। यह ज्ञानमयी दृष्टि सर्व से श्रेष्ठ है। नासिका के अग्रभाग में दृष्टि टिकानी कोई श्रेष्ठ नहीं है।

(२) मिथ्यात्वदृष्टि स्पष्टीकरण :—सुख दुःख मायिक है, अर्थात् मिथ्या है। जैसे रज्जु में सर्प है नहीं, परन्तु प्रतीत होता है। तैसे ही सुख दुःख है नहीं और प्रतीत होते हैं। जैसे स्वप्न के पदार्थ हैं नहीं पर प्रतीत होते हैं। सत्य निश्चय करके मनुष्य को सुख, दुःख, हर्ष, शोक को प्राप्त होता है। तैसे ही जाग्रत के पदार्थ भी हैं नहीं, भ्रम से सत्य निश्चय करके सुखी दुःखी होता है। और स्वप्न तुल्य समझ कर सुख दुःख से रहित हो जाता है।

छन्द :—

सुख दुःख दोनों जान सम, आश निराश एक सी।
जीवन मरण भी एक सा, निन्दा प्रशंसा एक सी॥
हर हाल में खुश हाल रह, निर्द्वन्द्व चिन्ता हीन हो।
मत ध्यान धर तू अन्य का, बस आप में लव लीन हो॥

भगवान कृष्ण ने भी यही आदेश दिया, कि सुख दुःख आगमा पाई हैं। इस विषय में घबराना नहीं चाहिये।

दोहा :—

सुख दुःख दोनों पावने, एक आवे एक जाय।
दोनों स्थिर ना रहे, ताते मत घबराय॥

इस प्रकार "मिथ्यात्व" दृष्टि से सुख दुःख मान अपमान को सम समझना चाहिये।

(२) सुख दुःख ईश्वर के आधीन है। स्पष्टीकरण :—ईश्वर के भक्त, सुख दुःख को ईश्वर के आधीन समझते हैं। परमात्मा वे अन्त हैं। अगर परमेश्वर की इच्छा हो तो पृथ्वी पर रहने वालों को स्वर्ग में, स्वर्ग में रहने वालों को नीचे पृथ्वी पर गिरा देता है। अतः गरीब से अमीर तथा अमीर से गरीब और मूर्ख को पंडित और पंडित को मूर्ख करना सर्व ईश्वर के आधीन है।

धरती ते आकाश चढ़ावै, चढ़े आकाश गिरावै।
भेखारी ते राज करावै, राजा ते भिखारी॥
खल मूरख ते पंडित करि, वो पंडित ते मुगधारी।
नारी ते जो पुरुष बनावै, पुरुषन ते जो नारी॥
कह कबीर साधु को प्रीतम, तिस मूरति बलिहारी।

इसलिये प्रसन्नता के साथ सुख दुःख का सामना करना चाहिये।

पद्य :—

तू हर दुःख का सामना करले।
भगवान के बन्दे दुःखों से न डर॥
सुख दुःख तो दाता की देन है। जो भी मिले सो ले ले॥
हर अँधियारी रात के पीछे चन्द दिनों के मेले।
आज अगर छाये हैं बादल, कल जायेंगे बिखर रे।
भगवान के बन्दे दुःखों से न डर॥ १॥
ये नाहक आज लुटाना बन्दे, तू अंखियन के मोती।
एक न एक दिन इस दुनिया में सब की कसौटी होती॥
तू क्यों चिन्ता करता प्राणी, प्रभु को सब की फिकर रे।

जो भी सुख दुःख मिल रहा है, वह ईश्वर की प्रेरणा से ही मिल रहा है। जब सुख ईश्वर देता है, तब दुःख भी वही देता है। जीवाधीन कुछ नहीं है। ऐसा समझ कर सुख दुःख में सम रहना और हर्ष शोक को छोड़ कर अपना चित्त एक रस रखना योग्य है। यह सुख दुःख में सम रहने की तीसरी युक्ति है।

(४) "गुणनिधान"। स्पष्टीकरण :—सुख दुःख गुण आधीन है। सतोगुण के आधीन सुख है। रजोगुण और तमोगुण के आधीन दुःख है। भगवान श्री कृष्ण जी ने गीता जी के १४वें, १७वें अध्याय में इसका काफी निरूपण किया है।

श्लोक :—

त्रैगुण्या विषया वेदाः निस्त्रैगुण्योभवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्य सत्वस्योनिर्योगक्षेम आत्मवान्॥

(गीता अध्याय, श्लोक ४५)

अर्थ :—

हे अर्जुन! सर्व वेद तीनों गुणों के कार्य रूप संसार को ही विषय करने वाले हैं। और तू त्रिगुणातीत अर्थात् असंसारी और असंग हों। निर्द्वन्द अर्थात् सुख, दुःख, मान, अपमान, हर्ष, शोक से रहित हो और अविनाशो वस्तु में स्थित होकर आत्म परायण हो, और शरोर के पालन पोषण की इच्छा से रहित हो। क्योंकि इन तीन गुणों के आधीन होकर ही सुख दुःख के मान अपमान के दर्शन होते हैं। जोव आत्मा के पास सार अर्थात् आत्म धन है। उस आत्मधन को चुराने वाले तीन गुण चोर हैं। जिज्ञासु को इन तीन गुणरूपी चोरों से बचना चाहिये।

जैसे एक साहूकार अपनी कमर में बहुत-सा धन बाँध कर किसी ग्राम को जा रहा था। रास्ते में अलग-अलग कुछ-कुछ दूरी पर तीन चोर मिले। पहिले चोर

ने पूछा, कि सेठजी कहाँ जा रहे हो, इसी तरह से बारी-बारी तीनों ने पूछा। तब सेठजी ने कहा अमुक शहर में जा रहा हूँ। तो चोरों ने कहा कि हम भी उसी शहर में जा रहे हैं। सेठ चतुर था। उसने समझ लिया कि ये मेरा धन लूटने के लिये मेरे साथ चल रहे हैं। परन्तु युक्ति से इनसे मेरे को बचना चाहिये। ऐसे विचार कर रास्ते में जाते-जाते सेठजी ने तीनों से पूछा, कि तुम कौन-कौन हो ? तब उनमें से एक ने कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ। दूसरे ने कहा कि मैं क्षत्री हूँ। तीसरे ने कहा कि मैं शूद्र हूँ। तब रास्ते में वृक्ष की ठंढी छाया में बैठ कर शूद्र को कहा कि सामने कुएँ पर से जल ले आओ, जलपान करके आगे चलेंगे। जब वह जल लाने गया तब साहूकार ने ब्राह्मण और क्षत्री दोनों चोरों को कहा कि मैं जानता हूँ। तुम तीनों चोर हो और मेरा धन लूट कर तुम तीन हिस्से करोगे और मेरे धन को रास्ते में लूटने से तुम्हारे को पाप लगेगा। और परलोक में भी दंड मिलेगा। मैं एक युक्ति तुमको बतलाता हूँ। जिससे परलोक में दंड भी न मिले और पाप भी न लगे तथा धन भी तुमको मिल जाय।

यह सुनकर चोरों ने कहा, कि वह कौन-सी युक्ति है ? कहो। साहूकार ने कहा—कि जो मेरे पास धन है। उसके तीन हिस्से करेंगे। एक हिस्सा तो तुम्हारे को संकल्प करके दान कर दूंगा, और यह क्षत्री भी भाई है। उसको भी भाई की तरह मदद दे दूंगा। और एक हिस्सा मैं ले लूंगा, वह जो, शूद्र पानी भरने गया है। उस शूद्र को क्यों देवें ? चोरों ने कहा कि बहुत अच्छा। जब शूद्र जल लेकर आया, तब ब्राह्मण ने कहा, कि अरे शूद्र तुम चले जाओ, यह तो हमारा यजमान है। क्षत्री कहने लगा कि हमारा बिरादरी (जाति) भाई है। हम इसको नहीं लूटेंगे, बल्कि इसको गाँव तक छोड़ आवेंगे। शूद्र उनका भाव समझ गया और सोचा कि यह तीन हैं। मैं अकेला हूँ। मैं क्या कर सकूंगा। ऐसा सोच कर वापिस चला गया। फिर आगे चलते

चलते चत्री को अलग करके ब्राह्मण को कहा, कि हे ब्राह्मण देव! हम तीन हिस्से भीं क्यों करें। दो हिस्से क्यों न कर लें। तब चत्री को भी डाँट कर अपने से अलग कर दिया। फिर चलते-चलते ब्राह्मण के साथ मिलकर शहर के पास आये पहुँचे, तो ब्राह्मण को धैर्य दिया, कि पहिले तालाब में स्नान करके आओ। तब तेरे को आधा धन संकल्प करके दे दूंगा। उस तालाब पर साहूकार के बहुत से मित्र स्नान करने के लिये आये हुए थे। उनको कहने लगा, कि मेरे पीछे यह चोर पड़ा हुआ है। मेरे को इससे बचाओ। नहीं तो हमारा सर्वधन लूटकर ले जायगा। यह सुनकर सेठ के मित्र दौड़ कर आये तो वह चोर भाग गया। इस प्रकार अपना धन युक्तिपूर्वक चोरों से बचा लिया।

तैसे ही जीवात्मा के पास आनन्दरूपी धन है। अर्थात सुख-दुःख में, मान अपमान में सम रहना, हर्ष शोक न करना यही धन है।

इस धन को चुराने के लिये तीन गुण रूपी चोर जीव रूपी साहूकार के पीछे पड़े हुए हैं। युक्ति द्वारा इनसे अपने धन को बचावें। पहिले सतोगुण रजोगुण को मदद से तमोगुण को दूर करे। फिर सतोगुण की मदद से रजोगुण को दूर करे। फिर सत्संग में आकर पुकारे, कि सतोगुण का अभिमान मुझको लूट रहा है। हे सन्तों! मेरे को इससे बचाने की दया कीजिये। सन्तों के उपदेश रूपी मदद से सतोगुण का अभिमान भी दूर हो जाता है। और वृत्ति भी शान्त हो जाती है। अर्थात् हर्ष शोक भी नहीं होता है। तब यह गुणातीत कहलाता है। अर्थात् जीवन मुक्त कहलाता है। इस प्रकार से सुख दुःख में सम रहने की ये चतुर्थ युक्ति है।

(५) "प्रकृति आधीन"। स्पष्टीकरण :—सुख दुःख स्वभाव आधीन प्राप्त होते हैं। हर एक पदार्थ का अपना-अपना स्वभाव होता है। जैसे अग्नि का उष्ण, जल का शीतल स्वभाव है। स्वभाव को ही प्रकृति कहते हैं। स्वभाव ही रोकना बड़ा कठिन है। सर्व पुरुषों के स्वभाव गीता जी में अलग-अलग कहे हैं। ब्राह्मण, वैश्य,

क्षत्री, शुद्र अपने-अपने स्वभाव से कर्म करते हैं। जिस समय अर्जुन ने कहा था, कि मैं युद्ध नहीं करूंगा। उस समय भगवान श्रीकृष्ण ने कहा :—(गीता अध्याय १८ में)

श्लोक :—

यदहंकार माश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोच्यति ॥ ५९ ॥
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेनकर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपितत् ॥ ६० ॥

अर्थ :—

हे अर्जुन ! जो तू अहंकार के प्रभाव से ऐसा मानेगा, कि मैं धर्म युद्ध नहीं करूंगा, यह तेरा निश्चय और अहंकार झूठा है। क्योंकि जब युद्ध में शस्त्र चलेंगे, तो तुम्हारे से न रहा जावेगा। तेरा क्षत्रियपन का स्वभाव तुम्हारे को जबरदस्ती युद्ध में लगा देगा ॥ ५९ ॥

हे अर्जुन ! जिस कर्म को तू किसी भी तरह करना नहीं चाहता, अर्थात् मोह से अपने सम्बन्धियों को नहीं मारना चाहता, परन्तु स्वभाव से बंधा हुआ यह कर्म तू अवश्य करेगा। तुम्हारा स्वभाव तेरे को अवश्य युद्ध करायेगा ॥ ६० ॥ इसलिये स्वभाव पर ही कहते हैं :—

जैसे :—नीम का स्वभाव सहज ही कड़वापन है। तैसे ही मन का स्वभाव भी हर्ष, शोक, राग, द्वेष करने का है। जब तक मन को परमात्मा में नहीं लगाया जाता है, तब तक मन अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है। मन मुख को हरि गुणगान सुनाने पर भी हरि भक्त नहीं बनता है। जैसे :—नीम को मधुर अमृत रूपी जल से सींचा जावे, तो भी नीम का कड़वापन स्वभाव नहीं जाता है। और ऐसे ही कुत्ते को धर्म शास्त्र रूपी स्मृतियां सुनाने से कुत्ता क्या ब्रह्मचारी बन सकता है ? कभी नहीं। क्योंकि उसका स्वभाव है। "कुत्ताधात" इसलिये

उसको शास्त्र सुनाना निष्फल है। जैसे विषधारी सर्प को अमृत रूप दूध पिलावे तो वह काटना छोड़ देगा ? नहीं ! अपने स्वभाव वश अवश्य काटेगा। जैसे कड़वी तुंबी को अठसठ तीर्थों में ले जाकर स्नान भी करा दें, तो भी उसका कटु स्वभाव नहीं जायेगा। इसी तरह मनमुख भी बाहर से कितनी ही तपस्या करे या तीर्थ आदिकों में स्नान करे। तोभी मन को शुद्धि नहीं होती है। क्योंकि कहा है। "आप पछाने मन निर्मल होये"। इसलिये गुरुमुख प्राणी ब्रह्मवेत्ता गुरु के पास जाकर अपने स्वभाव को बदल देते हैं। सत्संग रूपी प्रयाग राज तीर्थ में स्नान करने से तत्काल ही फल प्राप्त होता हैं। अर्थात् पाते हैं।

चौपाई :—

मुद मंगलमय संत समाजू। ज्यों जड़ जङ्गम तीरथराजू॥
मज्जन फल पेखिय तत्काला। काक होहिं पिक बकऊं मराला॥

अर्थ :—

संत रूपी तीर्थ में स्नान करने से तत्काल ही फल देखा जाता है। कौवे काँव-काँव करने वाले भी (व्यर्थ बकवाद करने वाले) कोयल की तरह मीठे वचन बोलने वाले हो जाते हैं। और पाखंडी (दंभी) हंसों के समान सदाचारी और विचारवान हो जाते हैं। तुलसीदासजी नाम ले-लेकर कहते हैं।

चौपाई :—

सुन आश्चर्य करहि जिन कोई। सत्संगति महिमा नहिं गोई॥
वाल्मीक नारद घट योनी। निज-निज मुखन कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जो जड़ चेतन जीव जहाना॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानव सत्संग परभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ॥
(तुलसी रामायण)

इस प्रकार गुरुमुख जिज्ञासु जन अपना स्वभाव बदल कर आप भी सुखी होते हैं। और दूसरों को भी सुख पहुँचाते हैं। सुख दुःख मान अपमान को स्वभाव अधीन समझ कर हर अवस्था में प्रसन्न रहते हैं। अपना स्वभाव ही सुख दुःख और मान अपमान का दर्शन कराता है। अतः दुःख अपमान, निन्दा आदि से विक्षिप्त नहीं होना चाहिये। ये सुख दुःख में समान रहने की पाँचवीं युक्ति है।

(६) "कर्माधीन"। स्पष्टीकरण :—सुख दुःख कर्मानुसार प्राप्त होते हैं। जैसा कहा है :—

> सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परोददातिती कुबुद्धि रेषा।
> अहं करो तीति वृथाभिमानः स्व कर्म सूत्रै ग्रथितो हि लोकः॥
>
> (अध्यात्म रामायण)

अर्थ :—

सुख के तथा दुःख के देने वाला दूसरा कोई नहीं है। जो कोई दूसरे को दोष लगाता है कि अमुक ने मेरे को दुःख दिया। यह कुबुद्धि और मन्दमति है। क्योंकि अभिमान पूर्वक किये हुए कर्म रूपी सूत्र से जीव बँधा है। और कर्मों का फल सुख दुःख भोगता है। और तीव्र प्रारब्ध कर्म किसी प्रकार भी मिट नहीं सकता। इसी पर कहा है :—

नाराच छंद :—

> पाताल में प्रवेश, इन्द्रलोक में प्रवेश है।
> गिरिन्द्र जो सुमेरु चारु, तासु में निवेश है॥
> जु मंत्र मेष जं करे, व्याधि हार कारणं।
> जो होन है सो होंई, अत्र हेतु न विचारणं॥

इसलिये दुःख सुख कर्मानुसार भोगने पड़ते हैं। जैसे :—

बिन भोगे भागे नहीं, कर्म गति बलवन्त ॥

कर्म जनित दुःख सबको भोगना पड़ा। इस बात को कैमुत्तक न्याय द्वारा कहते हैं। अर्थात् बड़ों बड़ों का नाम लेते हुए संत शिरोमणि श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं :—

सहस्र दान दे इन्द्र रोआइआ, परशुराम रोवे घरि आइआ।
अजै सु रोवै भिखिआ खाई, ऐसी दरगह मिलै सजाई ॥
रोवहि रामु निकाला भइआ, सीता लखमणु बिछुड़ि गईआ।
रोवै दहसिरु लंक गवाई, जिनि सीता आदि डौरू वाई ॥
रोवहि पांडव भये मजूर, जिनकै सुआमी रहति हजूरि।
रोवहि जन्मेजा खुइ गइआ, एकी कारणि पापी भइया ॥
रोवहि सेख मसाइक पीर, अंति कालि मतु लागै भीड़।
रोवहि राजे कंन फड़ाइ, घरि घरि मांगहि भीखिया जाई ॥
रोवहि किरपनू संचहि धनु जाई, पंडित रोवहि गिआनु गवाई।
बाली रोवै भिन भतारू, नानक दुःखिया सभु संसारू ॥

इसलिये विचारवान विवेक द्वारा सुख दुःख को कर्माधीन समझ कर प्रसन्न रहता है। जैसे :—

छंद :—

सुख दुःख और जीवन मरण, सब कर्म के आधीन हैं।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, होता नहीं फिर दीन है ॥
जो भोग आते भोगता, होता न भोगासक्त है।
निर्लेप रहता कर्म से, होता तुरत ही शान्त है ॥

अतः विवेक के द्वारा सुख दुःख में समान रहना चाहिये। ये सुख दुःख में समान रहने की छठी युक्ति है।

(७) "कालाधीन"। स्पष्टीकरण :—सुख दुःख काल के आधीन है। काल के चक्कर को कोई नहीं मिटा सकता। जैसे :—

मंत्र, मित्र, तप, दान, जप, बाँध वादि जे आहि।
जे नर पीड़ित काल करि, को रक्षक नहीं ताहि॥
जो उपजिओ सो विनसि हैं, परो आजु के काल।
नानक ही गुण गाइले, छाड़ि सकल जंजाल॥

अर्थ :—

स्पष्ट है जो उत्पन्न होता है, उसका मरण भी अवश्य होता है। भगवान श्री कृष्ण ने भी कहा है।

श्लोक :—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्माद् परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥
(गीता अध्याय २, श्लोक २७वां)

अर्थ :—

जन्मने वाले की निश्चय करके मृत्यु होती है। और मरने वाले का फिर निश्चय ही जन्म होता है। कोई दूर नहीं कर सकता। फिर शोक क्या करना है? इसलिये हे मानव किसके लिये हँसना है। और किसके लिये रोता है।

रज्जब रोवे कौन को, हँसे सो कौन विचार।
गये सो आवन के नहीं, रहे सो जावन हार॥
राम गयो रावण गयो, जाको बहु परिवार।
कहु "नानक" थिर कछु नहिं, स्वप्ने ज्यों संसार॥

इसी विचार को अपना कर जनकादिकों ने अपने मन को शान्त एवं प्रसन्न

किया है। इसी प्रकार की एक निर्मोही राजा की कथा संसार में प्रसिद्ध है। जो सुख दुःख में शाक हर्ष शोक से रहित हुआ है। अतः सुख दुःख को कालाधीन समझ कर शान्त चित्त रहना चाहिये। इसी पर भगवान श्रीरामचन्द्र जी भी लक्ष्मण के प्रति कहते हैं।

श्लोक :—

पश्य लक्ष्मणकालस्य, प्रति कूलानिकूलते।
बनवासे पिताहेतुः समुद्र सं तरणे शिला॥

अर्थ :—

हे लक्ष्मण! काल की अनुकूलता, प्रतिकूलता को देख, अर्थात् काल प्रतिकूल हुआ तो माता पिता भी कहने लगे, कि वन को चले जाओ। जब काल अनुकूल हुआ तो समुद्र में पत्थर तैरने लग पड़े। इसलिये सब बात कालाधीन है।

जैसे :—

भजन

सब दिन होत न एक समान॥ टेर॥
इक दिन राजा हरिश्चन्द्र घर, सम्पत्ति मेरु समान।
इक दिन जाइ स्वपच घर, सेवत अम्बर रहत मसान॥
इक दिन दुलहा बनत बराती, चहूँ दिस झूलत निसान।
इक दिन डेरा पड़त जंगल में, कर सुधे पग तान॥
इक दिन सीता रुदन करत वें, महा विपत्ति उद्यान।
इक दिन रामचन्द्र सों मिल कर, विचरत पुष्प विमान॥

इक दिन राजा राज युधिष्ठिर, अनुचर श्री भगवान।
इक दिन द्रोपदी नग्न करत हैं, चीर दुशासन तान॥
प्रगट होत पूर्व की करणी, तज मन को अभिमान।
सूरदास गुन कहँ लग वरणूं, विधि के अंक प्रमान॥

इस प्रकार से सुख दुःख सभी काल के आधीन हैं। सभी संसार के पदार्थ स्वप्नवत झूठे हैं अर्थात् आने जाने वाले हैं। अतः इस विषय में शोक नहीं करना चाहिये। ये सुख दुःख में समान रहने की सातवीं युक्ति है।

(८) "सातिशयत्व"। स्पष्टीकरण :—सुखों की अवधि परमात्मा है। और दुःखों की अवधि माया है। क्योंकि परमात्मा सुख स्वरूप है। और माया दुःख स्वरूप है। और सर्व जीव मध्य कोटि के हैं। अति सुखी नहीं, और अति दुःखी भी नहीं हैं। अति सुख मान कर हर्ष न करे, अति दुःख मान कर शोक न करे। क्योंकि जीव मध्य कोटि के होने के कारण, न कोई अधिक बड़ा और न कोई अधिक छोटा ही है। छोटे बड़े की अवधि भी ईश्वर ही है, जीव नहीं। जैसे वेद में लिखा है। प्रमाण :—

श्लोक :—

"अणोरणीयान् महतोमहीमान्

इसलिये अपने को बड़ा समझकर व्यर्थ अभिमान न करे। जैसा कि एक बार ब्रह्मा जी ने अभिमान किया कि मैं सृष्टिकर्त्ता चतुर्मुखी ब्रह्मा हूँ। तब एक ऋषि ने आठ मुख वाला ब्रह्मा एवं सहस्रों मुख वाला ब्रह्मा दिखाया। तब ब्रह्मा जी का अभिमान दूर हुआ। अभिमान निवर्त होने पर हर्ष शोक से रहित होकर सुखी हो गया।

अज्ञानी लोग अज्ञान के वश होकर अभिमान करते हैं। जैसे रावण ने अभिमान किया, तो कई जगह ठोकरें खाई। और अंगद के पिता बालि ने उसे

६ मास तक कांख में दबा रखा। इस प्रकार भगवान ने कई स्थान पर रावण का अहंकार तोड़ा है।

हे शिष्य, मैं पीर हूँ या तपस्वी हूँ या भक्त हूँ। ये अहंकार भी नहीं करना चाहिये। क्योंकि संसार में एक से एक बढ़ कर पीर, तपस्वी तथा भक्त हैं। नामदेव भक्त के लिये जब भगवान ने देहुरा (मंदिर) फेर दिया था। तब उसको अभिमान हो गया था कि मेरे जैसा कोई भगवान का प्रिय भक्त नहीं है। क्योंकि उनको भगवान के सगुण रूप का "७२" बार दर्शन भी हुआ था।

हरजी हंकार न भाव ही,
वेद कूक कूक सुनावहीं।

तब भगवान ने नामदेव को रंका बंका जो परम भक्त थे, उनको दिखाकर नामदेव का अहंकार तोड़ दिया। और नारद ऋषि को भी एक बार अहंकार हुआ था कि मैं काम जीत हूँ। तब भगवान ने अपनी मोहनी माया दिखाकर उसका भी अहंकार तोड़ दिया। इसलिये किसी भी गुण का अहंकार करना नहीं बनता।

और मैं चतुर हूँ। यह अभिमान भी न करे। क्योंकि संसार में एक से एक चतुर हैं। मैं मूर्ख हूँ। यह मान कर दुःखी भी न होवे। क्योंकि पृथ्वी पर मूर्ख भी एक से एक बढ़ कर हैं। तात्पर्य यह है कि सर्व बात में हर एक जीव मध्य कोटि के हैं। धनवान भी एक से एक बढ़कर हैं। कंगाल भी एक से एक बढ़कर हैं। इसी प्रकार संसार में एक से एक दुःखी है तथा एक से एक सुखी है। इसलिये हमारे को सुख दुःख में समान रहना चाहिये। हे शिष्य, सुख दुःख में सम रहने की ये आठ युक्तियाँ तुमको सुनाई है। इनमें से एक भी युक्ति को अपनायेगा, वह जीवन मुक्ति का आनन्द प्राप्त कर सकता है। हर हाल में प्रसन्न रहना ही ज्ञान का फल है।

"पूरे हैं मर्द जो हर हाल में खुश हैं।

गुरु लागा तब जानिये, मिटे मोह तन ताप।
हर्ष शोक दाझै नहि, तब हरि आपे आप॥

गुरु मुख द्वारा इन आठ युक्तियों को श्रवण करके शिष्य के मन में महान् ही प्रसन्नता हुई। और जीवन मुक्त होकर विचरने लगा। हर्ष शोक से रहित निर्द्वन्द्व अवस्था प्राप्त हो गई।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्यभवेत॥

ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !! ॐ शान्तिः !!!

—:o:—

श्री सतगुरु देव जी के आदेश भरे पत्र

पत्र नं० १

प्रिय आत्मन् !

आपने लिखा, कि मैं कौन हूँ? अपने आपको नहीं जानता, मेरा जो वास्तव स्वरूप है। वह कृपा कर बताओ जी। सो हे प्रिय सपुत्र जी ज्ञान तो आपको सतगुरु दे देंगे परन्तु दृढ़ निश्चय आप को करना होगा। कहीं आत्म ज्ञान को खो नहीं बैठना। कारण आत्म ज्ञान शेरनी के दूध के समान है। शेरनी का दूध सोने के पात्र में ही ठहरता है। अन्य पात्र में नहीं ठहर सकता। अतः निर्मल मन करके सावधान होकर सुन मैं तुम्हें रहस्यमय ज्ञान देता हूँ।

ज्ञान नाम अपने आपको जानने का है। ज्ञान कोई लम्बी चौड़ी वस्तु नहीं है। बड़े बड़े भाषण देने का नाम, सिंहासन पर बैठने का नाम ज्ञान नहीं है। वस्तु को यथार्थ रूप से जानने का नाम ही ज्ञान है। उलट पुलट जानने का नाम अज्ञान है। जैसे—रस्सी को सर्प और सर्प को रस्सी मान लेना अज्ञानता है। और रस्सी को रस्सी सर्प को सर्प जानना ही ज्ञान है। हे शिष्य इसी प्रकार से तू अपने को जानता तो है। पर जैसा तेरा स्वरूप है, वैसा नहीं जानता है। अतः जिस शरीर को तू अपना मानता है, वह तेरा नहीं है। पंच भूतों का है। अस्तु शरीर को जानने वाला जो चेतन है सो तू है। अब भूल कर भी अपने को देह नहीं मानना। इस पराये शरीर के लिये घरों में लड़ाई झगड़ा राग द्वेष नहीं करना। इस विष्ठा के टोकरे का अभिमान नहीं करना, देह द्वारा सबका दास बन कर रहना, घर में जो कार्यों की मर्यादा है, उसका पालन करना। सेवा काम निष्काम भाव से करना। देह का धर्म जान कर सब कार्य करना, यथोचित उचित शास्त्र के अनुसार शोभायमान कार्यों को करना। कार्य कर्मों को करते समय आप असंग रहना।

छन्द :—

देह इन्द्रियां मन कर्म करते, मैं कभी करता नहीं ॥ १ ॥
आता नहीं जाता नहीं, चलता नहीं फिरता नहीं ॥ २ ॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ निर्लेप सो हो जाय है ॥ ३ ॥
निर्लेप हो निष्पाप हो, सो धीर शोभा पाय है ॥ ४ ॥

समस्त संगत को ओमानन्द कहना। मन की अवस्था ठीक ठीक लिखना।

इति—

"चेतन हरि"

पत्र नं० १

मेरे अपने आप सच्चे सपुत्रजी आपको

ओमानन्द हो।

आपने लिखा, कि मन की व्यवस्था बड़ी खराब है। अशान्ति के सिवाय शान्ति का अनुभव नहीं होता। सो हे सपुत्रो ! यदि मन की अवस्था को सुधारना है, तो आत्म चिन्तन करना, अनात्म चिन्तन नहीं करना। अशान्ति का कारण यही है कि आपकी वृत्ति बहिर्मुख है। बहिर्मुख वृत्ति का होना ही अनर्थ का कारण है। जैसे गुरु मुखो ने मन को समझाते हुए कहा है—

रे मन तज निज बहिंगति-अर्न्तवर सुख हेत्।
अर्न्तमुख बिन सुख नहीं विदित सनातन नेत ॥

यदि संसार के महान दुःखों से मुक्त होने की इच्छा है तो सांसारिक पदार्थों से, खेल तमाशों से, सुन्दर-सुन्दर गहने कपड़ों से आपको वैराग्य होना चाहिये। मन को हर समय विचार में लगाये रखना चाहिये। काम तो इन्द्रियों से करो, पर मन से आत्म विचार करो। जो घर वाले खाने पहिरने को दे, उसी में खुश रहना चाहिये। अपनी इच्छा भूल कर भी नहीं करनी चाहिये। केवल प्राण रक्षा के लिये भोजन और तन ढाकने के लिये वस्त्र पहिनना है। शरीर पुष्ट करने के लिये, और वस्त्र से सुन्दर बनने के लिये, लाक बड़ाई के लिये पहिनना खाना नहीं है। अब यही निश्चय करना है कि जब ये शरीर मेरा नहीं है तो इसको चाहे कुछ मिले अथवा न मिले, मैं दुःखी क्यों होऊँ। इस प्रकार से विचार करोगे, तो मन तुम्हें नहीं सतायेगा। सुखी होना भी आपके वश है। और दुःखी होना भी आपके वश है। आपकी इच्छा। ओमानन्द

"चेतनहरि"

पत्र नं० ३

मेरे प्रिय आत्मन्,

ओमानन्द !

पत्र तुम्हारा आया। तुमने लिखा मुझे क्रोध आता है। तो क्या क्रोध का आना, तुम्हारे इशारे बिना होता है? तुम क्रोध को क्यों बुलाते हो? यदि आप क्रोध को अच्छा समझते हो तो इसका त्यागना बनता नहीं, यदि आपको क्रोध करना बुरा प्रतीत होता है, क्रोध करने से महान कष्ट होता है। यदि क्रोध की निवृत्ति चाहते हो, तो प्रथम क्रोध के कारण कों समझो कि क्रोध किस कारण से होता है। जब आप क्रोध के कारण को जान लोगे, तो क्रोध आप ही चला जायगा। क्रोध का कारण मन की इच्छाएं और कामना है। इच्छा और कामना का कारण देह अभिमान है।

छन्द :—

इस देह को मैं मानने से, काम शत्रु सताय है।
पूरी न होय जो कामना, तो क्रोध चित जलाय है॥
हो क्रोध से बुद्धि मलिन, अति मोह में फंस जाय है।
मोहांध बुद्धि जीव को, नाना नरक दिखलाय है॥

यह नियम है कि क्रोध तीन वस्तुओं के लिये हो होता है। (१) शरीर को खिलाने के लिये, (२) मनमानी करने के लिये और (३) धन के लिये। परन्तु तन मन धन तो आपका रहा नहीं तन मन धन तो सतगुरु का है या प्रभु का है और पंचभूतों का कार्य है। किसी भी प्रकार से तुम्हारा नहीं है। इसलिये पराई वस्तु के लिये आपको क्रोध क्यों आता है। और फिर सब अपने ही रूप हैं। अपने प्रतिविम्बों से क्यों झगड़ते हो। दांत जब जीभ को काटते हैं, तो क्या दांतों को तोड़ कर फेंक देते हो? अतः

दोहा :

क्रोध न काहुँ संग करो, अपना आप विचार ।
होये निमाणा जग रहो, नानक नदरी पार ।।

हे प्रिय बच्चा ये काम क्रोध जीव के महान शत्रु हैं। यही मोक्ष नहीं होने देते।

श्रुति :

काम क्रोधौ महाशत्रु, देहीनां सहजावुभौ ।
तौ विहाये परं शत्रुं, यो जयेत्सतु मन्द धीः ।।

अर्थ :—

जो पुरुष इन दोनों महान् शत्रुओं से न लड़ करके जो दूसरों के साथ लड़ाई झगड़ा करता है। वह महान मूर्खों का मूर्ख है। इसलिये जब यह महान क्रोध रूपो चांडाल आवे, तब एक गिलास ठंडा पानी पी लेना चहिये या अपने मुख को दर्पण में देख लेना चाहिये। या एकान्त में जाकर विचार करना चाहिये। कि सब मेरे ही अंग हैं। कोई दूसरा है ही नहीं, तो मैं किस पर क्रोध करूं। यदि क्रोध करोगे, तो आपका दान-पुण्य, भजन-चिन्तन, तीर्थादि सब निष्फल हो जायेंगे। इसलिये भूलकर भी क्रोध नहीं करना, अधिक क्या लिखें, आगे आपकी इच्छा। "शेष शुभ"

"चेतनहरि"

पत्र नं० ४

मेरे आत्म स्वरूप,

आप सभों को ओमानन्द हो।

पत्र आपके मिले, भाव जाने। आपने लिखा, कि मैं गृहस्थ में कैसे रहूँ। इस गृहस्थ से मन घबराता है। सो हे प्रिय बच्चा, गृहस्थ से मन नहीं घबराना चाहिये। क्योंकि गृहस्थ आश्रम ही चार आश्रमों में मुख्य है। इसी के द्वारा प्राणी मात्र की सेवा की जाती है: धन स्त्री पुत्रादिक दुःख नहीं देते। बल्कि इनकी आसक्ति ही दुःख का कारण है। विषयों से हर समय उपराम रहना। कहीं विषयों में आसक्त न हो जाना। यदि विषयों में आसक्त हो गये, तो फिर ये विषय छुटने बड़े कठिन हो जायेंगे। इसलिये हे पुत्रो! विषय भोगों की ओर से सावधान रहना। क्योंकि चौरासी लाख योनियों के दुःखों में ये विषय ही कारण हैं। आप का त्याग यही है कि अपनी इच्छा न फूटे।

पति की आज्ञा का भंग नहीं करना और विषयों की कामना से रहित पति की निष्काम भाव से भली प्रकार सेवा करना मन वाणी शरीर कर पति देव को दुःख नहीं देना। आज्ञा का पालन करना। अपने पति धर्म का पूरा-पूरा पालन करना। आपके लिये तो परम श्रेष्ठ धर्म यही है कि, हर प्रकार से पति को सास ससुर घर वालों को प्रसन्न रखना, और भली प्रकार से सेवा करना। सेवा में त्रुटि नहीं करनी चाहिये। झूठ कपट का सर्वथा त्याग करना। किसी प्रकार भी झूठ कपट छल किसी भी कार्य के लिये नहीं करना।

हर प्रकार से धीरज और प्रेम के साथ व्यवहार और बातचीत करना। सर्व को जी करके बोलना, जी करके बुलाना। जो जरूरी खर्च होवे उसी को खर्चा करना चाहिये। लोक बड़ाई के लिये फजुली बेकार का खर्च नहीं करना चाहिये।

जितना खर्च हो उतना ही बताओ न ज्यादा न कम। जो-जो कर्म कांड करते हो सर्व को करना, एक भी छोड़ना नहीं है। सब का दास होकर रहना, संकोच से काम करना। घरों में लड़ाई झगड़ा नहीं करना है। घर वालों का दास बन कर रहना, किसी का मन नहीं दुखाना, सब को सत्य बचन कहा करो, सभों की आज्ञा का पालन करना। शान्त रहना, सपुत्र बनना, कपुत्र नहीं बनना। इस आज्ञा का हर समय पालन करना। हे पुत्रों ४ साधन, १६ शिक्षा आदि कंठस्थ नहीं करना है। उनको अमल करना है। अर्थात् उनके अनुसार जीवन बनाना है। जीवन बनाने का नाम ही ज्ञान है। श्रेष्ठ जीवन ही सब को प्रिय होता है। मनोभाव लिखना।

शेष शुभ

"चेतन हरि"

आरती

ॐ जय-जय गुरुदेव हमारे, आरती कर रहे दास तुम्हारे ॥ टेर ॥

हृदय के आसन पै तुमको बिठाके,
प्रेमाश्रु से चरण पखारे ॥ १ ॥

चित्त का चन्दन, भाव की भेंटा,
श्रद्धा की माला गल बिच डारे ॥ २ ॥

ज्ञान की बाँसुरी बजा के प्रभु जी,
जन्म-जन्म के दुःख निवारे ॥ ३ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तुम्हीं हो,
सबमें मिले और सबसे न्यारे ॥ ४ ॥

महिमा तुम्हारी किस मुख गाऊँ,
वेदश्रुति सब ऋषि, मुनि हारे ॥ ५ ॥

आदि अन्त से रहित सदा तुम,
सगुण निगुण रूप तुम्हारे । ६ ॥

सूर्य चन्द्र में तेज तुम्हारा,
तुम्हारी सत्ता से सुशोभित तारे ॥ ७ ॥

कहे "नारायण" इस जीवन के,
"स्वामी चेतन" सतगुरु रखवारे ॥ ८ ॥

मनुष्याणां सहस्त्रेषु, कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां, कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

चतुर्विधा भजन्ते मां, जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त, एक भक्ति र्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थ महं स च मम प्रियः ॥१७॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥

गीता अ० ७वां